स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

(उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्गत अधिनियम संख्या 10, 1999 द्वारा स्थापित)

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

CWED-04
महिलाएँ और अर्थव्यवस्था

प्रथम खण्ड : महिलाएँ और उत्पादन संगठन

द्वितीय खण्ड : महिलाएँ और उत्पादक संसाधन पहुँच, नियंत्रण और प्रबंधन

तृतीय खण्ड : असंगठित क्षेत्र में महिलाएँ

चतुर्थ खण्ड : संगठित क्षेत्र में मलिाएँ

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद - 211013

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

महिलाएँ और अर्थव्यवस्था

खंड

1

महिलाएँ और उत्पादन संगठन

आइए शुरू करें	3
खंड परिचय : महिलाएँ और उत्पाद संगठन	5
इकाई 1 महिलाएँ और आर्थिक विकास	7
इकाई 2 भूमि और प्राकृतिक संसाधन	21
इकाई 3 श्रम	30
इकाई 4 महिलाएँ और प्रौद्योगिकी	39
संदर्भ	56

आइए हम शुरू करें

महिला सबलीकरण और विकास कार्यक्रम का यह तीसरा ऐच्छिक पाठ्यक्रम है। यह चार खंडों में विभाजित है। प्रत्येक खंड में एक विशेष विचारधारा का वर्णन है जो तीन से लेकर पाँच इकाइयों तक में वर्णित हैं। प्रत्येक विचारधारा के मुख्य पक्षों को शामिल करने के लिए इकाइयों को क्रमश: युक्तिसंगत रूप में बनाया गया है। प्रत्येक खंड में इकाइयों के अतिरिक्त आरंभ में खंड प्रस्तावना तथा खंड के अंत में संदर्भों की सूची भी दी गई है। खंड 1 में इनके साथ पाठ्यक्रम की प्रस्तावना भी दी गई है। सलाह दी जाती है कि अध्ययन के लिए उपलब्ध कराए गए पाठ्यक्रम के मूलाधार, केन्द्र बिन्दु तथा सामग्री को समझने के लिए पाठ्यक्रम की प्रस्तावना का ध्यान से अध्ययन करें। इसी प्रकार खंड के अर्थ और सामग्री को समझने के लिए खंड प्रस्तावना भी ध्यान से अध्ययन करें। अब इस पाठ्यक्रम का पहला खंड आपके हाथ में हैं। इसमें कुल चार इकाईया हैं। इकाइयों का अध्ययन करने से पूर्व सलाह है कि पाठ्यक्रम-सामग्री का अध्ययन करने के लिए निर्देशों को अच्छी तरह पढ लें। पहले हम इकाई की रूपरेखा बताते हैं और इसके बाद इकाई में शामिल भागों की संख्या प्रणाली को स्पष्ट करते हैं। इसके बाद हम इकाई के विभिन्न भागों की सामग्री तथा पाठ्यक्रम-सामग्री का अध्ययन करते समय इसमे शामिल पूरे किए जाने वाले विभिन्न कार्यों के बारे में बताते हैं। पुरी जानकारी के लिए एफ.डब्ल्यु.ई.-01 की आइए हम शुरू करें का अध्ययन ध्यान से करें।

पाठ्यक्रम प्रस्तावना : महिलाएं एवं अर्थव्यवस्था

समाज में महिलाएं महत्वपूर्ण वर्ग है। इस वर्ग के महत्व का आधार न केवल जैविक अस्तित्व है अपितु समाजिक सांस्कृतिक संरचना भी है। दुर्भाग्य से सामाजिक संरचना प्रबंधों ने महिलाओं को निम्न स्थिति प्रदान की है। उनका आर्थिक शोषण और भेदभाव किया जाता है, सामाजिक रूप से वे पराधीन हैं तथा राजनैतिक संदर्भ में वह समाज का अधिकार विहीन वर्ग है। इसलिए महिलाओं से संबंधित विषय सामाजिक विषयों का अहसास कराते हैं। इन विषयों का मुख्य केन्द्र बिन्दु है उत्पादक संसाधनों नीति निर्धारण संस्थाओं, स्वास्थ्य सुविधाओं, शिक्षा, रोजगार के अवसर तथा सामाजिक न्याय प्राप्त करने में महिलाओं के साथ असमानता।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह माना गया था कि आर्थिक विकास की नीतियां जैसे कृषि विकास और आधुनिकीकरण, औद्योगिकरण, तथा तकनीकी विकास आदि महिलाओं सहित सभी के लिए अच्छा जीवन लाएंगे। लेकिन समग्रत: विकास नीतियां विद्यमान वर्ग, जाति और लिंगीय भेद को समझने में असफल रही।

महिलाएं उत्पादन एंव पुनरुत्पादन कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। फिर भी द्रुत आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तनों में महिलाओं का योगदान अदृश्य तथा मान्यता रहित रहा क्योंकि उनसे स्टिरियो टाइप प्रक्रिया और पारंपरिक भूमिकाएं निभाने की आशा की जाती रहीं। संपूर्ण जीवन प्रवाह में महिलाओं को दर किनार रखा जाता है। महिलाओं की आर्थिक भूमिका की उपेक्षा, जिसका आप इस पाठ्यक्रम के खंडों में विस्तृत अध्ययन करेंगे, से महिला श्रमिकों का शोषण, पुरुष और महिलाओं की मज़दूरी में असमानता तथा वस्त्र, खनन, निर्माण तथा घरेलू, उद्योग जैसे पारंपरिक क्षेत्र में कार्यों की कमी से उच्च बेरोजगारी हुई।

महिलाएं और अर्थव्यवस्था (डब्ल्यु ई डी -03) पर यह पाठ्यक्रम आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं की वास्तविक स्थिति और भूमिका की समझ प्रदान कर व्यापक मानसिक सोच प्रस्तुत करता है तथा साथ ही समाज में विद्यमान असमानता के स्थाईत्व पर समग्र प्रभाव के बारे में भी वर्णन करता है अत: हम कह सकते हैं कि पाठ्यक्रम दो भागों में विभाजित है। पहले भाग खंड 1 और 2 है जिनमें महिलाएँ और उनका उत्पादन संस्थाओं और उत्पादक संसाधनों से संबंधों का वर्णन किया गया है। दूसरे भाग में ब्लाक 3 और 4 है जिनमें असंगठित महिलाओं और असंगठित क्षेत्र की स्थिति का वर्णन किया गया है। खंड 1, महिलाएं और उत्पादक संसाधन : पहुंच, नियंत्रण तथा प्रबंध महिलाओं का प्राकृतिक संसाधनों से संबंधों की रूपरेखा बताता है तथा यह महिलाओं उत्थान के लिए विभिन्न एजेंसियों द्वारा अपनाई जाने वाली विभिन्न विचारधाराएं और योजनाओं पर भी विशेष प्रकाश डालता है। खंड 2 महिलाएं और उत्पादन का संगठन, एक तरफ तो महिलाओं के आर्थिक विकास के तात्पर्य पर केन्द्रित करता है दूसरी तरफ उत्पादन प्रक्रिया में होने वाले परिवर्तनों का भी सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत करता है।

खंड 3, असंगठित क्षेत्र में महिलाएं, इसमें असंगठित क्षेत्र में रोजगार विषयों पर व्यापक स्तर पर प्रकाश डाला गया है तथा कृषि और निर्माण क्षेत्रों में मजदूरी असमानताओं के स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

खंड 4, संगठित क्षेत्र में महिलाएं, इसमें मुख्यत: बागानों, महिला उद्यमियों और उद्योगों में महिला श्रमिकों आदि से संबंधित विषयों पर चर्चा की गई है। भारत में महिला श्रमिकों की वर्तमान स्थिति का उल्लेख करते हुए वैधानिक प्रावधानों और उनके कार्यान्वयनों की भी चर्चा की गई है।

खंड प्रस्तावना

खंड 1 महिलाएं और उत्पादन संगठन

प्रस्तुत खंड में एक तरफ महिलाओं का प्राकृतिक संसाधनों से संबंध तथा दूसरी तरफ तकनीकी परिवर्तनों का समाज पर सामान्यत: तथा महिलाओं पर विशेष प्रभाव का वर्णन किया गया है। खंड के अन्य पहलू न केवल कार्य या श्रम की प्रकृति की व्याख्या करने का प्रयास करते हैं अपितु घरेलू कार्यों को उत्पादक है या नहीं यह समझने का भी प्रयास करते हैं।

इकाई 1 में महिलाओं के उत्थान के लिए राष्ट्रीय एंव सार्वभौमिक स्तर पर विभिन्न एजेंजिसों द्वारा अपनाई जाने वाली विभिन्न विचारधाराओं एंव योजनाओं की चर्चा की गई है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए हमने जीएडी, डब्लूएडी तथा अन्य विचारधाराओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस इकाई में विकास प्रक्रिया से महिलाओं को जोड़ने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय प्रोत्साहनों की भी चर्चा की गई है।

इकाई 2 भूमि और प्राकृतिक संसाधनों जिनकी महिलाओं को प्राप्ति, नियंत्रन तथा प्रबंध पर ध्यान केन्द्रित करती है। इस इकाई के अध्ययन के बाद हम भूमि पर दावे की वैधानिक मान्यता तथा उसकी सामाजिक मान्यता और दबाव के बीच विषमता को भी देखेंगे। महिलाओं का सामाजिक रूप से दर्जा घटाने के प्रभाव तथा इसके संदर्भ में राज्य की प्रतिक्रिया को समझने का भी प्रयास किया गया है।

अगली इकाई जिसमें श्रम का वर्णन किया गया है आप महिलाओं के कार्यों की गौणता के कारणों को समझ सकेंगे। इसमें उत्पादक एवं अनुत्पादक कार्यों में विषमता को उद्धृत किया गया है। इसका अध्ययन करते समय आप समाज में श्रम के कुछ कठिन क्षेत्रों के अन्दर भी झांक सकेंगे।

इकाई 4 तकनीकी प्रभाव का समाज में महिलाओं के स्तर और स्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करने का प्रयास करती है। लिंगीय भेद के प्रयोगों समाज में बनने वाले संबंधों की भी विस्तार से चर्चा की गई है। अन्त में नई तकनीकी परिवर्तनों के कारण महिलाओं के हाशिए पर जाने के लिए उभरने वाले तथ्यों को भी उठाया गया है।

इकाई 1 महिलाएँ और आर्थिक विकास

रूपरेखा

1.0 लक्ष्य और उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 कल्याणकारी दृष्टिकोण
  1.2.1 निष्पक्ष दृष्टिकोण
  1.2.2 गरीबी-विरोधी दृष्टिकोण
  1.2.3 कार्य दक्षता संबंधी दृष्टिकोण
  1.2.4 सशक्तिकरण दृष्टिकोण
1.3 डब्ल्यू ए डी समालोचना
1.4 जी ए डी विकल्प
1.5 भारत में की गई पहल
  1.5.1 सरकारी नीतियाँ और कार्यक्रम
  1.5.2 महिला मंडल कार्यक्रम
  1.5.3 डब्ल्यू डी पी, राजस्थान
  1.5.4 व्यावसायिक प्रशिक्षण
  1.5.5 ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम
1.6 1990 के दशक के लिए नीति और कार्यक्रम की शुरुआत
  1.6.1 महिला विकास निगम
1.7 गैर-सरकारी प्रयास
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.0 लक्ष्य और उद्देश्य

विकास प्रक्रिया से महिलाओं को जोड़ने की अंतर्राष्ट्रीय शुरुआत संयुक्त राष्ट्र द्वारा महिला स्थिति आयोग (कमीशन ऑन द स्टेटस ऑफ वुमेन) की स्थापना के साथ हुई। आयोग ने कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशें की जिन्हें संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा स्वीकृत किया गया। इस इकाई का मुख्य उद्देश्य विश्व स्तर पर महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए विभिन्न निकायों द्वारा अपनाए गए विभिन्न दृष्टिकोणों एवं कार्यक्रमों के बारे में विद्यार्थियों को अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- विकास प्रक्रिया से महिलाओं को एकीकृत करने में अपनाए गए विभिन्न दृष्टिकोणों को स्पष्ट कर सकेंगे;
- जी.ए.डी. और डब्ल्यू डी के व्यापक दृष्टिकोण जो डब्ल्यू ए.डी. दृष्टिकोण की समालोचना के रूप में ऊभरा है उसकी रूपरेखा बना सकेंगे;
- इस संबंध में भारत में की गई पहल और सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों की व्याख्या कर सकेंगे; और
- इस दिशा में डब्ल्यू डी.सी. का उद्गम तथा गैर सरकारी प्रयासों का विवेचन करने में समर्थ हो सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

आयोग का उद्देश्य एक ऐसे समाज को परिभाषित करना था जिसमें महिलाएँ आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में तथा कार्य नीतियाँ बनाने में पूर्ण रूप से भागीदारी करें जिनसे समाज को कुछ उपलब्धि हो।

दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद अर्थव्यवस्था की पुनर्संरचना में यूरोप के कल्याणकारी कार्यक्रम में संभावित समूहों को लक्ष्य बनाया गया जिनमें प्रमुख लाभ उठाने वालों में महिलाओं का प्रथम स्थान था। इस विकासात्मक सहायता प्रयास के दो रूप थे (i) आर्थिक प्रगति के लिए वित्तीय सहायता देना, (ii) सामाजिक रूप से अभावग्रस्त समूहों को राहत प्रदान करना। ऐसा ही एक पैकेज तीसरी दुनिया के देशों के लिए भी बनाया गया जहाँ आर्थिक सहायता का मुख्य लक्ष्य पुरुष श्रमिक बल की उत्पादन क्षमता को बढ़ाना था। इसके साथ परिवार कल्याण के लिए भी महिलाओं को लक्ष्य बनाया गया।
विकास प्रक्रिया में महिलाओं को जोड़ने वाली तीन विचारधाराएँ रही हैं। ये हैं :

1) विकास में महिलाएँ (डब्ल्यू आई डी)
2) महिलाएँ और विकास (डब्ल्यू ए डी)
3) पुरुष व महिलाएँ तथा विकास (जी ए डी)

संयुक्त राष्ट्र का महिला दशक (1976-85) में तीसरी दुनिया के देशों में महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक भूमिका को स्थापित किया गया। डब्ल्यू आई डी दृष्टिकोण का मुख्य जोर इस बात पर था कि महिलाओं को आर्थिक विकास में सकारात्मक योगदान देना चाहिए और इसके लिए उन्हें एक समान मान्यता मिलनी चाहिए।

'विकास में महिलाएँ' परिभाषा को योजना संबंधी अनेक विचारधाराओं का वर्णन करने के लिए प्रयोग किया जाता है। ये विचारधाराएँ विकास के व्यावसायिक रूप में महिलाओं की स्थिति के विभिन्न विश्लेषणों पर आधारित है। डब्ल्यू आई डी दृष्टिकोण के निम्नलिखित पांच तथ्य है :

(i) कल्याण, (ii) समानता, (iii) गरीबी रोधी, (iv) दक्षता और (v) रोज़गार।

1.2 कल्याणकारी दृष्टिकोण

कल्याणकारी दृष्टिकोण तीन मान्यताओं पर आधारित है। वे है : (i) महिलाएँ विकास को अप्रत्यक्ष रूप से ग्रहण करती हैं, (ii) समाज में महिलाओं के लिए मातृत्व बहुत महत्वपूर्ण है, तथा (iii) आर्थिक विकास के सभी पहलूओं में गर्भ धारण करना महिलाओं के लिए सबसे अधिक प्रभावकारी है। इस प्रकार इस दृष्टिकोण का मुख्य उद्देश्य महिलाओं की व्यावहारिक लिंगीय आवश्यकताओं को पूरा करना है। यह दृष्टिकोण अपने पुनरुत्पादन पर नियंत्रण के लिए महिला अधिकारों की लिंगीय आवश्यकताओं वाली नीति पर विचार नहीं करती। जिसकी प्राय: आलोचना होती है। इस दशक के दौरान कल्याणकारी दृष्टिकोण की आलोचना के परिणामस्वरूप महिलाओं के विकास की कई अन्य वैकल्पिक विचारधाराएँ जैसे समानता, गरीबी रोधी, दक्षता और सशक्तिकरण के रूप में विकसित हुई।

1.2.1 समानता का दृष्टिकोण

समानता का दृष्टिकोण संयुक्त राष्ट्र के महिला दशक में सामने आया। यह दृष्टिकोण महिलाओं को

विकास प्रक्रिया के सक्रिय भागीदार के रूप में देखता है जो अपनी उत्पादक तथा पुनरुत्पादक की भूमिकाओं के माध्यम से आर्थिक प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है। उनका लक्ष्य श्रम के लिंगीय आधारित विभाजन में पुरुषों और महिलाओं के अंतर को कम करना है। यह दृष्टिकोण रोज़गार और बाज़ार स्थल में अभिवृद्धि के माध्यम से विकास प्रक्रिया में महिलाओं को लाने का पक्षधर है।

विचार करें 1

यह वर्णन करने का प्रयत्न करें कि महिलाओं को विकास प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भागीदारी करने के लिए जनमत को तैयार करने में इतना समय क्यों लगा? अपनी कॉपी में इस पर ध्यान से कारण की सूची बनाएँ।

राहत एजेंसी के विचार से समानता कार्यक्रम देश की परंपराओं में हस्तक्षेप के कारण स्वीकार नहीं किया जा सकता, उसी समय समानता की मान्यता सैद्धान्तिक होने से व्यवहार में उसके कार्यान्वयन की गारंटी नहीं होती। 1975 में अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष की बैठक में कार्यगत योजना के अनुमोदन से यह सुनिश्चित किया गया कि यह कानून के माध्यम से सरकारी सेवा में कार्यरत महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए निरंतर महत्वपूर्ण ढाँचा प्रदान करती हैं। विकास योजनाओं की मुख्य धारा में व्यावहारिक लिंगीय आवश्यकताओं को शामिल करने से भी व्यवहार में उसके लागू होने की गारंटी नहीं है। मजूमदार (1979) ने ध्यान दिलाया कि भारत की 6 वर्षीय योजना के मसौदे में महिलाओं से संबंधित विषय शामिल करने से अवसरों की समानता के प्रति भारत की संवैधानिक वचनबद्धता का संकेत मिलता है। इन संवैधानिक वचनबद्धताओं को शामिल करने से व्यावहारिक परिवर्तन सुनिश्चित नहीं किए जा सकते। निष्कर्षत: समानता का दृष्टिकोण 'टॉप-डाउन' वैधानिक उपायों से नीतिपरक लिंगीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनाई गई है।

1.2.2 गरीबी रोधी दृष्टिकोण

गरीबी रोधी डब्ल्यू आई डी दूसरा दृष्टिकोण है जिसका उद्देश्य गरीब महिलाओं की उत्पादकता बढ़ाना है। इसने महिलाओं की उत्पादक भूमिका तथा आमदनी और विशेषत: लघु क्षेत्र की आमदनी पैदा करने वाली परियोजनाओं के माध्यम से आमदनी पैदा करने की व्यावहारिक आवश्यकता को पहचाना है जो गैर सरकारी संगठनों की गतिविधियों में से एक रही है। यह दृष्टिकोण इस तथ्य को पहचानता है कि गरीबी शमन और संतुलित आर्थिक प्रगति के लिए कम आमदनी वाले परिवारों की कार्य उत्पादकता को बढ़ाने की आवश्यकता है। अत: इसका उद्देश्य उत्पादक संसाधनों का बेहतर उपयोग कर रोज़गार और आमदनी बढ़ाने वाले विकल्पों को बढ़ाना था। तर्क दिया जाता है कि गरीबी रोधी दृष्टिकोण ने महिलाओं की पुनरूत्पादक भूमिका की अनदेखी की है और यह मानता है कि महिलाओं के पास फालतू समय रहता है। यह केवल प्राय: उनकी कार्यावधि और तीहरे भार (ट्रीपल बर्डन) को बढ़ाने पर सफल होता है।

1.2.3 कार्यदक्षता संबंधी दृष्टिकोण

कार्यदक्षता तीसरी और प्रसिद्ध डब्ल्यू आई डी दृष्टिकोण है जो यह मानता है कि महिलाओं के आर्थिक योगदान से विकास अधिक प्रखर और प्रभावकारी होता है। यह महिलाओं की तीहरी भूमिका पुनरूत्पादन, उत्पादकता और सामुदायिक प्रबंध को पहचानते हुए व्यावहारिक लिंगीय आवश्यकताओं को पूरा करता है।

लेकिन इस दृष्टिकोण की इस आधार पर आलोचना की गई कि यह महिलाओं के लचीले श्रम दोनों पुनरूत्पादकता के रूप में उनकी क्षमताओं तथा सामुदायिक प्रबंध की भूमिकाओं पर अत्यधिक निर्भर करता है। यह केवल अत्यधिक कार्य अवधि और अवैतनिक कार्य में वृद्धि करके व्यावहारिक लिंगीय आवश्यकताओं को पूरा करता हैं।

1.2.4 सशक्तिकरण का दृष्टिकोण

महिलाओं के लिए या पांचवाँ नीति परक दृष्टिकोण है, शक्ति संपन्न करना। इस तथ्य के निश्चित होने के बाद कि महिलाओं की अधीनस्थता परिवारों में ही होती है यह इस बात पर बल देता है कि महिलाओं का उत्पीड़न अनुभव उनकी जाति, वर्ग, स्थानीय अतीत और वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक क्रम के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है। इसलिए महिलाओं को इस उत्पीड़न का एक साथ अनेक स्तरों पर विरोध और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। यह दृष्टिकोण महिलाओं के लिए विकास विकल्पों के ऐसे नए क्षेत्रों (DAWN) से अच्छी तरह जुड़ा हुआ है जो 1985 में नौरोबी सम्मेलन से पूर्व व्यक्तिगत महिलाओं और महिला समूहों की रचना थी।

डान में अल्पावधि और दीर्घावधि नीतियों का ध्यान रखा जाता है। दीर्घावधि कार्यनीतियों में लिंगीय वर्ग और राष्ट्रों में असमानता की संरचना को समाप्त करने की आवश्यकता है। अल्पावधि कार्यनीतियों में वर्तमान समस्याओं के उपाय प्रदान करने की आवश्यकता है।

महिलाओं की सहायता करने के उपायों में संशोधित कृषि आधार की वृद्धि के माध्यम से खाद्य उत्पादन तथा औपचारिक और अनौपचारिक क्षेत्र में रोज़गार बढ़ाना शामिल है। शक्तिसंपन्न दृष्टिकोण महिलाओं की तीहरी भूमिका को समझता है। यह निचले स्तर पर महिला संगठनों के माध्यम से अपनी अधीनस्थता को चुनौती देने के लिए महिलाओं में जागरूकता को बढ़ाता है।

शक्ति संपन्न दृष्टिकोण को महत्वपूर्ण चुनौती देने वाली प्रकृति का अर्थ है कि इसको या तो राष्ट्रीय सरकारों का या फिर उसके साथ राहत एजेंसियों का भी समर्थन नहीं मिला हैं। तीसरी दुनिया के अनेक समूहों और संगठनों की उत्पत्ति के बावजूद जिनका दृष्टिकोण अनिवार्यत: महिलाओं को शक्ति संपन्न करने की है तो भी ये संगठन अनेक अंतर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठनों और प्रथम विश्व की सरकारों के अनुदानों तथा संसाधनों पर निर्भर रहते हैं।

1.3 डब्ल्यू ए डी की समालोचना

1970 के दशक के उत्तरार्ध में महिलाएँ और विकास (डब्ल्यू ए डी) दृष्टिकोण आधुनिकता सिद्धांत डब्ल्यू आई डी दृष्टिकोण की समालोचना करती नजर आती है। इसका आधार आत्मनिर्भरता सिद्धांत में निहित है। इसका मुख्य बल इस बात पर था कि महिलाएँ हमेशा से विकास प्रकिया का एक अंग रही है। अत: विकास से महिलाओं को जोड़ना एक भ्रम है। यह महिला और विकास प्रक्रिया में संबंध को दर्शाती है। यह दृष्टिकोण स्वीकार करता है कि महिलाएँ अपने समाज में महत्वपूर्ण आर्थिक कार्यकर्ता हैं। महिलाओं का सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में कार्य अपनी सामाजिक संरचना को बनाए रखने तक केन्द्रित रखना है। ऐसा लगता है कि निकास में महिलाओं के जुड़ने की प्रकृति असमानता की अंतर्राष्ट्रीय संरचना को बनाए हुए है। इस दृष्टिकोण की मुख्य विशेषताएँ हैं :

i) यह दृष्टिकोण पुरुष आधिपत्य, उत्पादन के अंतर वाले तरीकों तथा महिलाओं की अधीनस्थता और उत्पीड़न के संबंधों का विश्लेषण करने में असफल रहा है।

ii) यह पुरुषों से स्वतंत्र महिलाओं की समस्या को गहन विश्लेषण को उत्साहित नहीं करता, चूंकि वर्ग और पूँजी पर आधारित उत्पीड़क विश्व संरचना के कारण पुरुष और महिलाएँ दोनों ही पीड़ित नज़र आते हैं।

iii) यह महिलाओं के कार्य की पुनरूत्पादकता और जीवन के मूल्य पर उनकी उत्पादक भूमिका पर ध्यान देता है।

iv) यह मानता है कि एक बार अंतर्राष्ट्रीय संरचना अधिक समानता वाली बन जाए तो महिलाओं की स्थिति में सुधार होगा।

v) यह लिंगीय भूमिकाओं के संबंध पर प्रश्न नहीं उठाता।

1.4 जी ए डी विकल्प

पुरुष महिला व विकास (जेंडर एंड डेवलपमेंट) 1980 के दशक में डब्ल्यू आई डी दृष्टिकोण के विकल्प के रूप में आया है। यह महिलाओं के जीवन के सभी पक्षों का ध्यान करने वाला समग्र दृष्टिकोण है। यह पुरुष और महिला को अलग.अलग विशेष भूमिका देने वाले आधारों को चुनौती देता है।

यह वस्तुओं के उत्पादन सहित महिलाओं को परिवार में और परिवार से बाहर योगदान देने को मान्यता प्रदान करता है।

परिवर्तन लाने के लिए महिलाओं की संगठित आवाज कितना प्रभावी है?
सौजन्य : आशा मिश्रा

इस दृष्टिकोण की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं : यह सार्वजनिक/प्राइवेट तर्कों को रद्द करती है। यह परिवार के तथाकथित निजी क्षेत्र में प्रवेश कर परिवार में महिलाओं के उत्पीड़न पर विशेष ध्यान देता है। यह महिलाओं की मुक्ति को बढ़ावा देने में राज्य द्वारा सामाजिक सेवाएँ प्रदान करने पर बल देता है।

यह महिलाओं को विकास राहत प्राप्त करने वाली निष्क्रिय एजेंट की अपेक्षा परिवर्तन एजेंट के रूप में मानती है। यह विचारधारा अधिक प्रभावकारी राजनीतिक आवाज के लिए महिलाओं के संगठन की आवश्यकता पर जोर देता है। यह बताती है कि पुरुष आधिपत्य महिला उत्पीड़न के लिए वर्ग और वर्गों से परे भी हैं।

यह महिलाओं के वैधानिक पैतृक और भूमि कानूनों को मजबूत करने पर जोर देता है। यह समाज में पुरुष और महिलाओं के अव्यवस्थित अधिकार संबंधों की चर्चा करता है।

जी ए डी में इस बात का पता लगाया जाता है कि महिलाओं की स्थिति में सुधारों के लिए महिला और पुरुषों के बीच संबंध तथा उन्हें पुरुषों की स्वीकृति और सहयोग के संदर्भ में उनका विश्लेषण करने की आवश्यकता है। यह विचारधारा दर्शाती है कि क्यों यह समझना आवश्यक है कि किस प्रकार पुरुषों और महिलाओं के बीच असमानता के संबंध महिलाओं को विकास प्रक्रिया से अलग कर देते हैं। जी ए डी दृष्टिकोण के अनुसार लिंगीय विषय सभी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने वाला वाद-विवाद का विषय है।

इसका उद्देश्य महिलाओं की दोनों व्यावहारिक लिंगीय आवश्यकताओं जैसे स्वास्थ्य की देखभाल, जल आपूर्ति, शिक्षा तथा श्रम बचाने वाली तकनीक को तथा लाभ की वृद्धि सुनिश्चित करने वाली और संरचनात्मक विशेषताओं को दूर करने में सहायक नीतिगत लिंगीय आवश्यकताओं को जानना है। महिलाओं की कार्यनीतियाँ आवश्यकताओं में भूमि स्वामित्व का अधिकार, ऋण लेने की सुविधा तथा निर्णय निर्धारक संस्थाओं में सक्रिय भागीदारी शामिल है। व्यावहारिक और नीतिगत लिंगीय आवश्यकताएँ परस्पर गहन रूप से संबंधित हैं क्योंकि एक से दूसरी का जन्म होता है तथा दूसरी को पूरी करना महत्वपूर्ण हो जाता है। उदाहरण के रूप में महिलाओं की आमदनी सुधारने की व्यावहारिक आवश्यकता ऋण प्राप्त करने की नीतिगत आवश्यकता पूरी किए बिना संभव नहीं है।

जी ए डी दृष्टिकोण महिलाओं को आर्थिक और विकास नीतियों में शामिल करना चाहता है। जब तक महिलाएँ विकास में पुरुषों की वास्तविक भागीदार वाली स्थिति में नहीं पहुँचती तब तक महिलाओं की आवश्यकताओं और संबंधित विषयों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

विचार करें-2

आप क्यों सोचते हैं कि जी ए डी विचारधाराएँ महिलाओं की विशेष आवश्यकताएँ बताती है? क्या आप यह सोचते हैं कि यदि महिलाओं को अवसर दिए जाएँ तो वे पुरुषों के बराबर भागीदार बन सकती हैं? इस स्थिति के लाभ व हानि पर विचार करें तथा अपने विचार एक कापी में लिखें।

1944 में विश्व बैंक ने अपनी पहले वाली डब्ल्यू आई डी नीति जो महिलाओं को परियोजनाओं और कार्यक्रम में लाभ पहुंचाने के लिए विशेष समूह का दर्जा प्रदान करती थी उसे नई जी ए डी नीति से बदल दिया। यह नीति इस मान्यता पर आधारित थी कि महिलाओं में किया गया निवेश प्रमाणिक विकास

का केंद्र है तथा इसने महिलाओं में निवेश करने के लिए मजबूत आर्थिक तर्कों का संकेत देते हुए अपने किए गए अध्ययनों का संदर्भ दिया है।

1.5 भारत में की गई पहल

भारतीय नीति निर्माता स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की आर्थिक प्रगति के लिए अधिक चिंतित थे। पिछले दशकों में ही सरकारी, गैर सरकारी संस्थाओं तथा अनुदान एजेंसियों में आर्थिक विकास में महिलाओं की वास्तविक भूमिका के प्रति जागरूकता आई।

इस भाग में महिलाओं को सहायता प्रदान करने के लिए सरकार के पिछले तथा वर्तमान समय में किए गए प्रयासों का वर्णन किया गया है। इस अध्याय का मुख्य विषय सरकार के वे कार्यक्रम और गैर सरकारी संस्थाओं के प्रयास हैं जिनका लक्ष्य महिलाओं की उत्पादकता बढ़ाना तथा गरीबी को कम करना है। इनमें से अधिकांश कार्यक्रम लिंगीय भेद के बिना गरीबों के लिए बनाए गए हैं लेकिन कुछ विशेष प्रावधान केवल महिलाओं के लिए हैं।

सन् 1952 में महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम (सी डी पी) लागू करके पहला प्रयास किया गया। 1954 में प्रत्येक ब्लाक में कार्य करने के लिए महिला सामाजिक शिक्षा प्रबंधक के मार्ग दर्शन में दो ग्राम सेविकाओं की नियुक्ति की गई। इसी वर्ष कल्याणकारी उपाय भी किए गए जिनमें बच्चों की देखाभाल तथा गर्भवती महिलाओं के लिए पौष्टिक आहार का प्रावधान शामिल किया गया।

इस नीति का उद्देश्य गरीब महिलाओं की आर्थिक भूमिकाओं के बारे में जागरूकता पैदा करना है जिसकी शुरुआत 70 के दशक के आरंभ में हुई जब तीसरी दुनिया की अत्यधिक अर्थव्यवस्था के कृषि क्षेत्र में व्यापक असंतोष अनुभव होने लगा। इन नीतियों में व्यापक रूप से स्थिर रूप से खाद्य उत्पादन, ग्रामीण समुदायों का विनाश तथा परिणामस्वरूप गाँवों से शहरों को पलायन के बारे में देखा गया है तथा व्यापक रूप से चर्चा हुई है।

परिणामस्वरूप इसका बल आधुनिकता से बदल कर भोजन, आवास तथा गरीबों के स्वास्थ्य जैसे बुनियादी वितरण विषयों पर हो गया। फिर भी इस समय लिंगीय समानता पर कोई विशेष ध्यान आकर्षित नहीं हुआ। केवल 1975 में संयुक्त राष्ट्र के महिला दशक में ही विकास में महिलाओं के अध्ययन के लिए पर्याप्त अनुसंधान किए गए। अनुसंधानकर्ताओं ने बताया कि विकास का सामान्य प्रभाव नकारात्मक और विशेषत: ग्रामीण महिलाओं के संबंध में हुआ है।

1.5.1 सरकारी नीतियाँ और कार्यक्रम

भारत में महिलाओं के लिए सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों को विकास की प्रक्रिया में 1975 के वर्ष को विभाजक के रूप में समझा जा सकता है। 1974 में भारत में महिला स्थिति समिति ने 'समानता की ओर' नामक रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसमें महिलाओं की अलाभप्रद स्थिति प्रस्तुत की गई और इसके प्रमाण में महिलाओं के लिंगीय अनुपात में कमी, पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की निम्नतर जीवन आशा, बालिकाओं में अधिक मृत्यु दर तथा महिलाओं में अधिक अशिक्षा के प्रमाण प्रस्तुत किए।

इसके साथ इस क्षेत्र में किए गए कुछ अनुसंधान तथा एकत्रित आँकड़ों से इस बात का पता लगा कि हाशिये के श्रमिकों में महिला श्रमिकों की अत्यधिक संख्या है इससे नई नीति बनाने की आवश्यकता अनुभव हुई। छठी योजना (1980-85) में महिलाओं के लिए कार्यक्रमों में व्यापक परिवर्तन किए गए। योजना में स्वास्थ्य की देखभाल तथा परिवार नियोजन सेवाओं सहित महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता पर बल दिया गया। योजना के अनुसार स्वरोज़गार के लिए ग्रामीण युवा प्रशिक्षण योजना (टी आर वाई एस ई एम) में लाभ उठाने वालों का एक तिहाई महिलाएँ होनी चाहिए। यह कार्यक्रम 1982 में विशेष रूप से महिलाओं की सहायता के लिए तथा रोज़गार बढ़ाने की गतिविधियों को लागू करने के लिए चलाया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों के विकास के लिए एक अन्य योजना (डी डब्ल्यू सी आर ए) देश के 50 जिलों में भारत सरकार तथा यूनिसेफ द्वारा संयुक्त रूप से चलाई गई।

क्या आप जानते हैं 1

1979 से चलाया गया एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई आर डी पी) भारत सरकार का आशा से अधिक व्यापक ऋण आधारित गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम था। इसका उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे के औपचारिक रूप से ज्ञात किए गए परिवारों को व्यावसायिक बैंकों के माध्यम से ऋण प्रदान करना था। आई आर डी पी कार्यक्रम में महिलाओं की भागीदारी अत्यधिक थी जो 1985-86 से केवल 9.8% और 1991-92 में 33% से अधिक थी। इसके बाद से यह 1995-91 तक लगातार स्थिर रही। इसके बाद की अवधि में इसमें मामूली कमी आई।

7वीं योजना में महिलाओं का रोजगार कार्यक्रम को सहारा देने के लिए (एस टी ई पी) महिला और बाल कल्याण विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत 450 मिलियन रुपये प्रदान किए गए। इसका उद्देश्य कृषि, डेरी, मछली पालन, लघु पशुपालन, व्यवसाय और ग्रामीण उद्योग, हथकरघा, हस्तशिल्प तथा रेशम उत्पादन जैसे चुने हुए क्षेत्रों में कार्यरत गरीब महिलाओं को तकनीकी, संस्थागत, संगठनात्मक तथा सामाजिक सहारा प्रदान करना था। कार्यक्रम ने अपना मुख्य लक्ष्य गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को बनाया। यह कार्यक्रम विद्यमान ऐसी संस्थाओं जैसे सहकारी या स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से लागू किया गया जो मुख्य आर्थिक धारा और आर्थिक क्षमता के मध्य संयोजन को सुनिश्चित करते हों।

अपने अनुभव से सीखिए 1

किसी नजदीकी गाँव में जाइए तथा गरीब महिलाओं से मिलें। ज्ञात करें कि क्या गरीबी को ऊपर उठाने वाली विभिन्न सरकारी योजनाएं प्रभावकारी तथा सफल रही हैं? गरीब ग्रामीण महिलाओं से हुए वार्तालाप की रिपोर्ट अपनी कापी में लिखें।

इसके बावजूद यह भावना रही कि ग्रामीण विकास कार्यक्रम अधिकतम गरीब महिलाओं के पास नहीं पहुँच पा रहा है। इसके बाद डी डब्ल्यू सी आर कार्यक्रम 1982 में आरंभ किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य था कि महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक गतिविधियों के समूहों में संगठित किया जाए। इसका दोहरा उद्देश्य महिलाओं को स्वरोज़गार के अवसर प्रदान करना तथा उन्हें सामाजिक शक्ति प्रदान करना था (7वीं योजना के दस्तावेज़) आमदनी बढ़ाने वाली गतिविधियों के आर्थिक सहारा देने के अतिरिक्त, डी डब्ल्यू सी आर ए के उद्देश्य महिलाओं का अन्य सरकारी कार्यक्रमों और सेवाओं तक पहुँच को और अधिक बढ़ाना है। इस योजना में 15 से 20 महिलाओं के समूह बनाने की नीति बनाई गई है।

1.5.2 महिला मंडल कार्यक्रम

महिला मंडल कार्यक्रम 1954 में इस उद्देश्य के साथ आरंभ किया गया कि महिलाओं को परिवार प्रबंध का बेहतर ढंग से प्रशिक्षण दिया जाए। मंडलों को हाल ही के वर्षों में काफी महत्व मिला। एन सी एस डब्ल्यू ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि मंडलों को पंचायतों के बराबर अधिकार दिए जाने चाहिए ताकि उनके विचार स्थानीय अधिकार संरचना को प्रभावित कर सके (एन सी एस डब्ल्यू, 1988:305)

1.5.3 डब्ल्यू डी पी, राजस्थान

महिला विकास कार्यक्रम, (डब्ल्यू डी पी) राजस्थान यद्यपि 1984 में राजस्थान सरकार द्वारा आरंभ किया गया था जो अब महिला और बाल पोषण निदेशालय, सामाजिक कल्याण मंत्रालय के अंतर्गत आता है। यह 6 जिलों में लागू किया गया है। डब्ल्यू डी पी का मुख्य उद्देश्य महिलाओं को सूचना, शिक्षा और प्रशिक्षण के द्वारा अधिकार संपन्न बनाना तथा उन्हें अपने सामाजिक और आर्थिक स्तर को पहचानना तथा उसे सुधारना है। (राजस्थान सरकार, 1984)

1.5.4 व्यावसायिक प्रशिक्षण

महिलाओं के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम 1977 में केंद्रीय सरकार द्वारा अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन और स्विटजरलैंड अंतर्राष्ट्रीय विकास प्राधिकरण के सहयोग से चलाया गया। 1977 से 1986 तक लगभग 5000 महिलाओं को औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों (आई टी आई) द्वारा प्रशिक्षत किया गया। ये संस्थान राज्य सरकारों के अधीन हैं। इन विशेष महिला संस्थानों की कुल क्षमता लगभग 15000 है। 7वीं योजना के अंतर्गत राज्यों द्वारा इस कार्यक्रम को महिलाओं के लिए सह-शिक्षा संस्थानों में आरंभ करने के लिए केंद्र ने उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान की है।

1.5.5 ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम (एन आर ई पी, आर एल ई जी पी तथा जे आर वाई)

केंद्रीय सरकार के मुख्यत: वेतन वाले रोज़गार कार्यक्रम हैं - राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम (एन आर ई पी) तथा ग्रामीण भूमिहीन रोज़गार गारंटी कार्यक्रम (आर एल ई जी पी)। यद्यपि विशेषत: केवल महिलाओं को रोज़गार देने का कोई लक्ष्य तो नहीं है तो भी उन्हें प्राथमिकता देने की आशा है। निर्देश होने के बावजूद भी एन आर ई पी में केवल 17% कर्मचारी है तथा आर एल ई जी पी में 15% क्योंकि मज़दूरी वाले रोज़गारों में महिलाओं के साथ भेदभाव किया जाता है। महिलाओं की अधिक भागीदारी के लिए या महिलाओं को कोई सुविधाएँ प्रदान करने के लिए ऐसे कोई विशेष प्रावधान नहीं है जिससे जवाहर रोज़गार योजना में भी वे अधिक रोज़गार प्राप्त कर सके।

1.6 1990 के दशक के लिए आरंभ की गई नीतियाँ और कार्यक्रम

महिलाओं के लिए राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना 1986-2000 (एन वी पी डब्ल्यू) भारत सरकार द्वारा 1988 में जारी की गई। इसका उद्देश्य महिलाओं को भारतीय विकास में शामिल करने की सीमा का मूल्यांकन करना तथा "सभी महिलाओं के लिए न्याय एवं सामाजिक न्याय" की सिफारिश करना था। एन पी पी डब्ल्यू दर्शाता है कि भारतीय विकास के अतीत में विद्यमान संसाधनों के अंतर्गत आबंटित

अधिक राशि महिलाओं के अधिक प्रभावशाली विकास को सुनिश्चित नहीं करती।

क्या विकास के प्रयास महिलाओं के सभी समुदाओं तक पहुँच रहा है?
सौजन्य : सी.डब्ल्यू.डी.एस., नई दिल्ली

एन पी पी डब्ल्यू सिफारिश करती है कि मुख्य धारा वाले कार्यक्रमों और परियोजनाओं में महिलाओं के लिए विशेष आबंटन किया जाए और बुनियादी सेवाओं जिसका मुख्य जोर रोज़गार पर हो। यह योजना विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के लिए आरक्षण पर भी विशेष बल देती है।

एन पी पी डब्ल्यू महिलाओं के विकास के साथ केंद्रीय योजना आयोग में एक महिला इकाई की तथा संबंधित मंत्रालयों में महिला कक्षों की स्थापना का भी सुझाव देती है।

महिलाओं के संबंध में एन पी पी डब्ल्यू की अन्य सिफारिशें इस प्रकार हैं:

- असंगठित क्षेत्र में महिलाओं के लिए ऋण प्राप्त करने की बेहतर सुविधाएँ।
- विभिन्न तकनीकें अपनाने से पूर्व महिलाओं पर पड़ने वाले संभावित विपरीत प्रभावों पर विचार करना।

1.6.1 महिला विकास निगम (डब्ल्यू डी सी एस)

डब्ल्यू डी निगमों का उद्देश्य कल्याणकारी सेवाएँ प्रदान करने वाले राज्य समाज कल्याण विभागों के पारंपरिक कार्यक्रमों के मुकाबले महिलाओं की आर्थिक प्रगति को बढ़ावा देने के लिए संस्थागत आधार प्रदान करना था। निगमों का केंद्र बिंदु गरीब और जरूरतमंद महिलाएँ थी जिसमें अकेली रहने वाली महिलाएँ और महिला प्रधान परिवार भी शामिल हैं।

महिला विकास निगम वर्तमान में 11 राज्यों में कार्य कर रहे हैं जिनमें से चेन्नई, महाराष्ट्र, पंजाब तथा

केरल के सफल होने की सूचनाएँ है। एन सी एस डब्ल्यू ने देखा कि ये निगम दलालों, ठेकेदारों और साहूकारों के कार्यों पर अधिकार कर गरीब महिलाओं के लिए व्यापक निवेश और सेवाएँ प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

महिला समन्वय कार्यक्रम महिला समानता की शिक्षा प्रदान करने वाला है जैसे गुजरात, कर्नाटक तथा उत्तर प्रदेश के 10 जिलों में आरंभ किया गया है।

1.7 गैर सरकारी प्रयास

भारत में सामान्यत: सामाजिक विकास तथा विशेषकर महिला विकास के क्षेत्र में स्वैच्छिक, गैर-सरकारी प्रयत्नों की सुस्थापित परंपरा है। सर्वोदय संगठनों की उत्पत्ति 1940 के दशक में और 1950 के आरंभिक दशक में हुई। इस प्रकार के प्रयासों को व्यापक जन समर्थन प्राप्त हुआ। अन्य स्थापनाएँ 1970 के दशक में महिलाओं से संबंधित विषयों में रूचि बढ़ने के बाद आई। अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के पालन के बाद महिलाओं के साथ कार्य करने वाली गैर सरकारी संस्थाओं में पिछले दशक में उनके संचालन क्षेत्रों में अपना दायरा बढ़ाया है। भारत में स्वैच्छिक कार्यों को चार स्रोतों से प्रेरणा मिलती है. (क) धर्म, (ख) राष्ट्रीयता, (ग) सिद्धांत तथा (घ) व्यवसायवाद।

सरकार और गैर सरकारी संगठनों के बीच सहयोग स्वतंत्रता के तुरंत बाद आरंभ हो गया था। सातवीं योजना के प्रलेख में भारतीय इतिहास में पहली बार स्वैच्छिक एजेंसियों पर एक अध्याय था। सरकारी धन गैर सरकारी संगठनों को प्रदान करने के लिए प्रमुख संस्था के रूप में जन कार्य और ग्रामीण तकनीक प्रगति परिषद (सी ए पी ए आर टी) की स्थापना की गई।

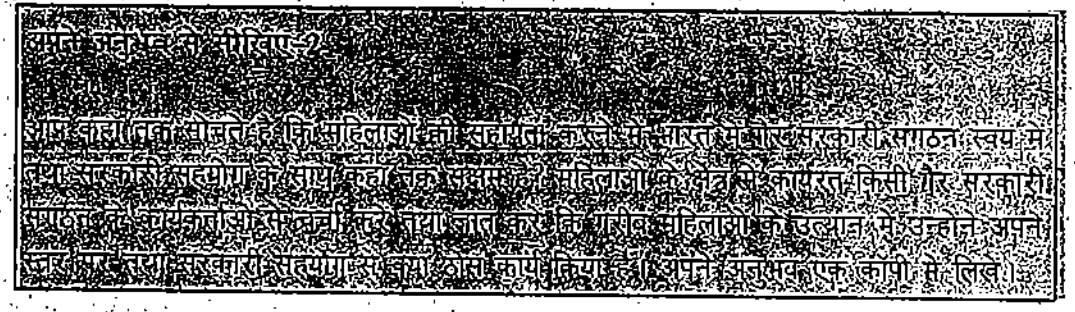

यह एक स्वीकृत सत्य है कि गैर सरकारी संगठन भारत में महिलाओं के विकास के बहुआयामी कार्यों को करने में निरंतर और अधिक महत्वपूर्ण परंपराएँ निभाएंगे। आगे महिलाओं के विषयों को मुख्य धारा में शामिल करने से पर्याप्त परिणाम प्राप्त होंगे उसी समय शीघ्र ही नीति निर्माता पहचानेंगे कि ये उद्देश्य मूलक कार्यक्रम कुछ परेशान महिलाओं के जीवन सुधारने में उपयोगी हैं। महिलाओं के विकास के लिए सरकारी या गैर सरकारी संगठनों के प्रयासों में सहारा देने की इच्छुक किसी संस्था के लिए वहीं तरीका अपनाना सही नीति होगी। यह नीति महिलाओं के लिए पोषण, स्वास्थ्य की देखभाल, प्राथमिक एक उच्चतर शिक्षा और गैर पारंपरिक व्यवसायों में उत्पादन प्रशिक्षण में निवेश के माध्यम से दीर्घावधि में महिलाओं के लिए अवसर संरचना में व्यापक परिवर्तन लाएगी वहीं कार्यक्रमों को प्रत्यक्ष रूप से सहायता करने से गरीब महिलाओं को लाभ होगा तथा वितरण व्यवस्थाएँ उपेक्षित आधी आबादी की तरफ मुड़ जाएगी।

जनसंख्या की दों तिहाई से अधिक महिलाएँ गरीबी रेखा से नीचे होने के पर्याप्त प्रमाण देने पर महिलाओं को लक्ष्य बनानें या महिलाओं को मुख्य धारा में शामिल करने वाले कार्यक्रमों में महिलाओं की पहुँच को

सुधारने वाले उपायों पर खर्च करना संभवत: सार्थक है।

1.8 सारांश

60 के दशक में और 70 के दशक के आरंभिक वर्षों में योजनाकारों का मुख्य उद्देश्य परिवार नियोजन था। 70 के दशक के अंतिम वर्षों में और 80 के दशक के आरंभिक वर्षों में केंद्र बिंदु थे - समानता और कार्यदक्षता। पहली अवधि में पुरुषों के बराबर महिलाओं के समान अधिकारों को प्रवर्तित किया गया जबकि बाद की अवधि में विकास लक्ष्यों को पूरा करने के लिए महिला श्रम और संसाधनों को सक्रिय करने की आवश्यकता की व्याख्या की गई।

70 के दशक की बुनियादी आवश्यकताओं की कार्यनीति नीति महिलाओं को विकास सहायता का उदासीन प्राप्तकर्ता के रूप में देखती है। 90 के दशक की बुनियादी सेवाओं की संकल्पना महिलाओं को भविष्य निर्माण में संपूर्ण भागीदारी के लिए ऐसे कार्यकर्ता के रूप में देखती है जिन्हें बुनियादी सेवाओं की आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण का लक्ष्य महिलाओं को शक्ति संपन्न बनाना है ताकि वे अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने जीवन को संगठित कर सके। यद्यपि इस दृष्टिकोण में पूर्व नीतियों के अनेक तथ्य जैसे स्वास्थ्य सेवाएँ, शिक्षा तथा प्रशिक्षण आदि को अपनाया हुआ है। लेकिन वर्तमान दृष्टिकोण इन सेवाओं को महिलाओं की सहायता के रूप में देखती है ताकि वे अपनी सामुदायिक आवश्यकताओं के अनुरूप विकास कार्यक्रमों में परिवर्तन के लिए स्वयं को संगठित कर सकें।

परिवर्तित विचारधाराएँ महिलाओं की भूमिका तथा व्यक्ति की परिवर्तनशील संकल्पना को दर्शाती है। इनमें मुख्य बल प्राथमिक पुनरुत्पादक भूमिका और संसाधनों (बुनियादी आवश्यकताएँ) की प्राप्तकर्ता से परिवर्तित हो कर उनके अधिकारों, विकास में उनके सक्रिय भागीदारी की भूमिका तथा अंत में विकास के लिए विशिष्ट कार्यक्रम के साथ सक्रिय कार्यकर्ता पर दिया गया है।

विकास में महिलाओं की प्रभावशाली भागीदारी को शामिल करने और समायोजित करने के लिए यह नियमित परिवर्तन दर्शाता है कि महिलाओं की दशा सुधारने वाली ये शुरुआत अपना उद्देश्य प्राप्त करने में असफल हो गई हैं। इन प्रयासों ने महिलाओं पर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाने तथा अपने विकास लक्ष्य स्वयं बनाने के लिए उन पर सकारात्मक प्रभाव डाला है।

समकालीन लिंगीय जी ए डी संकल्पना महिलाओं की भूमिका को परिवार, स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पुरुष-स्त्री के परस्पर संबंध तथा सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में आहार-प्रदान करने वाले रूप में देखती है।

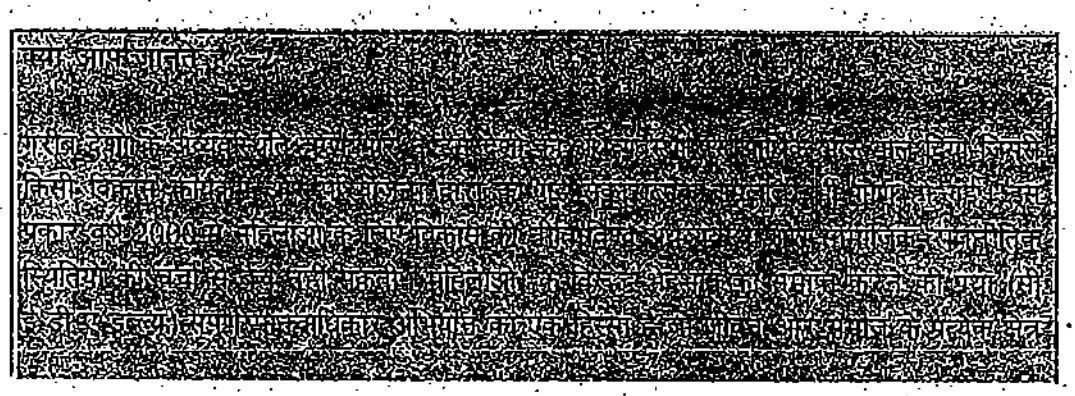

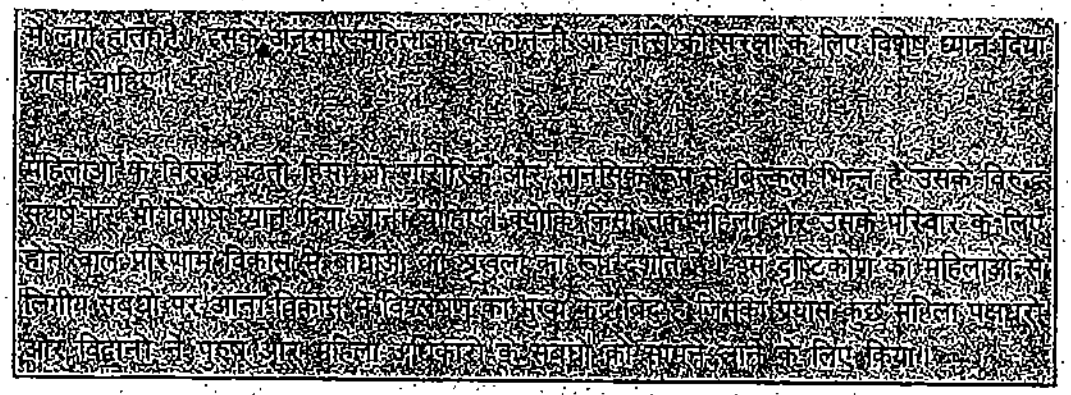

डब्ल्यू आई डी योजना 1970 के दशक में सामने आई क्योंकि महिलाओं को विकास नीति में विशेषकर स्त्रीलिंग के रूप में शामिल किया जा चुका था अर्थात जब पुरुष परिवार के मुखिया और उत्पादक एजेंट के रूप में नीति प्रक्रिया में शामिल थे। महिलाओं को आरंभिक रूप में घरेलू पत्नी, माता के रूप में देखा जाता है। (जैकट तथा स्ट्रोडट, 1988)। इसके बाद मुख्य धारा विकास के प्रयत्नों का मुख्य लक्ष्य पुरुष आबादी थी जबकि महिलाएँ एक बार फिर कल्याणकारी क्षेत्र में और अधिक हाशिये पर धकेल दीं गईं। जैसा कि बुवेनिक ने कहा है : तीसरी दुनिया में दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय राहत एजेंसियों द्वारा आरंभ किए गए कल्याणकारी कार्यक्रमों का महिलाओं ने सबसे अधिक लाभ प्राप्त किया है। ये कल्याणकारी कार्यक्रम गरीब महिलाओं की जरूरतों को पूरा करने के लिए एकमात्र रूप से उनकी माता और ग्रहणी की भूमिका के रूप में बनाए गए हैं (बुवेनिक, 1983 पृष्ठ 24)

गरीबी उन्मूलन और बुनियादी आवश्यकताओं का केंद्र बिंदु महिलाओं और कल्याण पर दिए गए आरंभिक जोर तथा पूरजोर कार्यदक्षता के बीच संक्रमण चरण को उजागर करता है जो वर्तमान की डब्ल्यू आई डी नीतियों में मुख्य दृष्टिकोण के रूप में प्रकट हुआ। यह बड़ा विचित्र है कि कार्यदक्षता के रूप में स्थानांतरण से डब्ल्यू आई डी विचारधाराओं की उत्पत्ति हुई तथा महिलाओं पर आर्थिक एजेंट के रूप में उनके अपने अधिकार के रूप में उस समय जोर दिया गया जब विश्व अर्थव्यवस्था में अत्यधिक गिरावट आ रही थी तथा राष्ट्रों के एकमात्र प्रभुसत्ता एजेंटों के रूप में कार्य करने की योग्यता को खतरा हो गया था।

आधुनिकीकरण का सिद्धांत ऐसे सामाजिक परिवर्तनों पर आधारित है जो पश्चिमी प्रगति और औद्योगिकरण के दौर में तथा ऐसे गैर आर्थिक तथ्यों को पहचानने तथा उन्हें अलग के दौर में हुए जो तीसरी दुनिया के देशों में आर्थिक विकास में या तो वृद्धि करने या बाधा डालने में हमेशा वास्तविकता को स्पष्ट न कर सके।

निजी क्षेत्र में बनाए गए तथा लागू किए विकास करने वाले कार्यक्रम महिलाओं के समय और कार्य शक्ति पर विवादित माँग उत्पन्न करती है। ये विकास कार्यक्रम महिला श्रम का अत्यधिक शोषण के कारण असफल या विपरीत परिणाम वाले माने गए है। पिछले आर्थिक विकास प्रयत्नों में महिलाओं की आर्थिक एजेंसी और उत्पादक योगदान की अनदेखी के कारण कोई आश्चर्य नहीं था कि जेंडर रोल फ्रेम वर्क ने श्रम के लिंगीय विभाजन में केंद्रीय स्थान दिया। जी आर एफ का उद्देश्य पहचान उपकरण के रूप में संबंधित परियोजनाकारों के लिए दुर्लभ संसाधनों का दक्षतापूर्वक उपयोग करना था। तीहरी भूमिका की संरचना संबंधित सामाजिक नीति विषयों के साथ अधिक निकटता से मेल खाते थे। यह विशिष्ट योजना की धारणा के रूप 'लिंगीय योजना' को बढ़ावा देती है। इसमें भूमिका संबंधित लिंगीय भेदों और इस प्रकार आवश्यकताओं में लिंगीय भेदों का ध्यान रखती है। सामाजिक संबंध संरचना (एस आर एफ

– सोशल रिलेशंस फ्रेम वर्क) नीति प्रक्रिया के विभिन्न पहलूओं में लिंगीय स्वरूप को जोड़ने के लिए एक पद्धति प्रदान करती हैं।

देखा जा सकता है कि समस्या विकास के सिरे पर ही असमानता में निहित है। इसका उपाय है आर्थिक नीति के प्रति लिंगीय जागरूकता वाली विचारधारा। यह विचारधारा सामाजिक संबंधों और इस प्रकार महिलाओं पर प्रतिबंध लगाने वाला दृष्टिकोण व्यवस्था पर प्रतिबंध के विपरीत परिवार और आवश्यकता केंद्रित हो। इरेन टिंकर्स के शब्दों में, "यदि दो दशक आगे पहले महिलाओं के लिए न्याय प्राप्त करने के मार्ग पर जोर था तो आज स्थानीय, राष्ट्रीय और विश्व राजनीति पर जोर है। यदि पुरुष प्रधानता वाली परंपरा ही सभी स्तरों पर महिलाओं की असमानता के लिए जिम्मेदार है तो नारी समर्थकों के कार्यक्रम इन परंपराओं को बदलने या समाप्त करने के लिए इनका विश्लेषण करने वाले होंगे।" भारत ने पहले ही सरकार की सकारात्मक कार्रवाई के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं अर्थात स्थानीय स्वशासन (73वां संविधान संशोधन) तथा शहरी स्थानीय संस्थाओं (74वां संविधान संशोधन) में महिलाओं के स्थान आरक्षित कर प्रथम सोपान पर सफलता प्राप्त कर ली है।

सन् 1975 में महिलाओं के बारे में प्रथम विश्व सम्मेलन से अब की गई प्रगति के बावजूद अभी बहुत कुछ करना शेष रहता है। हालांकि अनेक समाजों में महिलाओं ने महत्वपूर्ण प्रगति की है तो भी लगभग हर जगह अभी भी महिलाओं के विषयों को गौण प्राथमिकता दी जाती है। महिलाओं को भेदभाव का तथा दर किनार करने का अत्यधिक एवं बदनामी के तरीके से सामना करना पड़ता है। महिलाओं से संबंधित विषय सार्वभौमिक और विश्वव्यापी हैं। गहराई से मजबूत बनी धारणाओं व्यवहारों ने प्रतिदिन निजी तथा सार्वजनिक जीवन में महिलाओं के विरुद्ध असमानता और भेदभाव को स्थाई बना दिया है। निष्कर्षत: सभी कार्य नीतियों और कार्यक्रमों में समन्वित लिंगीय स्वरूप की आवश्यकता है।

1.9 शब्दावली

रोज़गार : अर्थ प्राप्ति की गतिविधियाँ

व्यवसाय : रोज़गारमूलक गीतिविधियाँ

1.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

भाव, इला, 1987, इनविजीबिलिटी आफ होम बेसड वर्क : दि केसस्टडी आफ पीस रेट वर्कस इन इंडिया एम.एम.सिंह तथा ए. केल्लस – विलटानिन (एडी.) *इनविजिब्ल हेंडस*, नई दिल्ली : सेज

शिव, वन्दना, 1988, *स्टेइंग अलाईव*, नई दिल्ली : काली फॉर वूमन।

इकाई 2 भूमि और प्राकृतिक संसाधन

रूपरेखा

2.0 लक्ष्य और उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 विधिक और नीति संबंधी उपाय
  2.2.1 महिलाओं के कानूनी अधिकार
2.3 भूमि में पहुँच और नियंत्रण
  2.3.1 व्यावहारिक लिंगीय आवश्यकताएँ
  2.3.2 लिंग, भूमि और समुदाय
2.4 महिलाएँ और प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंध
  2.4.1 प्राकृतिक संसाधन और निर्धनता
  2.4.2 महिलाएँ और पर्यावरण संबंधी निम्नीकरण
2.5 राज्य की प्रतिक्रिया
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में भूमि और प्राकृतिक संसाधनों के विभिन्न पहलुओं के अतिरिक्त इनसे संबंधित नियंत्रण और प्रबंध व्यवस्था की जानकारी दी गई है। महिलाएँ जो इन संसाधनों से जुड़ी हुई हैं किंतु उनके हाथों में इन पर नियंत्रण है और न ही उनका प्रबंध। इसलिए वे इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप निम्नलिखित को समझने में समर्थ होंगे :

- भूमि और अन्य प्राकृतिक संसाधनों का महत्व की जानकारी;
- दावे की कानूनी मान्यता एवं इसकी सामाजिक मान्यता तथा दबावों के बीच अन्तर-भेद की समझ;
- महिलाओं की पहुँच, नियंत्रण तथा प्राकृतिक संसाधनों की प्रबंध व्यवस्था का विस्तार;
- हरित क्रांति संबंधी प्रौद्योगिकी;
- महिलाओं पर पर्यावरण संबंधी निम्नीकरण के प्रभाव का स्पष्टीकरण; तथा
- इस पर्यावरण संबंधी निम्नीकरण के लिए राज्य की जिम्मेदारी की व्याख्या इत्यादि को समझ सकेंगे।

इस प्रकार से प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों की जागरूकता को उजागर करना है और इसके साथ इन क्षेत्रों से संबंधित लिंगीय भेदभावों के प्रति भी आपको जानकारी देना है। यह जानकारी महिलाओं और आर्थिक विकास पर इस विशेष पाठ्यक्रम के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में लोगों की उत्तरजीविता एवं विशेषकर कृषिक समाजों में जीवन-निर्वाह के लिए भूमि और

प्राकृतिक संसाधनों के महत्व की जानकारी प्रदान की गई है। इसके साथ-साथ इस तथ्य को भी उजागर किया गया है कि जो महिलाएँ मुख्य रूप से अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए उत्तरदायी हैं और जीवन-निर्वाह के लिए मात्र भूमि और प्राकृतिक संसाधनों पर ही निर्भर हैं, वे पर्यावरण संबंधी निम्नीकरण से सबसे बुरी तरह प्रभावित है। कृषिक अर्थव्यवस्थाओं में यदि भूमि तक पहुँच न हो और इसका नियंत्रण भी अपने हाथों में न तो ऐसी स्थिति में इन महिलओं की स्थिति अत्यंत दयनीय हो जाती है। परिवर्तित सामाजिक स्तर और सांप्रदायिक संसाधनों के निजीकरण से ग्रामीण समुदायों में विषमता अधिक बढ़ी है और इससे लिंगीय भेदभाव भी बढ़े हैं। इन सामाजिक वर्गों में आपसी विषमता दूर करने और महिलाओं को पर्याप्त न्याय दिलाने के लिए यह आवश्यक है कि महिलाओं को न केवल भूमि अधिकार प्राप्त हों बल्कि प्राकृतिक संसाधनों तक उनकी पहुँच हो और नियंत्रण में भी सुधार हो।

2.2 विधिक और नीति संबंधी उपाय

कृषि पर आधारित दक्षिण एशियाई जनसंख्या के अधिकांश भाग में निर्धनता से जूझने का एकमात्र साधन कृषि-योग्य भूमि होती है। इन ग्रामीण क्षेत्रों में न केवल परिवार के भीतर बल्कि बाहर भी भूस्वामित्व द्वारा ही सामाजिक स्थिति और राजनीतिक शक्ति को पहचान प्राप्त होती है। किंतु इसके बावजूद भी अधिकतर महिलओं को भूमि के संदर्भ में प्रभावी भू-स्वामित्व अधिकार प्राप्त नहीं हैं। यद्यपि एक निश्चित सीमा तक महिलाओं ने अपनी लड़ाई लड़ी और भू-स्वामित्व और भू-नियंत्रण वाले अधिकारों को प्राप्त करने में जीत भी हासिल की किंतु फिर भी व्यावहारिक रूप में स्थिति अभी भी अच्छी नहीं। महिलाओं को भू-स्वामित्व नाम मात्र ही प्राप्त है जबकि इनमें से भी केवल कुछ ही भूमि पर नियंत्रण करने योग्य है। भारत में महिला भू-अधिकार जैसे मुद्दे की उपेक्षा होती है और लोक नीतियों में भी इसका कोई विशेष उल्लेख नहीं है। यह तो केवल छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में पहली बार महिलाओं की भूमि संबंधी आवश्यकताओं की ओर कुछ ध्यान दिया गया और यह भी केवल उन दरिद्र परिवारों के संदर्भ में संभव हुआ जहाँ निराश्रय महिलाओं को भू-स्वामित्व द्वारा आवश्यक आर्थिक सुरक्षा प्रदान की गई थी। जबकि सरकारी भूमि के पुनर्वितरण कार्यक्रमों में जैसा कि प्रस्तावित किया गया था भूस्वामित्व पति और पत्नी के संयुक्त नाम में न होकर केवल पति के नाम पर ही दिए गए। इसलिए यह प्रस्ताव मात्र कागज़ी वायदा बनकर रह गया। सातवीं योजना (1985-90) ने संयुक्त शीर्षकों वाले निदेशों पर पुनः कोई भी प्रस्ताव नहीं रखा। सन् 1998 से 2000 ई. तक महिलाओं के लिए तैयार की गई राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना में महिलाओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कुछ ऐसी सिफारिशें तैयार की गई ताकि महिलाओं को भूस्वामित्व प्राप्त हो सके। आठवीं योजना (1992-1997) में महिला और कृषि भूमि के विशिष्ट संदर्भ में यह बताया गया कि पैतृक संपत्ति से जुड़े नियमों को परिवर्तित करने की आवश्यकता है और अतिरिक्त सरकारी भूमि का 40 प्रतिशत भी महिलाओं को आबंटित किया जाना चाहिए। किंतु अभी यह देखना बाकी है कि क्या यह नीतियाँ लागू भी की जाएगी या नहीं। अन्य दक्षिण एशियाई देश जैसे कि नेपाल, बांग्लादेश, पाकिस्तान और श्रीलंका आदि में तो स्थिति और भी खराब है: इन देशों के विधिवत् योजना दस्तावेजों में महिलाओं के भू-स्वामित्व अधिकारों को उल्लेख कहीं भी नहीं होता है।

2.2.1 महिलाओं के कानूनी अधिकार

यद्यपि महिलाओं को भूसंपत्ति में कुछ निश्चित अधिकार प्राप्त है किंतु फिर भी अधिकांश दक्षिण एशियाई महिलाओं को केवल अपने कानूनी दावों को समझने बल्कि प्राप्त भूसंपत्ति को नियंत्रित करने में भी अनेक गंभीर अवरोधों का सामना करना पड़ता है। यहाँ प्राप्त संपत्ति का लाभ इसके स्वामित्व में निहित नहीं है बल्कि इसके प्रभावी नियंत्रण में होता है। अधिकांश समाजों में संपत्ति नियंत्रण का

अधिकार परिवार के मुखिया अर्थात् पुरुष को ही प्राप्त होता है जिन्हें कि न केवल धन उत्पादक माना जाता है बल्कि परिसंपत्तियों का स्वामी भी माना जाता है।

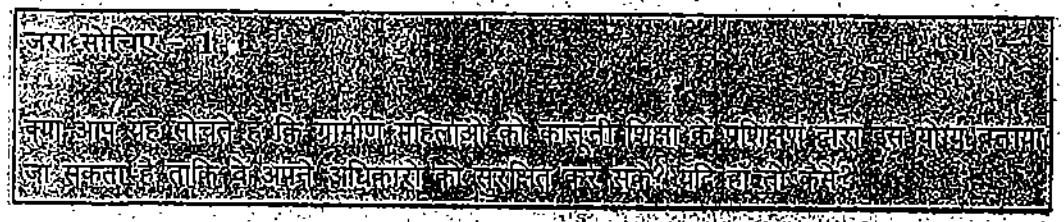

जरा सोचिए – 1.1

क्या आप यह सोचते हैं कि ग्रामीण महिलाओं को कानूनी शिक्षा के प्रशिक्षण द्वारा इस योग्य बनाया जा सकता है ताकि वे अपने अधिकारों को सुरक्षित कर सकें? यदि हाँ तो कैसे?

वे उन कानूनों के पक्ष में होते हैं जो न केवल भू-स्वामित्व बल्कि इसे नियंत्रित करने में भी पुरुषों की दावेदारी होती हैं और इस प्रकार से लिंगीय विचारधारा का स्वरूप निश्चित करने में भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दूसरे महिलाओं की वर्ग स्थिति भी कुछ अस्पष्ट सी है – ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक स्तर की अपेक्षाकृत उच्च हो सकता है फिर भी भूस्वामित्व वाली महिलाएँ इस संपत्ति पर अपना अधिकार सिद्ध करने में असमर्थ होती हैं। इस प्रकार से संपत्ति नर-नारी के आपसी संबंधों को भी प्रवाहित करती हैं और केवल महिलाओं के आपसी संबंध भी इससे प्रभावित होते हैं। तीसरे महिला और संपत्ति के बीच के संबंध भी लिंगीय विचारधारा से काफी प्रभावित होते हैं। महिला द्वारा पुरुष की बराबरी और इसकी सीमित पहचान जैसे विचार महिला सक्षमता को विधिक और नीति के संदर्भ में अपने दावे सिद्ध करने में प्रतिबंधित करते हैं और असमानता को दूर करने में भी एक चुनौती देते हैं। लिंगीय विचारधारा और इसके विभिन्न स्वरूप पीढ़ी दर पीढ़ी चलते हैं और इस विचारधारा को केवल इतिहास द्वारा हीं बदला जाता है और भूस्वामित्व और इस पर नियंत्रण जैसी प्रणालियाँ विभिन्न संस्कृतियों के इतिहास के अनुसार ही चलती हैं। इसके आगे भूमि का स्वरूप चाहें कैसा भी हो जैसे 'कृषि योग्य या सामान्य' दहेज में प्राप्त सचल संपत्ति और इस प्रकार की संपत्तियों की उत्पत्ति आदि कुछ ऐसे विचार हैं जो विवादों को जन्म देने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

2.3 भूमि में पहुँच और नियंत्रण

जब हम अधिकारों को निश्चित करते हैं तो हमारा आशय दावों से होता है जिन्हें कानूनी और सामाजिक स्तर पर स्वीकार किया जाता है और फिर कानूनी मोहर द्वारा इन्हें लागू किया जाता है। भूमि अधिकार को स्वामित्व अधिकार या भूमि उपयोग संबंधी अधिकार के रूप में प्राप्त किया जाता है। ये अधिकार पैतृक, व्यक्तिगत, जाति-विशेष या राज्य हस्तांतरण से प्राप्त होते हैं।

फिर भी यह आवश्यक है कि 'भूस्वामित्व' और 'भूमि में पहुँच' के बीच क्या अंतर है, पहले इसे समझा जाए। स्वामित्व द्वारा भूमि तक 'पहुँच' और अपने निजी अधिकारों के अतिरिक्त नातेदार लोग आपसी प्रेम के आधार पर भी भूमि प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि किसी की बहन के पति न रहें तो ऐसी स्थिति में उसे अपने भाई की भूमि का उपयोग करने की अनुमति मिलनी चाहिए। इस प्रकार से वह महिला भूमि तक पहुँच सकती है किंतु यह उसका अधिकार नहीं कहलाएगा।

इसके अतिरिक्त यह जानना भी आवश्यक है कि किसी दावे की वैधिक मान्यता और सामाजिक मान्यता में क्या अंतर है और इसे कैसे लागू किया जाता है। जैसे कि कानूनी तौर पर किसी भी महिला को पैतृत संपत्ति प्राप्त करने का अधिकार है किंतु सामाजिक तौर पर इसे मान्यता नहीं दी जाएगी और ऐसी महिलाओं के परिवारजन ही उन पर जोर डालेंगे कि वे न केवल अपना हक छोड़ दें बल्कि भूमि का प्रभावी नियंत्रण भी प्राप्त न करें जिसमें भूमि की बिक्री, इस [illegible] रखना और इस भूमि पर उपजी फसल की बिक्री आदि सभी अधिकार शामिल [illegible] निजी माम[illegible] किसी वर्ग [illegible]

महिलाओं से भी यह आशा की जाती है कि वे भूस्वामित्व और भूमि के उपयोग संबंधी अधिकार प्राप्त न करें और राज्यों द्वारा हस्तांतरित और पैतृक संपत्ति के मामलों में भी अपना हक छोड़ दें। अतः ऐसे पेचीदा मामलों को ध्यान में रखते हुए महिलाओं को चाहिए कि वे इसके प्रति संघर्ष करें ताकि भूमि में उनके अधिकार 'प्रभावी' हों अर्थात् उन्होंने केवल कानूनी अधिकार प्राप्त हों बल्कि भूमि पर उनका पूर्ण नियंत्रण भी हो और इस भूमि की उपज को बेचने का अधिकार भी इन महिलाओं को ही प्राप्त हो।

मिट्टी में लिपट हाथ-पैर क्या उनका भूमि पर नियन्त्रण है?
सौजन्य : प्रो० कपिल कुमार, इग्नू, नई दिल्ली

2.3.1 व्यावहारिक लिंगीय आवश्यकताएँ

यदि महिलओं को भूमि संबंधी अधिकार प्राप्त होते हैं तो इनकी कुछ मूल आवश्यकताओं में भी सुधार लाना होगा क्योंकि ये अधिकार न केवल घर के भीतर बल्कि बाहरी समाज में भी लिंगीय संबंधों में भी असमानता लाते हैं जोकि महिलाओं के समक्ष एक चुनौती होगी। भूमि में अधिकार प्राप्त करने की वर्तमान राजनीतिक और आर्थिक ढाँचे के लिए भी एक चुनौती है और इस प्रक्रिया द्वारा वर्तमान लिंग असमानताओं में भी संघर्ष और बढ़ेगा।

अधिकांश दक्षिण एशियाई समुदायों में महिलाओं को पैतृक भूसंपत्ति को प्राप्त करने के कानूनी अधिकार प्राप्त हैं। जबकि परंपरागत पितृवंशीय समुदायों में महिलाओं को व्यावहारिक रूप में अपने अधिकारों का शायद ही पता हो। इसलिए अधिकांश महिलाएँ पुत्री के रूप में विधवा होने पर या बहन के रूप में पैतृक भूसंपत्ति को प्राप्त नहीं करती। बहुत कम मामलों में जहाँ परिवार में कोई पुत्र न हो और दामाद अपने ससुराल में ही रहता हो, ऐसी स्थिति में पुत्रियाँ ही पैतृक संपत्ति ग्रहण करती हैं। पुत्री के अपेक्षा विधवा के रूप में भूसंपत्ति के दावे में किसी महिला को सामाजिक वैधता के प्रति संघर्ष अधिक करना पड़ता है। चाहे सारी भूमि उसी के नाम हो फिर भी वह न तो उस भूमि पर पूर्ण नियंत्रण रख सकती है और न ही अपनी मर्जी से इसका उपयोग या इसे हस्तांतरित कर सकती है क्योंकि भारत में क्षेत्र, धर्म और समुदाय के अनुसार पैतृक भूमि, इसका नियंत्रण, भूमि के उपयोग और इसके विस्तार के तरीके भिन्न-भिन्न होते हैं।

2.3.2 लिंग, भूमि और समुदाय

परंपरागत मातृकुलीय समुदायों में महिलाओं को पैतृक संपत्ति प्राप्त करने में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इन समुदायों में महिलाएँ विशेषकर वैवाहिक विवाद या विधवा होने की स्थिति में भूमि के प्रति अपने दावे छोड़ देती हैं ताकि इसके बदले वे अपने भाइयों से सहयोग प्राप्त कर सकें और अपने जन्म स्थानों तक पहुँच सकें। ये अधिकार भी विभिन्न समुदायों और क्षेत्रों में अलग-अलग होते हैं। पर्दा प्रथा, नारी एकांतवास आदि प्रथाएँ महिलाओं को प्रतिबंधित करती हैं ताकि वे न तो किन्हीं बाहरी व्यक्तियों या उनके सिद्धांतों का अनुसरण करें, उनकी शारीरिक और सामाजिक गतिशीलता भी सीमित हों वे अपने कार्यकलाप घर तक सीमित रखें, शिक्षा से वंचित हों और यदि किसी निर्णय पर पहुँच भी जाए तो उसमें पुरुष रिश्तेदारों का हस्तक्षेप अवश्य हो।

इन महिलाओं के विरुद्ध पुरुष नातेदारों द्वारा की गई शत्रुता के मामलें भी पाए गए हैं जो कदाचित यह नहीं चाहते कि वे भूमि संबंधी अधिकार प्राप्त करें। संबंधियों द्वारा की गई शत्रुता के अतिरिक्त महिलाओं को अपने कानूनी अधिकारों का प्रयोग करने में भी प्रशासनिक, न्यायिक निकाय से पुरुष-पक्षपाती का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार के पक्षपात द्वारा सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों को सूत्रबद्ध करना और इनका कार्यान्वन करना अधिक जटिल बन जाता है। इन सभी अवरोधों के बावजूद भी एक बदलाव देखने को मिला है और महिलाओं ने कुछ परंपरागत पितृवंशीय समुदायों में अपने पैतृक अधिकार और/अपना हिस्से के प्रति दावा करना भी आरंभ कर दिया है।

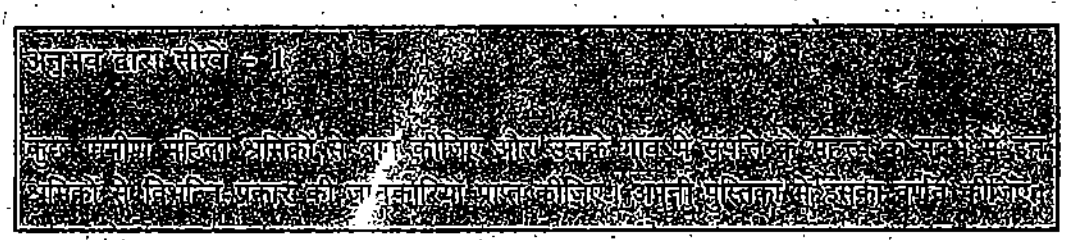

भारत में परंपरागत मातृकुलीय और बहुपक्षीय समुदाय जैसे कि नायर और गारो समुदायों में अभी भी एक निश्चित सीमा तक महिलाओं को लाभ प्राप्त होते हैं। महिलाओं को पैतृक संपत्ति प्राप्त करने के लिए अनेक अवरोधों का सामना करना पड़ता है।

यद्यपि कानूनी तौर पर वारिस और व्यावहारिक रूप से वारिस कहलाने में काफी अंतर है फिर भी एक अन्य महत्त्वपूर्ण मुद्दा यह है कि भूस्वामित्व और भूमि पर नियंत्रण होने में भी तो काफी अंतर है। नियंत्रण का मुद्दा अनेक बातों से जुड़ा है जैसे कि पहला — पैतृक या अर्जित संपत्ति मुख्य रूप से महिला के नाम हों। दूसरा वे भूमि को अपनी इच्छा से बेच सकें। तीसरा — यह निर्णय भी महिला का ही हों कि भूमि का उपयोग किस प्रकार से किया जाए। अध्ययन से पता चलता है कि मात्र कानूनी तौर पर वारिस होने में कोई भी महिला भूमि पर अपना अधिकार नही जमा सकती। चाहे यह संपत्ति पैतृक ही हों, फिर भी सगे-संबंधी या पड़ोसी जबरदस्ती, छल-कपट या हिंसा द्वारा संपत्ति को हथियाने की पूरी कोशिश करेंगे।

जब किसी भी महिला को स्वामित्व और नियत्रण संबंधी अधिकार प्राप्त हो जाते है फिर भी यह आवश्यक नहीं है कि वह इसे बेच सकें और इससे जुड़े प्रबंध की निगरानी कर सके, क्योंकि शारीरिक और सामाजिक तौर पर उसका यह निश्चित दायरा है और वह बहिर्विवाह, पितृसत्ता जैसी व्यवस्थाओं के सामने विवश है और श्रम और प्रौद्योगिकी पर पुरुषों द्वारा नियंत्रण और निराक्षरता आदि कारणों में भी भूमि को स्वयं नियंत्रित करने में असमर्थ होती है।

यदि महिलाए पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त करना चाहती हैं तो यह आवश्यक है कि विचारधारा में परिवर्तन हो और समाज में नयी चेतना उत्पन्न हो।

2.4 महिला और प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंध

अब इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है कि अन्य प्राकृतिक संसाधन जैसे वन, गाँव की सामान्य भूमि और पानी के में भी महिलाओं का नियंत्रण बढ़े और प्रबंध में भी इनकी भूमिका का विस्तार हो। यह सब अंतर्संबंधी प्रक्रियाओं पर आधारित है जैसे कि पहली — फैलता हुआ परिमाणात्मक और गुणात्मक निम्नीकरण, दूसरी — इन संसाधनों के प्रति राज्य और निजी व्यक्तियों का बढ़ता नियंत्रण, तीसरी — सामुदायिक संसाधन प्रबंध प्रणालियों में आयी गिरावट, चौथी — जनसंख्या में वृद्धि और पाँचवी — कृषि प्रौद्योगिकी में आए परिवर्तन और देशी ज्ञान, विज्ञान की पद्धतियों पर इसका प्रभाव। न केवल ग्रामीण भारत में बल्कि एशियाई और अफ्रीकी देशों में भी खाद्य ईंधन, चारा, रेशा, छोटी इमारती लकड़ी, खाद, जड़ी-बूटियाँ, तेल, पानी, शहद और मसाले आदि गाँव की सामान्य भूमि और वनों से ही एकत्र किए जाते हैं। ग्रमीण निर्धन परिवारों के लिए ये भूमि और वन जीवन-निर्वाह का एकमात्र महत्त्वपूर्ण साधन हैं और अत्यंत उपयोगी होते हैं।

ये करीब 91 प्रतिशत से भी अधिक जलाऊ लकड़ी इन वनों से प्राप्त करते हैं और इनके पशु करीब 61 प्रतिशत से भी अधिक चारा, इन गाँवों की सामान्य भूमि से प्राप्त करते हैं। इस प्रकार से गाँव में निर्धन और सामान्य परिवारों के बीच आय संबंधी असमानताएँ कम हो जाती हैं।

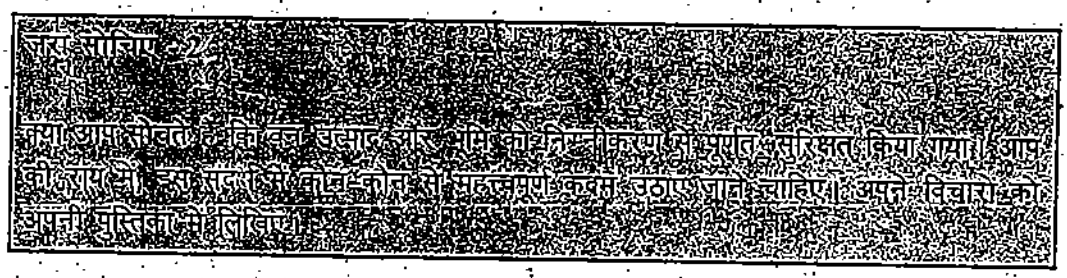

भारत में करीब 3 करोड़ व्यक्ति जीवन-निर्वाह के लिए वन उत्पादों पर आश्रित हैं और अकाल और सूखे के दौरान तो स्थिति और भी गंभीर हो जाती है। फले-फूले वनों की मिट्टी भी उपजाऊ होती है जिससे कि पीने और सिंचाई के लिए धरातलीं और भू-जल की उपलब्धता प्रभावित होती है। विभिन्न स्रोतों द्वारा प्राप्त जल पर ही ग्रामीण परिवारों को जीवन निर्भर करता है। धनी कृषक नलों द्वारा पीने को पानी प्राप्त करते हैं और सिंचाई के लिए गहरी खुदाई द्वारा कुँओं या नलकूपों का निर्माण करते हैं जबकि निर्धन व्यक्तियों के लिए तो नदी और झरने जैसे स्रोत ही एकमात्र साधन होते हैं।

2.4.1 प्राकृतिक संसाधन और निर्धनता

निर्धन व्यक्तियों को प्राप्त प्राकृतिक संसाधन, राज्यों के बढ़ते नियंत्रण से भी काफी प्रभावित हुए हैं और इन संसाधनों तक इन निर्धन परिवारों की पहुँच भी काफी सीमित हो गई है। उपनिवेशिक और उपनिवेशिकोत्तर वन नीतियाँ मूल-रूप से वनों का व्यावसायिक उपयोग चाहती हैं ताकि लाभ की प्राप्ति हो। वैज्ञानिक वानिकी द्वारा उच्च व्यावहारिक हितों को बढ़ावा प्राप्त हुआ है और इसी कारण से स्थानीय व्यक्ति गैर-इमारती वन उत्पादों को पर्याप्त मात्रा में प्राप्त करने में असमर्थ हैं।

सामुदायिकी संसाधनों के बढ़ते निजीकरण द्वारा परिवर्तित सामाजिक स्तर भी प्रभावित हुए हैं और ऐसे व्यक्तिगत मामलों में पुरुष प्रधानता अपेक्षाकृत काफी ज़्यादा है। 1950 से 1984 तक सम्पूर्ण भारत में विभिन्न गाँवों की सामान्य भूमि द्वारा पर्याप्त सामग्री में 26 प्रतिशत से 63 प्रतिशत तक की कमी पाई गई है। इसके पीछे मुख्य कारण है राज्य की नीतियाँ जिनसे केवल मुट्ठी भर लोग ही लाभान्वित होते हैं। जैसे कि किसानों द्वारा अनधिकृत ज़मीनों पर किए गए कब्ज़ों को वैध घोषित किया जाना, विभिन्न योजनाओं के तहत सामान्य भूमि के सरकारी वितरण में यह आशा कि गई थी शायद निर्धनों का भला होगा किंतु इसके विपरित समृद्ध किसानों को लाभ पहुँचाया गया और नलकूपों की देख-रेख का कार्य भी इन समृद्ध किसानों को ही सौंपा गया।

सामुदायिक संसाधनों के बढ़ते निजीकरण और परिवर्तित सामाजिक स्तर द्वारा न केवल संसाधनों का परंपरागत उपयोग बल्कि सामुदायिक प्रबंध की परंपरागत व्यवस्था का भी सफाया हो गया जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरणी निम्नीकरण में भी बढ़ोत्तरी हुई। सीमित भूमि, जल और वन उत्पादों के संदर्भ में बढ़ती आबादी की आवश्यकताएँ पर्यावरणी निम्नीकरण को जन्म देती हैं। लम्बे समय में हरित क्रांति संबंधी प्रौद्योगिकी के परिणाम भी निराशाजनक रहे हैं जैसे कि आन्तभौम जलस्तर, जलाक्रांत, जल का खारापन, मृदा उर्वरकता का क्षय होना जलप्रदूषण आदि।

2.4.2 महिला और पर्यावर संबंधी निम्नीकरण

यह निम्नीकरण की प्रक्रिया राज्य और निजी व्यक्तियों को प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण करने में सहयोग देता है जो संयुक्त रूप से निर्धन परिवारों को प्रभावित करता है। जबकि ये परिवार मूलरूप से सामुदायिक संसाधनों पर ही आश्रित होते हैं। वर्ग विषमता के अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण कारण है लिंग विषमता अर्थात इसमें केवल महिलाओं और बालिकाओं का एक ऐसा वर्ग शामिल होता है जो पर्यावरणी संबंधी निम्नीकरण से सबसे बुरी तरह प्रभावित होता है। इसका सबसे पहला कारण है कि श्रम विभाजन भी लिंग आधारित होता है और इसी वजह से महिलाओं को घरेलू कार्य अधिक करने पड़ते हैं जैसे नदी या कुंओं से पानी भर कर लाना है और जंगल में दूर-दूर तक पैदल चल कर लकड़ी, खाद्य सामग्री और वन उत्पाद आदि एकत्रित करना। अपने परिवार के लालन-पालन की जिम्मेदारी मूल रूप से इन महिलाओं की ही होती है और महिला प्रमुख परिवारों में तो इन्हें अकेले ही पूर्ण उत्तरदायित्व निभाना होता है।

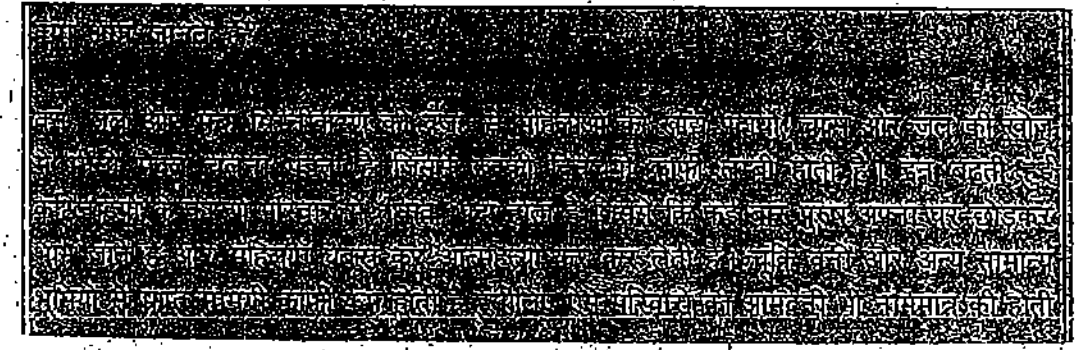

है। दिन-भर काम करने के कारण महिलाओं के पास पर्याप्त समय नहीं बचता ताकि वे खेतीबाड़ी कर सकें जिसके परिणामस्वरूप फसल से भी कोई खास आमदनी नहीं होती। इसी प्रकार से प्राकृतिक चारे की कमी और धन के अभाव में इनके पशु भी पर्याप्त चारा नहीं खा पाते और काफी दुर्बल ही हैं। इसलिए जीवन-निर्वाह के केवल एकमात्र साधन के रूप में ये जलाऊ लकड़ी की बिक्री करती हैं किंतु यह साधन भी वनोन्मूलन से काफी प्रभावित हुआ है।

दूसरा कारण, जीवन-निर्वाह संबंधी संसाधनों का वितरण जिसमें न केवल खाद्य सामग्री और स्वास्थ्य देखभाल से जुड़े मुद्दे आते हैं बल्कि यह वितरण भी लिंग आधारित होता है। पर्यावरणी निम्नीकरण निर्धन परिवारों के खान-पान को बुरी तरह प्रभावित करता है। यदि एकत्रित सामग्री और ईंधन लकड़ी में गिरावट आती है तो भोजन भी कम मात्रा में प्राप्त होगा जिसमें पोष्टिकता भी दिन-प्रतिदिन, कम होती जाएगी। परिवार में भोजन की प्राप्ति और स्वास्थ्य संबंधी देखभाल भी लिंग आधारित होती हैं जिसमें कि घर की महिलाएँ और बालिकाएँ बुरी तरह प्रभावित होती हैं। अपर्याप्त पोषण के कारण इनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। चूंकि इनकी कार्य प्रकृति कुछ ऐसी है इसलिए प्रदूषित जल के कारण पानी से फैलने वाले रोग सबसे अधिक इन्हीं में फैलते हैं। यह उत्तरदायित्व भी महिलाओं का ही होता है कि वे अपने घर के बूढ़े-बुजुर्गों और बीमार जनों की देखभाल करें। बांध आदि जैसे कार्यों में यदि महिलाओं को काम नहीं दिया जाता तो सामाजिक सहयोग पर आधारित ढांचे जिस पर ये महिलाएँ आश्रित होती है, वह बिखर जाता है। प्रकृतिक और कृषि जैसे क्षेत्रों से जुड़ी महिलाओं को प्राप्त देशी ज्ञान, नयी प्रौद्योगिकी की तुलना में काफी पीछे रह जाता है और अपना मूल्य खो बैठता है।

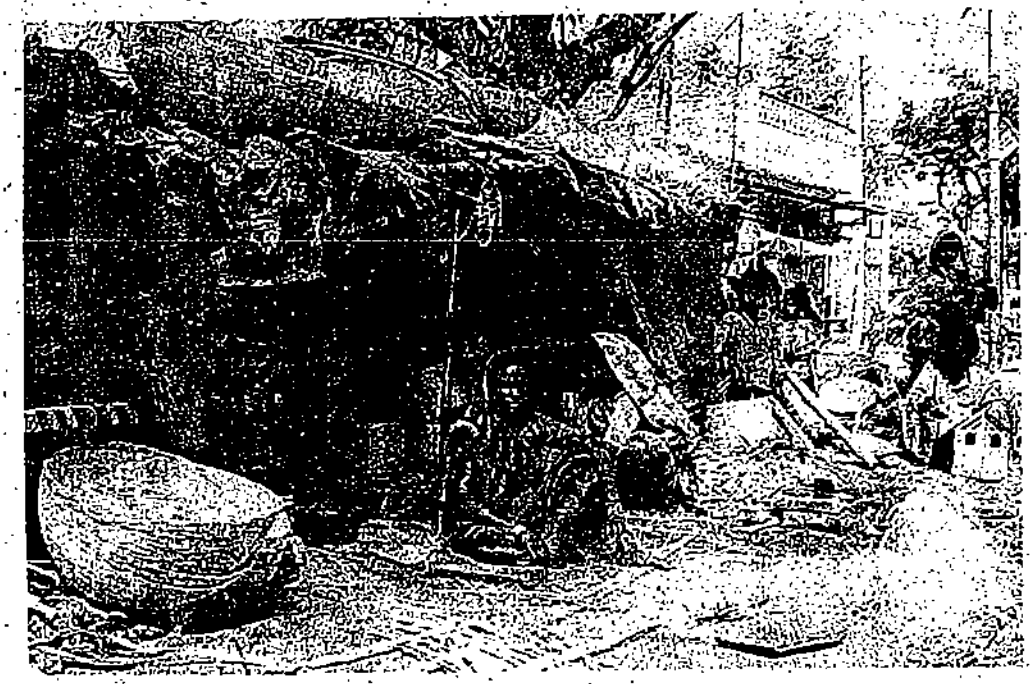

क्या उनके अपने ज्ञान को समुचित मान्यता मिलेगी?
सौजन्य : सी.एस.आर., नई दिल्ली

तीसरा मुख्य कारण है — भूमि तक पहुँच और संबंधित उत्पादन प्रौद्योगिकी की होड़ में महिला और पुरुष के बीच की असमानता। महिलाओं को भूमि और निजी संपत्ति में प्राप्त सीमित अधिकार विवश करते हैं कि वे जीवन-निर्वाह के लिए केवल प्राकृतिक संसाधनों पर ही निर्भर करें। यह खासकर उन क्षेत्रों में अधिक प्रचलित है जहाँ महिलाएँ कड़ी पाबंदी में एकाकी जीवन व्यतीत करती हैं।

2.5 राज्य की अनुक्रिया

इस पर्यावरण संबंधी निम्नीकरण के प्रति राज्य की अनुक्रिया तत्कालिक और पक्षपाती है। काफी हद तक राज्य की विकास संबंधी नीतियों का स्वरूप इस संकट के लिए खुद ही उत्तरदायी है। समान संस्कृति, विभिन्न योजनाओं में महिलाओं को शामिल न किया जाना, सामुदायिक संपत्ति पर कब्ज़ा आदि कुछ ऐसी जटिल समस्याएँ हैं जोकि पुनर्वनरोपण जैसी नीतियों के घोर निराशाजनक परिणामों के लिए उत्तरदायी हैं। इन नीतियों द्वारा प्रकृति को संरक्षण तो प्रदान नहीं किया गया बल्कि बर्बादी अवश्य हुई हैं।

इस प्रकार से विशेषकर निर्धन और महिला वर्ग तो केवल पीड़ित ही बन कर रह गए और उसके प्रति उनकी प्रतिक्रिया काफी रोषजनक भी रही है। इस संदर्भ में सामान्य लोगों ने कई आंदोलन चलाए ताकि पर्यावरण के बढ़ते विनाश को रोका जाए। इस प्रकार के आंदोलनों में मुख्य हैं — गढ़वाल में चलाया गया चिपको आंदोलन, वनोन्मूलन के विरुद्ध कर्नाटक में चलाया गया अपीको आंदोलन, नर्मदा घाटी में चलाया जा रहा नर्मदा बचाओं आंदोलन, केरल में मूक घाटी, बिहार में कोल-कांटो आंदोलन और गढ़वाल से चलाया जा रहा टिहरी बांध आंदोलन। इन सभी आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका काफी सक्रिय और प्रभावी रही है जबकि महिलाओं की परिवार के लालन-पालन की सारी जिम्मेदारी इन्हीं के कंधों पर होती है।

2.6 सारांश

कृषि अर्थव्यवस्था में भूमि और प्राकृतिक संसाधन जीवन-निर्वाह के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। महिलाएँ जो परिवार के पालन-पोषण के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी है, उन्हें ये उत्पादक संसाधन आसानी से प्राप्त होने चाहिए और इन पर महिलाओं का नियंत्रण भी होना चाहिए। महिलाओं को यह अधिकार भी प्राप्त होना चाहिए कि इन संसाधनों के नियंत्रण, उपयोग और प्रबंध संबंधी कार्य इनकी इच्छानुसार हों। बढ़ते हुए पर्यावरण संबंधी निम्नीकरण के विरुद्ध चलाए गए आंदोलन और भूमि में अधिकार की माँग यह दर्शाती है कि परिवर्तन लाने में इनकी भूमिका काफी सक्रिय है। इसलिए इनका भावी जीवन खुशहाल हो ऐसे प्रयास किये जाने चाहिए।

2.7 शब्दावली

पहुँच	:	किसी विशेष संसाधन के उपयोग संबंधी सक्षमता जैसे कि भूमि।
पर्यावरण संबंधी निम्नीकरण	:	भूमि, वन, जल आदि जैसे प्राकृतिक संसाधनों का क्षय होना।
लिंगीय विचारधारा	:	महिलाओं के जीवन मूल्यों, लोकाचार और मान

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अग्रवाल, बीना, (1994) *ए फील्ड ऑन वनस् ऑन - जेन्डर एंड लैंड् राइट्स इन साउथ एशिया।* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, आस्ट्रेलिया।

बोस, इस्टर (1970) *वूमेन्स रोल इन इकोनामिक डेवलपमेंट*, न्यूयार्क, सेंट मार्टीन प्रेस

इकाई 3 श्रम

रूपरेखा

3.0 लक्ष्य और उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 महिला श्रम विचार विमर्श
    3.2.1 उत्पादक और अनउत्पादक कार्य
3.3 महिला श्रम के पहलू
    3.3.1 श्रम और लैंगिक विभाजन
    3.3.2 घरेलू देशीय (श्रमिक)
3.4 महिला श्रम की स्थिति
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में हम आपको श्रम के विविध पहलुओं के बारे में जानकारी देंगे। यह तो आप जानते ही हैं कि श्रम और कार्य, लिंग से संबंधित मुद्दों, के केंद्रीय पहलू हैं। महिलाओं के योगदानों को स्वीकारा तो जाता है परंतु उन्हें इन योगदानों का पूरा श्रेय कभी नहीं दिया जाता। कुछ क्षेत्रों में, उदाहरणार्थ घरेलू क्षेत्र में महिलाएँ जो कठिन श्रम और कार्य करती हैं उनको सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी एन पी) की गणना करते समय मान्यता नहीं दी जाती और न ही इस कार्य के लिए महिलाओं को कोई आर्थिक पारिश्रमिक दिया जाता है। इस प्रकार आप समझ सकते हैं कि श्रम का मुद्दा एक जटिल मुद्दा है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप :

- 'कार्य' की सीमा के अंतर्गत क्या आता और इसके लैंगिक लक्ष्यार्थ के बारे में जान सकेंगे;
- महिला कार्य के अदृश्य रहने के कारण जान सकेंगे;
- उत्पादक और अनुत्पादक कार्य के बीच भेद कर सकेंगे;
- श्रम के लैंगिक विभाजन के मूल कारण और घरेलू श्रम के सारे मुद्दों के बारे में जान सकेंगे; और
- महिलाओं के बाहरी और घरेलू कार्यों की स्थिति के बारे में जान सकेंगे।

इस इकाई का अध्ययन करने से आपको, समाज में, श्रम के कुछ निर्णायक क्षेत्रों के बारे में अच्छी जानकारी प्राप्त होगी।

3.1 प्रस्तावना

सभी समाजों में महिलाएँ और पुरुष दोनों ही, भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य करते हैं और उनके कार्य करने के समय होते हैं। कार्य की परिस्थितियाँ और स्वरूप और 'कार्य' की संरचना किसके द्वारा होती है, इसके परिप्रेक्ष्य, समय के साथ और लोगों के बीच बदलते रहते हैं। अनेकों अध्ययनों द्वारा यह बात सामने आई है कि महिलाएँ घर के समस्त सदस्यों द्वारा व्यय की गई कुल श्रम उर्जा के संदर्भ में पुरुषों

से अधिक योगदान करती हैं और अधिक लंबे समय तक कार्य करती हैं। तथापि, गहन रूप से संस्थापित सामाजिक रीति-रिवाजों, निषेधों और पूर्वाग्रहों के कारण, महिलाओं का कार्य अदृश्य ही रहता है और गैर-आर्थिक क्रियाओं तक ही सीमित रहता है। जो महिलाएँ सवेतन कार्य करती हैं उन्हें दोहरा कार्यभार ढोना पड़ता है अर्थात् उन्हें घर का और बाहर का वेतन वाला, दोनों ही कार्य करने पड़ते हैं। महिला श्रम शक्ति का व्यावसायिक विविधीकरण बहुत ही निम्न स्तर का है। महिला कार्यकर्ताओं का 94 प्रतिशत तो असंगठित सेक्टर में कार्यरत है और केवल 6 प्रतिशत ही संगठित सेक्टर में है। कृषि संबंधी क्रियाकलापों में रत महिलाओं की एक बड़ी संख्या कृषिक श्रमिकों की है। नीति योजनाकारों और परिपालकों को श्रमिक महिलाओं पर उनकी खराब कार्य स्थितियों के कारण ही नहीं बल्कि इस कारण भी विशेष ध्यान देना चाहिए कि वे परिवार और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान करती है।

महिलाओं के कार्य और उनकी कमाई से उनके परिवार की जीविका संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है और खाद्य उत्पादन, पशुपालन, उद्योग आदि में उनका योगदान सकल राष्ट्रीय उत्पादन (जी एन पी) की वृद्धि में योगदान करके, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में प्रत्यक्ष रूप से योगदान करता है। निम्नलिखित भागों में हम श्रम की संकल्पना, श्रम का विद्यमान लिंग विभाजन, घरेलू श्रम के बारे में परिचर्चा और महिला श्रम के निम्न मूल्य और अदृश्यता के कारणों को समझने का प्रयास करेंगे।

3.2 महिला श्रम पर विचार-विमर्श

कार्य, श्रम और रोज़गार जैसे शब्दों में अर्थगत इतिहासों का अध्ययन करते समय, कई भारतीय भाषाओं में, महिला श्रम के लिए शब्दावली का अभाव सामने आता है। शब्दों की इस कमी के परिणाम महिलाओं के कार्य की विविधता दृष्टिगत नहीं हो पाती। इसके अतिरिक्त, अन्य संस्कृतियों के बारे में लिखने वाले विद्वानों की यह प्रवृत्ति होती है कि व्याख्यात्मक ढांचे पर वे अपनी पितृसत्तात्मक पूर्वधारणाओं की छाप छोड़ जाते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि महिलाओं के क्रियाकलापों पर सब मौन साथ लेते हैं इसके अलावा, जनगणना अधिकारियों जैसे राज्य के अफसरशाही तत्वों ने, महिलाओं के कार्य की सही व्याख्या करने की समस्या को और बढ़ाया है।

विचार करें 1

आपके विचार से महिलाओं के कार्य का दृष्टिगत न होने के क्या कारण है? अपनी पुस्तिका में अपने विचारों को लिखें।

पूँजीवाद की वृद्धि और बाज़ारों के विस्तार के साथ-साथ, कार्य की संकल्पना में खास तौर से महिला श्रम के मूल्यांकन में, परिवर्तन हुआ है। कार्य की संकल्पना अब सामान्यत: उस कार्य से संबंधित है जिससे नकद आय सृजित होती है अर्थात् वह कार्य जिससे वेतन प्राप्त हो। उपनिवेशी काल के दौरान, कार्यकताओं का, व्यवस्थित जनगणना द्वारा आकलन शुरू किया गया था। तब भी, कार्य की संकल्पना पर जो चर्चाएँ हुई उनमें इसी तथ्य की ओर इशारा किया गया था कि भारतीय संदर्भ में, जहाँ कि स्वयं के पारिवारिक खेतों में निरंतर खेती करने को प्रमुखता प्राप्त है, वहाँ कार्य को केवल विपणित कार्य के रूप में पारिभाषित करने से कार्यकर्ताओं का सकल अवआकलन (grossunder estimate) होगा। अत: ऐसी क्रियाओं पर जोकि परिवार को आप अर्जित करने में या आजीविका में मदद करती हैं, 'अदत्त पारिवारिक श्रम' को कार्य नहीं समझा जाता था। लेकिन इस कार्यनीति को अपनाने से, अनेकों ऐसी क्रियाएँ जो घर के लिए काफी महत्त्वपूर्ण हैं और जिन्हें महिलाएँ करती हैं जैसे कि खाना पकाना, बाल देखभाल, अन्य घरेलू कामकाज और अनेकों बाहरी क्रियाएँ जो उस आय की आपूर्ति करती हैं जैसे, ईंधन

चारा, जल, फल कंदिल आदि को बिना शुल्क के एकत्र करना और इसके अलावा अपनी निजी शाक वाटिका में काम करने में कार्य नहीं माना जाता। घर से बाहर के महिलाओं के अधिकांश कार्यों को कार्य नहीं 'समझा' जाता। इस स्वेच्छाचारिता का अर्थ था कि जो महिलाएँ इन क्रियाओं में पूर्णकालिक रूप से या अपनी अन्य क्रियाओं के ऐसे हिस्से के रूप में कार्यरत थीं जिन्हें 1971 की जनगणना के अनुसार 'गौण क्रियाएँ' या 1981 की जनगणना के अनुसार सीमांत कार्य कहा जाता था, उनकी गणना 'कार्यकर्ताओं के रूप में नहीं होती थी। जिन क्रियाओं से नकद आय प्राप्त करने में मदद मिलती हो उन्हें ऐसे कार्य की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता था जिससे विपणित उत्पादन नहीं होता।

3.2.1 उत्पादक और अनउत्पादक कार्य

'उत्पादक' और 'अनउत्पादक' कार्य के बीच एक अंतर उभर कर सामने आया और इस प्रक्रिया द्वारा घरों के अंदर महिलाओं द्वारा किए गए अधिकांश कार्य का अवमूल्यन हुआ है। जो महिलाएँ सेवतन नौकरी नहीं करती उन्हें आश्रित कहा गया। एन. एस. एस. डाटा के 32वें चक्र में किए गए रूपांतरों में महिलाओं के कार्य के इस भाग को शामिल किया गया, लेकिन यह केवल उन महिलाओं के संदर्भ में था जो श्रम शक्ति से बाहर थीं। श्रम शक्ति की महिलाएँ जो कि सवेतन कार्य के अतिरिक्त, एकत्रीकरण का कार्य और घरेलू काम-काज आदि भी करती हैं उनके दोहरे कार्यभार का लेखा जोखा देने में यह असफल रहा।

अपने अनुभव से सीखें 1

जीवन के विविध क्षेत्रों में नियोजित महिलाओं से बातचीत करें। पता करें कि वे कार्य के दोहरे भार का कैसे सामना कर रही हैं। अपने विचारों को एक पुस्तिका में लिखें।

विऔद्योगीकरण की प्रक्रिया के साथ-साथ, महिलाओं को अधिकाधिक रूप से 'आश्रित' बना दिया गया। आधुनिक हस्तक्षेपवादी राज्य द्वारा निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों को पुन: परिभाषित करने का प्रयास किया गया। घरेलूपन और 'आश्रित महिला' की विचारधारा ने निजी-जन द्विभागीकरण पर विशेष बल दिया जिसमें महिलाओं को निजी, सांस्कृतिक, और आध्यात्मिक क्षेत्र की देखभाल का काम सौंपा गया। जन क्षेत्र भौतिक क्षेत्र का जो कि मुख्य रूप से एक पुरुष अधिकार क्षेत्र था। यद्यपि लाखों की संख्या में, निर्धन ग्रामीण और शहरी महिलाएँ हमेशा से कार्यरत थीं और जिनमें से अनेकों अपने घरों के बाहर भी काम करती थीं, तथापि उनके काम का सदैव अवमूल्यन किया गया। महिलाओं को 'आश्रित' बनाने की विचारधारा ने, श्रम बाजार में, पुरुषों के साथ बराबरी के स्तर पर महिलाओं के शामिल होने को प्रभावित किया।

3.3 महिला श्रम के पहलू

वेतन विभेदकों और कामों के लिंग पुरुष से सरोकार रखने वाले नारीवादी, श्रम प्रक्रिया के लिंग संबंधी विभाजन के मुद्दे को विश्लेषण के केंद्र में ले आए हैं।

यह तर्क दिया जाता है कि महिलाओं की जैविकी ने उनके लिए कुछ विशिष्ट कार्य निर्धारित किए हैं और पुरुषों को कुछ अन्य कार्य सौंपे हैं। महिलाएँ गर्वावस्था और स्तनपान (पोषण) के शरीर क्रियात्मक बोझों के कारण अक्षम हो जाती हैं और इनके कारण उनकी गतिविधियाँ घरेलू क्षेत्र तक ही सीमित रह जाती

हैं। उनके ऊपर घर परिवार की देखभाल और परिवार के सदस्यों को भावात्मक स्नेह प्रदान करने की ज़िम्मेदारी होती है जबकि पुरुषों को घर से बाहर रहकर कार्य निष्पादन करना होता है ताकि वे बाह्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। प्रत्येक जाति और वर्ग की महिलाओं को घरेलू श्रम का भार ढोना पड़ता है। स्वयं महिलाओं की भी अपने बारे में अवधारणा यही होती हैं कि वे स्वयं को मां और गृहिणी के रूप में ही देखती है और यदि महिलाएँ कमाऊ भी होती हैं तब भी उनका वह काम, घर के पुरुष की कमाई का पूरक या गौण काम समझा जाता है। हर समाज में श्रम का, लिंग आधारित सुस्पष्ट विभाजन दिखाई देता है।

3.3.1 श्रम का लैंगिक विभाजन

आर्थिक अवसंरचना में श्रम के लैंगिक विभाजन की जड़ों को सबसे पहले एन्जल ने देखा। 'ओरीजिन्स ऑफ फैमिली, प्राइवेट प्रोपर्टी एंड दि स्टेट में यह संकेत दिया है कि निजी संपत्ति की स्थापना के साथ ही निजी और सार्वजनिक संपत्ति के बीच दरार पड़ गई जिसके फलस्वरूप महिलाएँ निजी की ओर अधिक से अधिक धकेल दी गई ताकि उनके पुरुषों का, वैध उत्तराधिकारी बनना सुनिश्चित हो सके। बढ़ती हुई उत्पादनशीलता के साथ-साथ, अधिशेष (surplus) उत्पादन की बड़ी मात्रा, पुरुषों द्वारा नियंत्रित की जाने लगी। उत्पादन का स्थल घर से हट गया और पुरुषों ने उत्पादन के साधनों को नियंत्रित करना प्रारंभ कर दिया। महिलाओं को घरेलू बना दिया गया और श्रम का लैंगिक विभाजन एक मानक के रूप में स्थापित हो गया जिसमें महिलाएँ पुरुषों की अधीनस्थ बना दी गई।

अपने अनुभव से सीखें–2

आपके विचार से निजी और सार्वजनिक संपत्ति के बीच की दरार, महिलाओं की स्थिति के लिए कहां तक हानिकारक थी? शहरी और ग्रामीण महिलाओं से बातचीत करके पता लगाइए कि उनको अपने परिवार की और खासतौर से घर के मुखिया की और अपने पति की 'संपत्ति' कहां तक माना जाता है। अपनी जानकारी को लिखिए।

नारीवादी विद्वान, फिर भी, यह तर्क पेश करते हैं कि यह उत्पादन के साधनों का स्वामित्व नहीं, बल्कि निजी और सार्वजनिक क्षेत्र में श्रम का विभाजन ही था जो महिलाओं के अधीनस्थ हो जाने का कारण था। समाजों में उत्पादित अधिशेष का पुरुषों ने सार्वजनकि क्षेत्र में अपने श्रम द्वारा विनियोजन किया। वे 'सामाजिक वयस्क' बन गए जबकि महिलाएँ अपने घरों में 'घरेलू आश्रित' बन कर रह गई। हमारा सुझाव है कि सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बीच में इस लैंगिक विभाजन का उन्मूलन करने के लिए, हमको परिवार और उद्योग को दो अलग-अगल आर्थिक इकाइयां नहीं मानना चाहिए और घरेलू कार्य को सार्वजनिक बनाया जाना चाहिए।

क्या आप जानते हैं–1

महिलाओं की शिक्षा का इतिहास तो पुराना है परंतु यह महिलाओं की समानता और उच्च स्थिति के लिए संघर्ष से जुड़ा हुआ है। प्राचीन भारत में ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने महिलाओं को शिक्षा की संगठित प्रणाली की पहुंच से वंचित रखा। उपनिवेशी भारत में भी यही स्थिति थी। स्वतंत्रता की लड़ाई में जब गांधी जी ने लोगों से बड़ी संख्या में भाग लेने का आह्वान किया तभी लेकर महिलाओं के अधिकारों का समर्थन करने के लिए अनेकों संगठन सामने आए। शि[illegible] [illegible] प्राप्ता भी इस [illegible]

कब तक घरेलू कार्य को मान्यता नहीं मिलेगी?
सौजन्य : डा. शेखर, नई दिल्ली

मेरिया माइस ने अपने लेख 'सोशल ओरीजिन्स ऑफ़ द सेक्सुअल डिवीज़न आफ लेबर' में, महिलाओं की अधीनस्थता को गैर-जैविक ऐतिहासिक भौतिकवादी तरीके से समझाने का प्रयास किया है। उसने तर्क दिया है कि बच्चे को जन्म देना सभी उत्पादक क्रियाओं की पूर्वशर्त है और इसलिए यह कार्य है न कि केवल एक 'प्राकृतिक प्रक्रिया'। उसका कहना है कि महिला और पुरुष, प्रकृति के साथ अलग-अलग तरीके से इसीलिए अंतक्रिया करते हैं क्योंकि उनके शरीर गुणात्मक रूप से भिन्न प्रकार के हैं। समूह के दैनिक जीवन निर्वाह के लिए महिलाएँ भोजन के उत्पादन के लिए उत्तरदायी थीं और शायद यही लिंग पर आधारित श्रम का पहला विभाजन था। पुरुषों ने शिकार करने के लिए औज़ारों का अविष्कार किया और इसी के ज़रिए प्रकृति और महिलाओं के ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया। धीरे-धीरे, पुरुषों ने उत्पादन के साधनों के ऊपर नियंत्रण कर लिया और महिलाओं को अपना अधीनस्थ बना लिया। श्रम प्रक्रिया के संगठन और 'अर्जक' के रूप में पुरुष पर अपनी आर्थिक निर्भरता के कारण महिलाएँ घरों तक ही सीमित रह गई। इस प्रकार 'पुरुषों के कार्य' और 'महिलाओं के कार्य' के बीच एक सुस्पष्ट विभाजन हो गया। महिलाओं का कार्यक्षेत्र निजी और पुरुषों का सार्वजनिक मान लिया गया। महिलाओं के कार्य को पुरुषों के कार्य की तुलना में कम महत्व दिया गया और महिलाओं का पुरुषों के अधीनस्थ माना गया।

3.3.2 घरेलू श्रम

नारी वादियों, विशेष रूप से मार्क्सवादी नारीवादियों ने घरेलू श्रम के संपूर्ण मुद्दों अर्थात् घर का कार्य उत्पादनशील है या नहीं, घरेलू कार्य के लिए वेतन का भुगतान किया जाना चाहिए या नहीं, आदि पर काफी वाद-विवाद किया। मेरिआरोजा डल्ला कोस्टा, सेलमा जेम्स, मार्ग्रेट बेन्सटन, वाली सेकोम्ब और

अन्य नारीवादियों ने यह तर्क पेश किया कि घरेलू कार्य ही वह कारण है जिसके द्वारा महिलाओं को परिवार के अंतर्गत, निम्न और अधीनस्थ स्थान दिया जाता है। उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया कि परिवार के अंतर्गत महिलाओं को घरेलू श्रम उत्पादनशील कैसे है। महिलाओं के श्रम के कारण ही पुनरुत्पादन होता है और इसी के कारण दैनिक और उत्पादक आधार पर वस्तु की श्रम शक्ति बनी रहती हैं और इसी लिए मूल्य बनता है। दूसरी ओर, जान हैरीसन ने यह तर्क रखा कि अपने स्वयं के श्रम द्वारा, श्रमिकों को सेवाएँ प्रदान करके महिलाएँ, श्रम शक्ति के महत्त्व को कम करती हैं। इसके अतिरिक्त, महिलाओं को बाज़ार से परे रखने से, पुरुष कार्यकर्ताओं की सौदाकारी करने से स्थिति में सुधार आया।

> विचार करें-2
>
> घरेलू श्रम उत्पादनशील माने जाने योग्य है या नहीं? यदि यह उत्पादनशील है तो मूल्यों, अभिवृत्तियों और पारिश्रमिक के संदर्भ में हम इस पर किस प्रकार विचार करें? अपने विचारों को एक पुस्तिका में लिखिए।

इस विवाद को, समाजवादियों और अतिवादी नारीवादियों ने अत्यधिक अर्थशास्त्रीय स्वरूप का कहकर बहुत आलोचना की। हैदी हर्टमन नामक एक समाजवादी नारीवादी ने यह तर्क रखा कि केवल पूँजीवादी ही नहीं, बल्कि पुरुष भी, महिलाओं के श्रम से लाभान्वित होते हैं। उसने दावा किया कि महिलाओं की अधीनस्थ स्थिति का कारण यह है कि श्रम बाज़ार में पुरुषों को बेहतर नौकरियाँ प्राप्त है और महिलाओं के लिए केवल कम वेतन वाली नौकरियाँ ही बचती हैं, जिसके कारण उनके समक्ष गृहिणी के कार्य को ही अपनी जीविका बनाने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं बचता। पूँजीवादी और पितृसत्ता के विरुद्ध इस लड़ाई पर विजय पाने के लिए हाथ मिलाकर चलना होगा।

अतिवादी नारीवादी, क्रिस्टीन डेल्फी, ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि गृहिणियों का शोषण उनके पतियों द्वारा किया जाता है और इस लिए, शोषण की इस प्रणाली को उत्पादन की घरेलू, स्वायत्त प्रणाली माना जाना चाहिए। इसके अलावा, परिवार का एक आर्थिक इकाई के रूप में विश्लेषण किया जाना चाहिए जिसमें घरेलू समूहों की, उत्तराधिकारिता के रूप में संरचना की गई है और जहाँ परिवार के सदस्यों के बीच, उत्पादन के कुछ संबंध है।

भारतीय संदर्भ में, घर के काम का निरूपण करने के संबंध में, मार्क्सवादी नारीवादियों जैसे मैत्रेयी कृष्ण राज और विभूति पटेल (1981) उषा मेनन (1982) और गैबरील डाइटिंच (1983) के बीच एक संक्षिप्त और जीवन्त चर्चा हुई थी। महिलाओं के समूहों, जर्नलों और कुछ क्षेत्रीय पत्रिकाओं (बैजा-मराठी) ने घर के काम के मुद्दे की चर्चा और विश्लेषण किया व यह विचार किया कि गृहकार्य के लिए वेतन दिया जाना चाहिए और यह वेतन कौन देगा। यद्यपि, अधिकांश जनसंख्या के उत्तरजीविता के लिए संघर्ष के साथ-साथ अत्यधिक निर्धनता और बेरोज़गारी की समस्याओं को देखते हुए घर के काम की समस्या को मान्यता प्राप्त नहीं हो सकी।

[illegible] स्थिति

महिलाओं द्वारा घर के अंदर किए जाने वाले कार्य को अनदेखा किया जाने के कारण यह आवश्यक है कि अब घरों से बाहर किए जाने वाले महिलाओं के कार्य की स्थिति का विश्लेषण किया जाए। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में गैर-कृषि रोजगारों जैसे, अगरबत्ती, लेस बनाना (माइस 1982) और अन्य घरेलू

उत्पादों और इसी के साथ ही साथ नए-नए उभरे प्रधान उद्योगों जैसे कपड़ा (राव और हुसैन, 1981) और इलेक्ट्रोनिक्स और वस्त्र उद्योग जैसे अधिक पुराने उद्योगों पर भी सूक्ष्म अध्ययन किए गए हैं। इन अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि महिलाओं के कार्य सामान्यतः अपरिष्कृत उपकरणों द्वारा किए जाते हैं और वे कम उर्जा प्रधान होते हैं और उनका वर्गीकरण प्रायः कौशलहीन कार्यों के अंतर्गत किया जाता है। यद्यपि उच्च-तकनीक को इलेक्ट्रानिक उद्योग सामूहिक विभागों में बड़ी संख्या में महिलाओं को नियोजित करते हैं तथापि ये प्रौद्योगिकीय नवीन परिवर्तन महिलाओं तक कभी नहीं पहुँच पाते। ये अध्ययन उस भेदभाव पर विशेष बल देते हैं, जिसका अपने निम्न वेतन और प्रायः असुरक्षित रोजगार, आर्थिक सीमांतीकण और अल्परोजगार के कारण महिलाओं को श्रम बाजार में सामना करना पड़ता है। महिलाएँ, श्रम की रिज़र्व श्रमिकों के रूप में काम करती है अर्थात् जब आवश्यकता होती है तब उन्हें श्रम शक्ति में ले लिया जाता है या फिर श्रम शक्ति से निकाल दिया जाता है। महिलाएँ, एक सस्ता, श्रमिक (कामगार) हैं।

क्या आप जानते हैं? -2

महिलाएं मुख्य रूप से 'महिला उद्योग' के नाम से प्रसिद्ध उद्योगों में काम कर रही हैं जो कि निम्न कौशल और निम्न वेतन वाले होते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि एशियाई देशों में महिलाओं की उर्ध्वगामी गतिशीलता रुक गई है। इसके कारण, इससे पहले कि वे दोबारा रोजगार प्राप्त कर सकें उनकी बेराजगारी बढ़ जाती है। इस प्रकार, श्रम शक्ति में पुरुषों की भागीदारी की तुलना में महिलाओं की भागीदारी काफी कम है।

महिलाएँ वैतनिक कार्य में
सौजन्य : प्रो. कपिल कुमार, इं.गा.रा.मु.वि. नई दिल्ली

इसके अतिरिक्त, भारत में हुए अनुसंधानों से यह पता चलता है कि महिलाओं की सवेतन नौकरियाँ भी, [illegible] अंदर उनकी स्वायत्तता [illegible] वृद्धि नहीं कर पातीं। कलकत्ता में कामकाजी महिलाओं के बारे में [illegible] डिंग के अध्ययन [illegible] यह पता चला है कि 80 प्रतिशत महिलाओं का अपने वेतन के ऊपर

कोई अधिकार नहीं होता और उनका वेतन पति या सास के हाथ में चला जाता है। उर्मिला शर्मा का तो यह दावा है कि श्रम बाज़ार में भारतीय महिलाओं के प्रवेश ने तो वास्तव में, परिवार पर, उसकी निर्भरता को बढ़ा ही दिया है। अपनी स्वयं की कमाई से एक महिला का संबंध वह नहीं है जो एक पुरुष का अपनी कमाई से है, भले ही वह किसी भी सामाजिक वर्ग से संबंधित हो। इसका अर्थ यह है कि हालाँकि महिला और पुरुष दोनों ही अपने परिवारों के लिए काम करते हैं, पुरुष अपने स्वयं के लिए भी काम करते हैं जबकि महिलाएँ ऐसा नहीं करतीं। वास्तविकता तो यह है कि अनेकों घरबार काफी हद तक और कुछ घरबार महिलाओं की कमाई पर पूरी तरह निर्भर करते हैं। निम्न वर्ग की महिलाएँ जिनके पास यह विकल्प नहीं होता कि वे काम करें या नहीं, उनको काम की उपलब्धता से यह अंतर पड़ सकता है कि उनके बच्चे भूखे मरेंगे या जीवित रहेंगे। उच्च वर्गों में भी, महिलाओं की कमाई के घरों को आर्थिक नियति पर पर्याप्त अंतर पड़ता है। अत:, वर्ग चाहे जो भी हो महिलाओं का सवेतन कार्य सामान्यत: उनके घरों के कल्याण और यहाँ तक कि उत्तरजीविता के लिए भी निर्णायक होता है भले ही महिलाओं के लिए इसके परिणाम जो भी हों।

3.5 सारांश

अंत में, कहा जा सकता है कि सभी समाजों में, महिलाएँ काम करती हैं, परंतु उनका कार्य और कार्य संबंधी अनुभव पुरुषों के कार्य व कार्यानुभव से काफी अलग होते हैं। कुछ विशेष क्षेत्रों में, महिलाओं को कुछ उद्योगों से पूरी तरह दूर रखा जाता है, और कुछ दूसरे उद्योगों में उन्हें अलग व्यवसायों में रखा जाता है और उनकी नियुक्ति निम्न-कौशल और निम्न-आय वाली नौकरियों में की जाती है। उपलब्धता, प्रयोज्यता और सस्तेपन की दृष्टि से महिलाएँ रिजर्व श्रम हैं। पितृसत्ता और महिलाओं के घर का अंदर के और घर के बाहर के कार्य पर इसके नियंत्रण के संदर्भ में इसका विश्लेषण किया जाना चाहिए कि, महिलाओं के श्रम को घरेलू श्रम मानें या सवेतन श्रम। पूँजीवाद और पितृसत्ता द्वारा इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता है कि महिलाएँ घरों तक ही सीमित रहें और निम्न स्तर की नौकरियाँ करें उनकी श्रम के लिए उपलब्धता बनी रहे।

गुजरात राज्य में स्व नियोजित महिला संघ (सेवा), तमिलनाडु राज्य में कामकाजी महिला फोरम (डब्ल्यू डब्ल्यू एफ) जैसे कुछ संगठन, उदाहरण के तौर पर कार्यरत है जो अनौपचारिक सेक्टर के कार्यकर्ताओं, खास तौर से महिला कार्यकर्ताओं पर स्पष्टतया ध्यान केंद्रित करते हैं। उन्होंने अपना यह लक्ष्य निर्धारित किया है कि उन्हें, कार्यकर्ताओं के रूप में महिलाओं को अधिक से अधिक सामने लाकर दिखाना है, उनकी आय में वृद्धि करवानी है और आय व संपत्ति के ऊपर उनके नियंत्रण को बढ़ाना है। उनका उद्देश्य है कि महिलाओं को शक्तिसम्पन्न बनाया जा सके और अपनी समस्याएँ के हल स्वयं ही ढूंढने में उनकी मदद की जा सके।

3.6 शब्दावली

विचार-विमर्श **(Discourcs)** : विचारधीन विषय के अनेक पहलुओं को ध्यान में रखते हुए अर्थों के विविध स्तरों पर वाद-विवाद।

घरेलू (देशीय) : अधिकार क्षेत्र के ढांचे में और घर के मुखिया के अधीन।

उत्पादनशील/उत्पादक **(Productive)** : वह कार्य जो श्रम के परिणाम देता है और जिसके लिए आर्थिक रूप से पारिश्रमिक मिलता है।

स्थिति/स्तर (Status) : सामाजिक को ध्यान में रखते हुए किसी विषय के विशिष्ट पहलू की वर्तमान स्थिति।

3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बाउद, आई.एस.ए. (1992) *फौर्म्स ऑफ प्रोडक्शन एंड विमैन्स लेबर - जेंडर ऐस्पेक्ट्स ऑफ इंडसट्रियालाइजेशन इन इंडिया एंड मैक्सिको* : सेज, नई दिल्ली।

कल्पागम, यू. (1984) *लेबर एंड जेन्डर सर्वाइवल इन अर्बन इंडिया*, नई दिल्ली : सेज

इकाई 4 महिलाएँ एवं प्रौद्योगिकी

रूपरेखा

4.0 लक्ष्य और उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 महिलाएँ और समाज
4.3 प्रौद्योगिकी, समाज और महिलाएँ
  4.3.1 समाज और उत्पादन
4.4 प्रौद्योगिकी परिवर्तन के प्रभाव
  4.4.1 परिवार, भाड़े के श्रमिक और छोटे किसान
  4.4.2 बड़े किसान
  4.4.3 महिलाएँ और संबंधित कार्यक्षेत्र
4.5 सामाजिक-सांस्कृतिक ढाँचा और नयी प्रौद्योगिकी
  4.5.1 विकास और एकलस्वामित्व
  4.5.2 प्रौद्योगिकी और विकास
4.6 नयी प्रौद्योगिकी, विकास और महिला उत्पीड़न
  4.6.1 जनजातीय गाँव और अर्ध-विकसित गाँव
  4.6.2 उत्पीड़न संबंधी उभरते पहलू
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.0 लक्ष्य और उद्देश्य

सामाजिक विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए प्रौद्योगिकी के प्रभाव और लोगों पर प्रौद्योगिकीय परिवर्तन संबंधी विषय सदैव ही अध्ययन और शोध के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र रहे हैं। प्रौद्योगिकी परिवर्तनों ने प्रागैतिहासिक मानव समाज से लेकर आधुनिक औद्योगिक समाजों में आए बदलाव और विकास को काफी प्रभावित किया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपको निम्नलिखित की जानकारी होनी चाहिए :

- विभिन्न प्रौद्योगिकी संबंधी उन्नति और समाज पर हुए प्रभावों का विश्लेषण तथा उसकी जानकारी;
- संकल्पनात्मक साधन के रूप में लिंगीय भेदभाव के प्रयोग की समीक्षा करते हुए पुरुषों तथा महिलाओं के संबंधों का वर्णन एवं उसका विश्लेषण;
- सामाजिक प्रकरण संबंधी प्रौद्योगिकी के लिए आवश्यकता की रूपरेखा;
- महिलाओं पर प्रौद्योगिकी संबंधी परिवर्तनों के प्रभावों का वर्णन;
- भेदभाव पूर्ण पितृसत्तात्मक सामाजिक संस्थानों का अस्तित्व और उनके उदगम की व्याख्या; तथा
- गाँवों में नई प्रौद्योगिकी ने महिलाओं की कार्य सहभागिता और उनकी घरेलू जिम्मेदारियों के किस प्रकार से प्रभावित किया है, जान सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

प्रौद्योगिकी किसी भी उत्पादन प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण घटक होता है जो मुख्य रूप से उत्पादन के स्वरूप और इसके विस्तार का निर्धारण करता है।

मरिल के अनुसार प्रौद्योगिकी का व्यापक अर्थ है कलाओं का अभ्यास करना। ये कलाएँ उत्पादन, निर्माण, परिवहन, खाद्य-व्यवस्था, विद्युत शक्ति और प्रकाश आदि के उपयुक्त प्रबंध के साथ-साथ शिकार करना, मछली पकड़ना, कृषि, पशु-पालन और खानों से लेकर संचार के विभिन्न साधन, औषधि-निर्माण और सैन्य प्रौद्योगिकी जैसे वर्गों में श्रेणीबद्ध हैं। इसलिए प्रौद्योगिकी कौशल, ज्ञान और व्यवस्थाओं के वे निकाय हैं जिनके द्वारा न केवल उपयोगी वस्तुओं का निर्माण व उपयोग किया जाता है बल्कि संबंधित उपयोगी कार्य भी किए जाते हैं। (मरिल 1972 : 577)।

इस संदर्भ में यह उल्लेख करना अति आवश्यक है कि प्रौद्योगिकीयाँ अंशत: सांस्कृतिक परंपराएँ होती हैं और इसलिए प्रत्येक मानव समाज में ये विकसित की जाती हैं ताकि पर्यावरण से पर्याप्त संतुलन बनाया जा सके। प्रसिद्ध समाजशास्त्री ओगबर्न के अनुसार प्रौद्योगिकी समाज की भौतिक संस्कृति का भाग होती है और अभौतिक संस्कृति की अपेक्षा अधिक तेजी से विकसित होती है (जैसे कि ज्ञान, मूल्य, विश्वास या विचार, कौशल आदि का विकास)। संस्कृति की भांति प्रौद्योगिकी भी जाति-विशिष्ट होती है। उदाहरण के तौर पर कृषिक समाज सदैव कृषि-संबंधी प्रौद्योगिकी विकसित करने के पक्ष में होगा जबकि औद्योगिक समाज चाहेगा कि केवल प्रौद्योगिकी का ही विकास हो। फिर भी यह स्पष्ट है कि प्रौद्योगिकी की प्रकृति कभी निश्चल नहीं होती। मानव मस्तिष्क की सोच, बदलती जरूरतें और विचारधारा, पर्यावरण की बढ़ती जटिलताएँ और इनके साथ संतुलन बनाने के लिए प्रौद्योगिकीयों में भी विभिन्न परिवर्तन आते हैं और इसके परिणामस्वरूप समाज उत्पादन प्रक्रिया भी प्रभावित होती है।

मार्क्स के अनुसार मनुष्य एक निर्माण करने वाला पशु होता है और उत्पादन प्रक्रिया के दौरान वह एक निश्चित उत्पादन संबंध में बंध जाता है। ये उत्पादन संबंध मनुष्य की उत्पादन संबंधी भौतिक शक्तियों के अनुरूप हो जोकि समाज की उत्पादन क्षमता पर आधारित होती है — यहाँ क्षमता का अर्थ है एक ऐसा कार्य जो वैज्ञानिक ज्ञान, प्रौद्योगिकीय उपकरणों के प्रयोग और संगठन के सामूहिक व्यवहार से जुड़ा होता है (अरोन 1965:121)। अत: उत्पादन की भौतिक शक्ति के रूप में प्रौद्योगिकी द्वारा सामाजिक उत्पादन संबंधों का निर्धारण किया जाता है।

चूँकि समाज के आधे मानव संसाधनों का गठन महिलाओं द्वारा किया जाता है इसलिए यह आवश्यक होगा कि इस चरण में समाज में महिला की स्थिति पर एक आम राय कायम कर ली जाए।

4.2 महिलाएँ और समाज

मानव समाज मौलिक रूप से विभिन्न स्तरों में विभाजित है जिनमें से कुछ हैं — जाति, वर्ग वंश, लिंग आदि। आप इस कार्यक्रम के आधार पाठ्यक्रम के खंड-1 में पहले ही अध्ययन कर चुके हैं कि लिंग और सामाजिक लिंगों में क्या अंतर है और स्तरित लिंग संबंधी सामाजिक-राजनीतिक ढाँचे में भी क्या अंतर होता है। हमारी इस इकाई में यह स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है कि लिंग' से तात्पर्य है महिला और पुरुष के बीच के जैविक अंतर जबकि सामाजिक लिंग से तात्पर्य है महिला और पुरुषों की बीच में समाज द्वारा निर्मित सांस्कृतिक भिन्नता और उनके बीच के असमान संबंध। जैसा कि श्रम बाजार, राजनीतिक

संरचना और परिवारों के संदर्भ में अभिव्यक्त किया गया कि सामाजिक लिंग एक ऐसा वैचारिक साधन है जिसके द्वारा महिला और पुरुषों के बीच विभिन्न संरचनात्मक असमान संबंधों को उजागार किया जाता है। यह प्रक्रिया न केवल सांस्कृतिक बल्कि जाति विशिष्ट भी है और समाज से जुड़ी विभिन्न संस्थागत व्यवस्थाओं जैसे कि (जाति, परिवार, नातेदारी, संपत्ति आदि) और समाजीकरण की प्रक्रियाओं और शैक्षिक पिछड़ेपन द्वारा सामूहिक रूप से लिंग निर्माण संबंधी प्रक्रिया में अपना योगदान देती हैं।

विचार करें -1

समाजिक लिंग एक ऐसा वैचारिक साधन है जिसका प्रयोग न केवल महिला और पुरुषों के आपसी सबंधो को व्यक्त करता है बल्कि उसका विश्लेषण भी करता है। आपके विचार में इसके परिणामस्वरूप कार्य क्षेत्रों में रूढ़िबद्धता का सूत्रपात क्यों हुआ? अपने विचारों को अपनी नोट पुस्तिका में लिखिए।

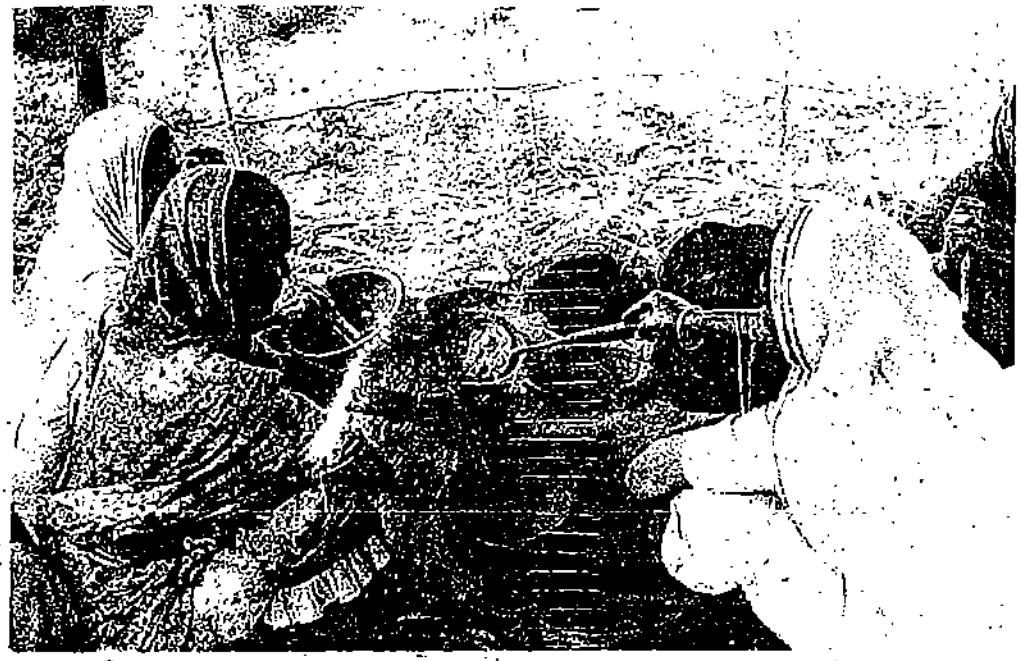

महिलाए कब तक जाति एवं पुरुष वर्ग के अधीन दमन और अत्याचार सहन करती रहेंगी?
सौजन्य : सी.एस.आर, नई दिल्ली

लिंग निर्माण संबंधी प्रक्रिया द्वारा प्रभुत्व व्यवस्था, लिंग आधारित रूढ़िबद्ध कार्य, श्रम विभाजन में लिंग असमानता, संसाधनों का असमान वितरण और कार्य संबंधी श्रेणीबद्धता जैसी व्यवस्थाओं का न केवल सृजन बल्कि इन्हें सुरक्षित भी किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप महिलाएँ पूर्णत: शक्तिविहीन हो जाती हैं। इस प्रकार की व्यवस्थाओं में सबसे विचारणीय मुद्दा यह है कि धन-संपदाओं पर केवल मुट्ठी भर पुरुषों का ही राज्य होता है और अधिकांश समाज इसी कारण संपत्तिहीन हो जाता है। इसलिए समाज के निम्नतम वर्ग से संबंधित महिलाएँ दोहरे रूप से उत्पीड़ित होती हैं — पहला तो वर्ग श्रेणीबद्धता में निम्न स्तर से संबंधित होने से, दूसरा — लिंगीय भेदभावों में महिला होने की स्थिति में। ऐसी व्यवस्थाओं में महिला उत्पीड़न की ऐसी दोनों प्रक्रियाओं में जाति एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह समाज में उत्पीड़न पर आधारित विचारधाराओं को वैधता भी प्रदान करती है। चूँकि समाज में पहले से ही महिलाओं की स्थिति काफी निम्न है इसलिए महिलाओं के संदर्भ में प्रौद्योगिकीय हस्तक्षेप के परिणाम क्या होंगे?

इसलिए इन भेदभावों के संदर्भ में महिलाओं पर प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों के प्रभाव और महिलाओं की इन परिवर्तनों तक पहुँच की विस्तार सीमा को पहले जाँच लेना उपयोगी सिद्ध होगा।

4.3 प्रौद्योगिकी, समाज और महिलाएँ

बहुत से समाजशास्त्री मानते हैं कि सामाजिक स्तर पर प्रौद्योगिकी का स्वरूप प्रासंगिक होना चाहिए। अमृत्य सेन (1989) के अनुसार सामान्य तौर पर प्रौद्योगिकी को यांत्रिक, रासायनिक या जैविक प्रक्रियाओं के रूप में माना जाता है और इसका संबंध किसी न किसी वस्तु के उत्पादन से होता है। सेन के अनुसार यह प्रौद्योगिकी का एक सीमित दृष्टिकोण है और सामाजिक संदर्भ में इस विचारधारा पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। प्रौद्योगिकी का विस्तार इसके उपकरणों और उनके परिचालन संबंधी लक्षणों तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह अन्य सामाजिक व्यवस्थाओं से भी जुड़ा हुआ है जोकि उपकरणों के प्रयोग को स्वीकृति प्रदान करता है ताकि तथाकथित उत्पादन प्रक्रियाओं को भी व्यावहारिक रूप प्राप्त हों। किंतु उत्पादन और घरेलू कार्यों से जुड़े ये विचार न केवल सीमित हैं बल्कि विरोधात्मक भी हैं। सेन के अनुसार यद्यपि तथाकथित उत्पादन क्रियाएँ स्पष्ट रूप से श्रमिकों के पुनरूत्पादित कार्य और घरेलू आवश्यकताओं पर आधारित हैं इसलिए 'ऐसी क्रियाओं का उत्पादन बढ़ाने में कोई विशेष हाथ नहीं होता और जीवन-निर्वाह जीवित रहने या पुनरुत्पादित से संबंधित होने से ऐसे श्रमिक अक्सर 'अनउत्पादक श्रमिक' कहे जातें हैं।

यहाँ उत्पादन क्रिया को व्यावहारिक रूप देने के घर के भीतर और बाहर श्रमिकों द्वारा किए गए कार्यकलाप संबंधी ढाँचे पर आधारित संपूर्ण दृष्टिकोण का अत्यंत महत्व है। समाज में महिला और पुरुषों के आपसी संबंधों का निर्धारण, इनके आपसी सहयोग पर आधारित क्रियाओं द्वारा निर्धारित किया जाता है और समाज और परिवार में इन क्रियाओं को किस प्रकार से ग्रहण किया जाता है आदि द्वारा भी इनका निर्धारण किया जाता है।

फिर भी उत्पादन प्रक्रिया में कुछ ऐसे मुद्दे हैं जो समाज में महिलाओं के प्रति पक्षपाती दृष्टिकोण को उजागर करते हैं जैसे कि सामाजिक व्यवस्था पर आधारित असमान ढाँचा और श्रम संबंधी लिंग भेदभावों द्वारा वैतनिक कार्यों में विद्यमान असमानता। महिलाओं की निम्न आर्थिक स्थिति को, ये मुद्दे मुख्य रूप से प्रभावित करते हैं। इसकी सुदृढ़ व्यवस्था महिलाओं के प्रति पक्षपाती है क्योंकि अपरंपरागत कौशल और कौशल निर्माण संबंधी प्रक्रिया पर इसके प्रतिकूल प्रभाव हैं। इसी कारण महिलाओं को समान अवसर प्रदान नहीं किए जाते क्योंकि इसी वजह से सहयोग (कुल उपलब्धताओं के अतिरिक्त) और संघर्ष (कुल उपलब्धताओं का परिवारजनों में एक साथ विभाजन) जैसी समस्याओं का जन्म होता है। किसको क्या चाहिए? कौन कितना प्राप्त करेगा? कौन क्या प्राप्त करेगा? आदि कुछ ऐसी सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं जिन्हें सहयोग और संघर्ष की मिली-जुली समस्याओं की प्रतिक्रिया के रूप में देखा जा सकता है।

सहयोग और संघर्ष के मुद्दे पर 'सामाजिक प्रौद्योगिकी' ने एक गहरी छाप छोड़ी है। साफ़ शब्दों में यहाँ उत्पादन और कमाई को प्रभावित करती है। इस कमाई को महिला और पुरुषों के बीच असमान रूप से वितरित किया जाता है और यह रोज़गार अवसरों में भी असमानता को दर्शाती है जिससे महिला और पुरूषों की कार्य स्वतंत्रता भी प्रभावित होती है। सहकारी व्यवस्थाओं की प्रकृति अस्पष्ट रूप से वितरण संबंधी पैरामीटरों को प्रभावित करती है और निजी हितों में उठते विवादों के प्रति पारिवारिक प्रतिक्रियाओं को भी प्रभावित करती है।

सेन का मानना है कि लिंग संबंधी संघर्ष केवल सौदाकारी सिद्धांतों द्वारा ही हल नहीं किया जा सकता (जैसा कि पूँजीपति और इनके श्रमिकों द्वारा किया जाता है)। इस व्यवस्था में हितों के प्रति संघर्ष के बावजूद भी महिला और पुरुषों की केवल विचारधारा बल्कि इनके अनुभव भी एक समान होते हैं। इसलिए इन्हें एक-दूसरे के प्रति सहयोग(या साँठ-गाँठ या समझौते) की भावना रखनी पड़ती है ताकि लाभ की प्राप्ति हो। इस प्रकार के प्रस्तावित नमूने में सेन ऐसी तीन परिस्थितियों की पहचान करते हैं जहाँ कि साँठ-गाँठ द्वारा केवल एक ही पक्ष अपेक्षाकृत अधिक लाभान्वित होता है और यह पक्ष निश्चय ही पुरुषों से संबंधित होता है। आइए इन तीन परिस्थितियों की पहचान करें —

- ऐसे पहलुओं पर सहयोग (या साँठ-गाँठ) की हामी भरना जहाँ विभिन्न वैकल्पिक स्थितियाँ उत्पन्न होती हों जोकि विभिन्न कोणों से दोनों पक्षों के लिए लाभप्रद होती है। इसमें से प्रत्येक पक्ष की चेष्टा होती है कि केवल वहीं अधिक से अधिक लाभ ही प्राप्ति करें। इनमें से एक पक्ष स्वाभाविक प्रकृति के कारण इच्छुक होता है कि वह पीछे हट जाए किंतु व्यावहारिक रूप में वह ऐसा करता नहीं है क्योंकि आरंभ की स्थिति से 'पीछे हटने' की स्थिति अधिक लज्जाजनक होती है। जैसे कि कोई महिला अपने वैवाहिक जीवन में खुश न होने के बावजूद भी सामाजिक कलंक से बचने के लिए ऐसे संबंध को निभाती है।

- इसमें से एक पक्ष खुले आम धमकियों का सहारा लेता है (जिसमें शारीरिक हिंसा भी शामिल होती है)।

- दोनों पक्षों की विचारधारा मुख्य रूप से एक-दूसरे से असमान होती है क्योंकि दोनों ही ये सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं के पारिवारिक समृद्धि में उसका सहयोग अपेक्षाकृत अधिक है। सहयोगवश सापेक्षिक सहयोग संबंधी विचारधारा अंतरा परिवारों (या अंतरा कुटुम्बों को) पारिवारिक संसाधन संबंधी लाभ उठाने में लिंग भेदभावों को वैधता प्रदान करती है। और इसके द्वारा यह भी सिद्ध किया जाता है कि घरेलू कार्य अवैतनिक होने से 'अनुत्पादित' होते हैं।

4.3.1 समाज और उत्पादन

समाज में उत्पादन संबंधी असमान ढाँचा और विद्यमान श्रम संबंधी लिंग विभाजन द्वारा महिलाओं को निम्न सौदाकरी शक्तियाँ प्राप्त हुई हैं इसलिए सेन जोर देकर कहते हैं कि महिलाओं को काम-काजी अवश्य होना चाहिए ताकि वे पहले से बेतहर सौदाकरी स्थितियों को प्राप्त कर सकें। इसलिए यहाँ प्रौद्योगिकी की स्वरूप काफ़ी जटिल हो जाता है। सेन के अनुसार इसके संदर्भ में महिलाओं की आर्थिक भूमिका पर प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों के सदैव प्रतिकूल प्रभाव पड़े हैं। इसलिए इन परिवर्तनों पर सेन के द्वारा एक प्रश्न चिह्न लगाया गया है कि क्या प्रत्यक्ष आर्थिक विरोधाभास को ध्यान में रखते हुए ये परिवर्तन महिलाओं के विरुद्ध जा खड़े होते हैं क्योंकि महिला श्रम अपेक्षाकृत सस्ते में उपलब्ध हो जाता है और चूँकि मशीनी कार्य या पुरुष श्रम दोनों ही महंगे सिद्ध होते हैं इसलिए पुरुषों के स्थानों पर महिलाओं को काम दिया जाना चाहिए।

सेन के अनुसार मुख्य कारण यह है कि विशेषकर ग्रामीण महिलाएँ ऐसे कार्यों में पूरी तरह जुट जाती हैं जोकि न केवल सरल हो बल्कि सदैव समान प्रकृति का हों। लेकिन ऐसे कार्यों को निम्न लागत पर यंत्रीकृत किया जा सकता है जैसे कि (धान कूटना या अनाज पीसना आदि कार्य) ताकि लम्बे समय में

यंत्रीकरण द्वारा यह प्रक्रिया सस्ते में प्राप्त हो। किंतु सत्य तो यह है कि महिलाओं को तुच्छ कार्यों में लगाया जाता है और धीरे-धीरे इस व्यवस्था ने एक परंपरा का रूप ले लिया है और अंत में सेन का कहना है कि महिलाओं को रोज़गार के अवसर प्रदान करने से न केवल उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होगा बल्कि सहकारी संघर्षों के प्रति भी उनकी स्थिति बेहतर होगी।

अपने अनुभव से सीखें

कुछ ग्रामीण महिलाओं से गावों में आए प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों के संदर्भ में बात-चीत कीजिए और यह जानने का प्रयास कीजिए कि ग्रामीण महिलाएँ और पुरुष के विचार में ग्रामीण क्षेत्रों और कृषि संबंधित क्षेत्रों में आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रभाव क्या होंगे। प्राप्त जानकारी का वर्णन अपनी पुस्तिका में कीजिए।

प्रदर्शित कार्य से मान्यता !

सौजन्य : डा.डी.के. सिंघाराय, इग्नू, नई दिल्ली

फिर भी रोज़गार का स्वरूप उत्पादन परक होना चाहिए न कि खैराती अर्थात् रोज़गार सृजन संबंधी सफलताओं का निर्धारण विकल्पों के विपरित होना चाहिए और इनकी सदैव प्रशंसा करनी चाहिए न कि भर्त्सना। इसके अतिरिक्त आगे रोज़गार द्वारा न केवल लाभ प्राप्त होना चाहिए बल्कि इसके प्रति सहयोग के संदर्भ में अस्पष्ट विचारधारा को भी दूर करना चाहिए। महिलाओं को ऐसी सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए ताकि उनमें शिक्षा और कौशल का निर्माण हो (सहकारी संघर्ष के परिणामस्वरूप जिसे दोबारा अस्वीकृत कर दिया गया था) आधुनिक परिवार नियोजन संबंधी तरीकों में शामिल प्रौद्योगिकीय परिवर्तन महिलाओं के पक्ष में लाभकारी सिद्ध हुए हैं इससे सहकारी संघर्षों के परिणामों में सुधार भी हुआ है क्योंकि महिलाओं को अधिक संख्या में बच्चों का पालन-पोषण करना पड़ता है जिसने वे पीछे हटने की स्थिति प्राप्त करने के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाती है। इसी प्रकार से रेडियो और टेलीविजन जैसे साधन भी ज्ञान और जानकारी प्रदान करने में महिलाओं के लिए लाभकारी सिद्ध हुए हैं।

4.4 प्रौद्योगिकी परिवर्तनों के प्रभाव

महिलाओं पर प्रौद्योगिकी परिवर्तनों के प्रभावों के बारे में विभिन्न विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

अमित भादुड़ी (1985) द्वारा किए गए अध्ययनों में दो विशिष्ट वर्गों के रूप में कार्यरत महिला और पुरुषों के आय वितरण पर आधारित प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों के प्रभावों का पता चलता है कि चूँकि विकासशील देशों में अधिकांश ग्रामीण महिलाएँ उपलब्ध समय का अधिकतर भाग 'अवैतनिक' कार्यों पर खर्च करती हैं। इसलिए इन प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों का प्रत्यक्ष प्रभाव इनमें शामिल महिलाओं के जीवन को बेहतर बनाने में संबंधित था।

इन अध्ययनों में इस ओर भी इशारा किया गया कि यद्यपि अधिकांश तकनीकी परिवर्तनों का प्रत्यक्ष संबंध महिलाओं से नहीं होता। इसलिए भादुड़ी मानते हैं कि फिर भी प्रेरणाओं से ये अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं जोकि उच्च लाभ और व्यापकीकरण जैसे परिवर्तनों का सूत्रपात करती हैं। महिलाओं को प्रभावित करने वाले अप्रत्यक्ष परिवर्तन सामाजिक संबंधों के स्वरूप पर आधारित होते हैं जैसे कि परिवार या कुटुम्बों में विद्यमान श्रेणीबद्धता और रूढ़िबद्ध कार्यों के मशीनीकरण का स्थान पुरुषों द्वारा ले लिया जाता है। महिला श्रमिकों की स्थिति के अनुसार इन परिवर्तनों के प्रभावों में भी भिन्नता पायी जाती है — अर्थात् चाहे वह मज़दूरी नियोजित (wage employed) हो या स्व-नियोजित (self employed) इसका विशिष्ट उदाहरण बांग्लादेश में परंपरागत चावल कूटने का कार्य जहाँ होता है इन कार्यों में जुड़ी निर्धन महिलाएँ परंपरागत तकनीकों के तहत या तो बेरोज़गार हो गई हैं या निजी रोज़गारों में जुट गई। अध्ययन की इकाई के रूप में परिवार में प्रौद्योगिकी द्वारा सृजित लिंग-भेदभाव छिप जाते हैं, यह विशेष रूप से अंतरा-परिवारों में देखा गया। यह विशेष रूप से महिलाओं द्वारा प्रौद्योगिकी के विस्तार और स्वीकृति के संदर्भ में सुसंगत है क्योंकि इनमें से अधिकांश साख सुविधाओं की माँग करती हैं जोकि अब तक परंपरागत भूस्वामित्व अधिकारों में केवल पुरुषों को ही एकल स्वामित्व प्रदान करता था। पुनः परिवर्तनों को शीघ्र ही स्वीकार कर लिया जाता है यदि अधिक धन उत्पादन के अतिरिक्त इनके द्वारा मूल्यों में संघर्ष अधिक न बढ़े जोकि महिलाओं के जीवन और कार्य क्षेत्र से संबंधित होते हैं।

बीना अग्रवाल ने आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में महिलाओं पर कृषि आधुनिकीरण संबंधी प्रभावों की समीक्षा की और पाया कि यह आवश्यक नहीं कि जिन परिवर्तनों द्वारा परिवार के पुरुष लाभान्वित होते हैं, वहीं महिलाएँ भी समान रूप से लाभान्वित हों और कभी-कभी तो महिलाओं के प्रति ये हानिकारक भी सिद्ध होते हैं। यदि पुरुषों पर इनके प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं तो ये महिलाओं पर अधिक प्रतिकूल सिद्ध होंगे। इस प्रकार से ये सामाजिक-आर्थिक वर्ग और इससे जुड़ी महिलाओं को प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वर्ग में लिंग भेदभावों द्वारा भी इन प्रभावों में भिन्नता पायी जाती है।

4.4.1 परिवार, भाड़े के श्रमिक और छोटे किसान

अग्रवाल ने भारत में कृषि क्षेत्र में महिला श्रम उपयोग पर एच वाई वी संबंधी प्रभावों के संदर्भ में आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु से एकत्रित आँकड़ों का अध्ययन किया। आंध्र प्रदेश में एच वाई वी के तहत जहाँ क्षेत्रों की संख्या बढ़ी वहीं महिला श्रम में गिरावट पाई गई और यह गिरावट न केवल निरपेक्ष पदों में बल्कि आनुपातिक पदों से भी संबंधित थी। किंतु तमिलनाडु में महिलाओं को रोज़गार दिए जाने से एच वाई वी में तो बढ़ोत्तरी हुई किंतु महिलाओं के कार्य बोझ पहले से अधिक बढ़ गए। देश भर से ग्रामीण

श्रम पर प्राप्त जानकारी के आधार पर अग्रवाल का कहना है कि एच वाई वी सिंचाई पैकेज और सहकालिक मशीनीकरण से भी भाड़े के श्रमिकों को पर्याप्त रोज़गार देने में कोई खास मदद नहीं मिली। यदि इससे संबंधित विभिन्न प्रभावों पर नज़र डाले तो पता चलता है कि पौद लगाना, छंटाई करना और फसल काटना आदि कार्यों में भाड़े के श्रमिकों को पर्याप्त कार्य मिला जिसमें महिला और पुरुष दोनों शामिल हैं किंतु हल जोतना, अन्न धुनना और परिवहन जैसे कार्यों में इन श्रमिकों को कोई खास काम नहीं मिला। दूसरी ओर आकस्मिक महिला और पुरुष श्रमिकों पर पड़े प्रभाव भी असमान थे क्योंकि महिलाओं को अपेक्षाकृत काम अधिक मिला। किंतु सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा यह है कि दैनिक भाड़े के संदर्भ में इन श्रमिकों की वास्तविक आय में काफ़ी कमी आई। छोटे कृषकों के संदर्भ में लिंग संबंधी प्रभावों में भी काफ़ी विभिन्नता पाई गई है। यहाँ कुछ ऐसे परिवार भी हैं जो नये निवेशों द्वारा लाभान्वित हुए हैं। कुछ क्षेत्रों से संबंधित ऐसे परिवारों में महिलाओं का कार्य भार काफ़ी बढ़ गया है और कई क्षेत्रों में पारिवारिक आय में बढ़ोत्तरी होने से महिलाओं ने घर से बाहर काम करना बंद कर दिया। घर से बाहर काम न करना जैसे प्रचलन कुछ सीमा तक सांस्कृतिक मूल्यों से भी बंधे होते हैं और इससे महिलाओं के घरेलू कार्य काफ़ी बढ़ जाते हैं और कभी-कभी महिलाओं की स्थिति पर इसके नकारात्मक परिणाम भी होते हैं और यहाँ कुछ ऐसे परिवार भी होते हैं जिन्हें कृषि आधुनिकीकरण के कारण भूमि से बेदखल कर दिया जाता है जिससे ऐसे परिवारों से संबंधित महिलाएँ मात्र दरिद्र बन कर रह जाती हैं।

4.4.2 बड़े किसान

एच वाई वी सिंचाई पैकेज द्वारा बड़े कृषि परिवारों को मुख्य रूप से लाभ पहुँचा है और निरपेक्ष पदों में इन परिवारों से संबंधित महिलाओं ने न केवल अपनी आमदनी बढ़ाई बल्कि उपभोग स्तरों में भी सुधार किया है। इनमें से अधिकांश शारीरिक श्रम संबंधी कार्यों से छुट्टी पा लेती है और संभवत: पहले की अपेक्षा इनका घरेलू कार्य संबंधी बोझ अधिक बढ़ जाता है। फिर भी प्रौद्योगिकी स्वतंत्र रूप से परिचालित नहीं की जाती क्योंकि समाज में ये सामाजिक मूल्य और विचारधाराएँ महिलाओं की अधीनस्थ स्थिति को वैध घोषित करतीं हैं। अग्रवाल के अनुसार: वास्तव में महिलाओं को पुरुषों की तुलना में लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है और यह विचारधारा की तुलना में तकनीकी लक्षणों से संबंधित होती हैं जो महिलाओं की अधीनस्थ स्थितियों को वैध घोषित करता है और इस व्यवस्था को दोबारा न केवल पारिवारिक और सामाजिक रूप से बल्कि आर्थिक रूप से भी दोबारा लागू करता है। फिर भी ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये योजना लिंग भेदभावों पर आधारित हैं जो सदैव महिलाओं के विरुद्ध जा पड़ती है। सिंघाराय (1992) ने पश्चिम बंगाल में कृषि आधुनिकीकरण की दो विभिन्न प्रवृत्तियों को दर्शाया है। इनके अनुसार कृषि आधुनिकीकरण के प्रभाव सभी स्थानों पर भिन्न थे। इसलिए राज्य के कुछ उत्तरी भागों में कृषि आधुनिकीकरण के प्रभावं सभी स्थानों पर भिन्न थे। इसलिए राज्य के कुछ उत्तरी भागों में कृषि आधुनिकीकरण संबंधी कार्य अपेक्षाकृत काफ़ी उच्च थे। हुगली जिले से संबंधित कृषि विकसित ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुष खेतीहर मजूदरों की माँग में काफी वृद्धि हुई और महिला खेतीहर मजदूरों के एक पूरे धड़े को ही काम से हटा दिया गया। इस गाँव में मुख्य रूप से लिंग-आधारित मजदूरी वाले भेदभावों को दूर कर दिया गया जबकि उत्तरी पश्चिमी बंगाल के भागों में केवल आंशिक रूप से ही कृषि संबंधी मशीनीकरण संभव हुआ और अधिकांश ग्राम वासियों ने मुख्य रूप से एच वाई वी धान, जूट, तेल संबंधी बीज़ों की खेतीबाड़ी का चुनाव किया, जोकि रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, एच वाई वी बीजों और सिंचाई और जैव-प्रौद्योगिकी निवेशों को गहन देशभाल से जुड़ा था। इन प्रयासों द्वारा कृषि क्षेत्रों में महिला श्रमिकों के रोज़गार अवसर बढ़ गए किंतु उनकी मज़दूरी दर आनुपातिक रूप से ज्यों की त्यों ही रही। समान प्रकृति का कार्य करने के बावजूद भी पुरुष श्रमिकों की तुलना में महिला श्रमिकों को कम मज़दूरी दी जाती थी। महिलाओं के विभिन्न वर्गों पर कृषि आधुनिकीकरण के प्रभावों

में भी भिन्नता पायी गई है क्योंकि इसके द्वारा गाँवों में वर्ग-भिन्नताएँ और भी अधिक बढ़ गई। चूँकि कृषि आधुनिकीकरण में सिंचाई एक महत्त्वपूर्ण घटक माना जाता है जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं की भूमिका और इनकी सामाजिक स्थिति व्यापक रूप से प्रभावित हुई है। हाल ही में न केवल भारत में, बल्कि विदेशों में भी महिलाओं पर सिंचाई के प्रभावों के संदर्भ में ज्ञान-साहित्य की एक प्रभावात्मक शाखा ही उत्पत्ति हुई। इससे जुड़े विद्वानों में पैमिला स्टेनबरी (1981) का नाम भी आता है। इनके द्वारा हरियाणा-राजस्थान सीमा पर बसे सिरसा जिले के भागलपुर गाँव में महिलाओं पर सिंचाई संबंधी प्रभावों का विस्तृत अध्ययन किया गया।

4.4.3 महिलाएँ और संबंधित कार्यक्षेत्र

महिलाओं के संदर्भ में यह अध्ययन किया गया कि फसल काटने के पश्चात् किए जाने वाले कार्यों में इनका कार्य-बोझ पहले से अधिक बढ़ गया किंतु खाद्य प्रक्रियाओं से संबंधित महिलाओं के कार्य पहले की अपेक्षा काफ़ी कम हो गए क्योंकि अब अन्न को मशीनों द्वारा कूटा जाता है जबकि कपास-चुनने जैसे कार्यों में महिला और बच्चों की भूमिका अधिक पायी गई है किंतु बिनौले में से कपास निकालने जैसे कार्यों में इनकी भागीदारी में कमी पाई गई क्योंकि यह कार्य गाँवों के बाहर किया जाता था। यद्यपि कृषि संबंधी श्रम कार्य भूमिहीन महिलाओं को अपेक्षाकृत पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थे इसलिए आंशिक भू-स्वामित्व और पुरुष श्रमिक प्राथमिकता के कारण कृषि क्षेत्रों में महिला श्रम मज़दूरों का स्थान काफ़ी कम हो गया। किंतु श्रम कार्यों में वृद्धि के कारण भूमिहीन पूर्ण रूप से भूस्वामित्वों पर आश्रित हो गए जिससे कि यह व्यवस्था बहुशाखित स्वरूप में परिवर्तित हो गई। उन क्षेत्रों में ग्रामवासियों ने काम की तलाश में बाहर जाना छोड़ दिया जहाँ ये क्रिया उच्च कृषि उत्पादन से संबंधित थी।

विचार करें-2

आप के विचार में महिलाओं द्वारा फसल काटने और इसके पश्चात् किए जाने वाले कार्यों में क्या अंतर है? अपने उत्तर के उचित कारणों का वर्णन अपनी पुस्तिका में कीजिए।

1981 में पैमिला स्टैनबरी द्वारा किए गए अध्ययन में एक बात अस्पष्ट थी कि परिवार के भीतर महिलाओं की भूमिका ज्यों की त्यों ही रही। सिंचाई द्वारा फसल बोने की नवीन प्रणालियों का असर पारिवारिक खान-पान पर भी पड़ा जिसमें अब सब्जी और फल भी शामिल होने लगे। कपास का आगमन दो प्रकार से लाभकारी सिद्ध हुआ : पहला, अब महिलाओं को ईंधन के रूप में शाक अपशिष्टों को एकत्र करने की अपेक्षा रूई की बत्तिया उपलब्ध होने लगी जिनका प्रयोग जलाने के लिए किया जाने लगा और दूसरा, इसके परिणामस्वरूप ईंधन की तुलना में गोबर का प्रयोग खाद के रूप में होने लगा और पर्याप्त चारे की उपलब्धता से परिवार दुधारु पशु (विशेष रूप से भैंसे) पालने लगे ताकि दूध और दूध से बने उत्पादों को अधिक मात्रा में पर्याप्त किया जा सके। विशेष रूप से घी बनाने का कार्य अधिक मात्रा में होने लगा।

ये लाभ परोक्ष रूप से केवल भूमिहीनों को ही प्राप्त थे। मुख्य रूप से भूसंपत्ति परिवार से संबंधित समृद्धि द्वारा भूमिहीन अनुसूचित जातियों के साथ एक नये संबंध का सूत्रपात हुआ। इस संबंध द्वारा यह सुनिश्चित किया गया कि पर्याप्त या अल्प मात्रा में जातियों को कार्य के दौरान दैनिक आहार दिया जाएगा और कठिनाई के समय ऋण भी दिया जाएगा। सिंचाई द्वारा पानी भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने लगा और दूसरे गाँव तक पैदल जा कर पानी भरने जैसी समस्याओं से भी छुटकारा मिला और सिंचाई संबंधी जल द्वारा गाँवों के तालाब भरने लगे जिससे पीने का जल स्थाई स्रोत के रूप में प्राप्त होने लगा। इन

महत्त्वपूर्ण कार्य द्वारा गाँवों की अति निर्धन महिलाओं को काफ़ी राहत मिली और पानी भरने का स्थान मिलन स्थान के रूप में परिवर्तित हो गया जहाँ ये एक दूसरे के सुख-दुख बाँटने लगी और इस प्रकार से इन महिलाओं की दिन भर की थकान भी दूर हो जाती और वे ताज़गी महसूस करती। किंतु पारिवारिक निर्णयों में अभी भी सारे निर्णय केवल पुरुषों द्वारा लिए जाते थे और इन निर्णयों में महिलाओं की भागेदारी केवल नाममात्र की थी। विशेष रूप से भूसंपत्ति परिवारों में इन प्रथाओं को पाया गया जबकि इनकी तुलना में भूमिहीन परिवारों में स्थिति इतनी जटिल नहीं थी क्योंकि सीमित अधिकारों में विकल्पों का तो प्रश्न ही नहीं उठता ओर इन परिवारों में निर्णय लेने को कुछ था भी नहीं।

उसे शैक्षिक प्रक्रिया से कब तक दूर रखा जाएगा?
सौजन्य : प्रो कपिल कुमार, इग्नू, नई दिल्ली

यहाँ बालिकाओं को शिक्षित करने जैसे विचारों को निम्न माना जाता था। इसलिए जहाँ प्राथमिक विद्यालयों में 76 प्रतिशत छात्रों ने दाखिला लिया वहाँ इनकी तुलना में केवल 25 प्रतिशत छात्राएँ ही प्रवेश करती थी। वास्तव में जहाँ अधिक से अधिक बाल विद्यार्थियों को विद्यालय भेजा जाता था वहीं घरेलू कार्यों में लड़कियों द्वारा काम लिया जाने लगा। वरिष्ठ सदस्यों का कहना है कि दहेज जैसी व्यवस्थाएँ अपेक्षाकृत हाल ही में देखने को मिली हैं जबकि पहले शादी-ब्याह के मामले में दूल्हे का परिवार दूल्हन लाने का खर्चा भरता था।

4.5 सामाजिक-सांस्कृतिक ढाँचा और नयी प्रौद्योगिकी

सामान्यत: तीसरी दुनिया के समाजों में और विशेष रूप से भारतीय समाज में विद्यमान संस्थागत ढाँचे द्वारा विकास संबंधी परिवर्तनों की न केवल शुरुआत की गई बल्कि इन्हें परिचालित या कार्यान्वित भी किया गया है। चूँकि ये सिद्धांत पैतृत संबंधी लिंग भेदभावों पर आधारित है इसलिए ऐसी व्यवस्थाओं में निर्णय संबंधी मामलों में महिलाओं की भूमिका न के बराबर होती है। आमतौर पर निर्णायक जन प्रौद्योगिकी परिवर्तन, आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तनों को जातीय दृष्टिकोण से जोड़े रखते हैं जिससे वे ये जानने में विफल रहते हैं कि महिलाओं की सामाजिक स्थिति पर इन परिवर्तनों के संभावित

प्रतिकूल प्रभाव क्या होंगे जिसके परिणामस्वरूप प्रौद्योगिकीय परिवर्तन और विकास संबंधी प्रक्रियाओं द्वारा यह पूर्ववर्ती सैद्धांतिक व्यवस्था अधिका सुदृढ़ हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप महिलाएँ आर्थिक व सामाजिक दोनों पहलुओं से उत्पीड़ित हो जाती है और राजनीतिक रूप से निर्बल वर्ग की छवि प्राप्त करती हैं।

प्रौद्योगिकीय प्रभावों द्वारा अभी एक यह प्रयास किया गया कि सामाजिक परिवर्तन न कवेल धीरे-धीरे हो बल्कि संस्थागत भी हो। ये परिवर्तन समाज की वर्तमान संरचनात्मक व्यवस्था को न केवल मान्यता प्रदान करते हैं बल्कि इसके महत्व पर भी बार-बार जोर देते हैं। इन परिवर्तनों द्वारा यह प्रयास भी किया जाता है कि इस संस्थागत व्यवस्था द्वारा संबंधित समाज सदस्यों की सामाजिक स्थिति उन्नत हो। स्थानीय गतिशीलता भी इन सामाजिक मानदण्डों और मूल्यों द्वारा वैध सिद्ध की जाती है। भारतीय सामज विभिन्न स्तरों में विभाजित है जो जाति और सामाजिक वर्गों पर आधारित है। इस सामाजिक-आर्थिक श्रेणीबद्धता पर आधारित प्रत्येक वर्ग की महिलाएँ विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संबंधी प्रतिकूल परिस्थितियों द्वारा उत्पीड़ित हैं। चूँकि समाज में विद्यमान संरचनात्मक व्यवस्थाओं में महिलाओं की समाजिक स्थिति काफी निम्न है इसलिए उन्नत प्रौद्योगिकी के आगमन से समाज में मानक व्यवस्था का सूत्रपात हुआ और यह अधिक सुदृढ़ भी हुआ किंतु इसके परिणामस्वरूप समाज में महिलाओं की स्थिति और उत्पीड़ित हो गई।

अपने अनुभव से सीखें 2

विभिन्न जानकार व्यक्तियों से बातचीत के दौरान पता लगाइए कि क्या भारत में सैद्धांतिक व्यवस्था पितृक पक्षपात पर आधारित है? यदि हां तो इस समस्या का कोई हल सुझाएं। प्राप्त जानकारी को अपनी पुस्तिका में लिखिए।

4.5.1 विकास और एकलस्वामित्व

कृष्णा राज (1988) के अनुसार: आर्थिक विकास संबंधी प्रक्रियाएँ और प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों का पुन: राजनीतिक अर्थव्यवस्था की प्रकृति से गहरा संबंध होता है। यदि विकास का अर्थ छोटे धनी वर्गों को प्राप्त आर्थिक, राजनीतिक और एकलस्वामित्व संबंधी शक्ति से है जिसमें अन्य विशिष्ट वर्ग भी शक्ति और प्रतिफल की चाहत में सहयोग प्रदान करते हैं तक महिलाओं की राजनीतिक शक्ति इसके अतिरिक्त सतत पितृक विचारधारा पर आधारित होती है जहाँ लिंग असमान, पक्षपाती और उत्पीड़ित संबंधों पर आधारित है। ये संबंध मात्र सैद्धांतिक नहीं होते। ये उत्पादन के आर्थिक आधार से शक्ति प्राप्त करते हैं अर्थात महिला संबंधी शरीरिक श्रम और पुनरूत्पादन जैसे संबंध (जैसे कि बच्चे को जन्म देना, इनका पालन पोषण और परिवार की देखभाल जैसे कार्यों में महिलाओं की भूमिका) जो महिलाओं के जीवन से जुड़े रहते हैं और इन्हें दूसरों पर निर्भर रहने में विवश करते हैं और समाज में विद्यमान ऐसी व्यवस्थाएँ समाजीकरण, रीति-रिवाज और विभिन्न प्रथाओं द्वारा भेदभाव और अधीनस्थ को कायम रखती हैं। विकास संबंधी क्षेत्रों में महिलाओं की पूर्ण और समान भागादारी और विकासात्मक कार्यों के प्रति व्यापक प्रतिक्रिया को सुनिश्चित करना जैसी पूर्वशर्तों के संदर्भ में विकास संबंधी माडल द्वारा इन व्यवस्थाओं में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। (पृ. 35)

महिलाओं पर कृषि प्रौद्योगिकी के उन्नत प्रभावों के संदर्भ में बोसर्प का मानना है कि : चूँकि अब कृषि मानव श्रम पर ज्यादा निर्भर नहीं है इसलिए श्रम उत्पादिकता की भिन्नता से महिला और पुरुष भी प्रभावित होते हैं। वास्तविकता में आमतौर पर पुरुष नयी प्रौद्योगिकी संबंधी परिचालन व्यवस्था को

आसानी से सीख लेते हैं जबकि महिलाएँ हाथ वाले पुराने औजारों तक ही सीमित रह जाती हैं इससे उत्पादी फासले और बढ़ जाते हैं क्योंकि नयी कृषि प्रौद्योगिकी और नये उपकरणों के प्रयोग द्वारा पुरुष अपना एक नया स्थान कायम कर लेते हैं।

एशिया में उन्नत प्राद्योगिकी के संदर्भ में वे लिखती हैं कि :

एशियाई क्षेत्रों में संबंधित हरित क्रांति द्वारा जहाँ धान उत्पादन संबंधी कार्य मशीनीकृत हुआ है और अब पुरुष ट्रेक्टरों का उपयोग करने लगे हैं वहीं महिलाएँ अभी भी या तो हस्त औजारों या बिना औजारों के प्रयोग द्वारा कटाई-छंटाई का कार्य कर रही है (1989 : 16)।

4.5.2 प्रौद्योगिकी और विकास

ग्रामीण भारत में प्रौद्यागिकीय आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं, आर्थिक विकास और उत्पादन के व्यापारीकरण संबंधी विस्तार द्वारा बहुविध सामाजिक प्रक्रियाओं को बढ़ावा मिला है जिससे कि कृषिक सोपान के प्रत्येक वर्ग में प्रादेशिक असंतुलन, वर्ग असामनता और महिलाओं की उत्पीड़ित स्थिति जैसी व्यवस्थाओं का भरपूर विस्तार हुआ है। उत्पादन संबंधी उन्नत प्रौद्योगिकी के आगमन से इन सामाजिक प्रक्रियाओं में खलबली मच गई। प्रौद्योगिकी का आगमन दर्शाता है कि इसके द्वारा विकास की प्रक्रिया न केवल उन्नत हो बल्कि निर्विघ्न भी हो और इस संदर्भ में यहाँ विकास संबंधी विवेचनात्मक दृष्टिकोण पर नजर डालना आवश्यक है। भारत में कृष्णा राज (1988) के अनुसार केवल पितृक व्यवस्था में ही विकास बढ़ रहा है जिससे कि महिलाओं की उत्पीड़ित स्थिति वैसी ही रहेगी और इससे कुछ महत्त्वपूर्ण संसाधनों तक न तो वे समान अधिकार प्राप्त कर पाएँगी और न ही इन्हें नियंत्रित कर सकेंगी। कुछ मामलों में पितृक व्यवस्था में नये स्वरूप देखने को मिले। इस सैद्धांतिक व्यवस्था की अवसंरचना न कवेल पक्षपाती है बल्कि अधीनस्थ संबंधी है। महिलाओं पर सामाजिक नियंत्रण और उनकी उत्पीड़ित स्थिति द्वारा भेदभावों के विभिन्न स्वरूपों को न केवल लागू किया जाता है बल्कि इन्हें कायम भी किया जाता है और इनका विस्तार भी किया जाता है। इससे केवल भेदभाव ही नहीं बढ़ता बल्कि महिला के प्रति पुरुष अधिक हिंसक भी हो जाते हैं जिससे न केवल शरीरिक रूप से बल्कि मानसिक रूप से भी इनका जीवन और सुरक्षा खतरे में पड़ जाता है (पृ. 82)।

महिला विकास अध्ययन केंद्र, नई दिल्ली द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि भारत के विभिन्न आठ फ़सल संबंधी ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न सामाजिक ढाँचों का उद्‌भव हुआ है। जाति और वर्गों के मिश्रित लक्षणों द्वारा प्रत्येक सामाजिक ढाँचे के भीतर महिला की अधीनस्थ प्रकृति का निर्धारण भी विभिन्न प्रकार से किया जाता है। कुछ गाँवों का स्वरूप विकसित था, कुछ अर्ध-विकसति हुए जबकि अधिकतर जनजातियाँ पिछड़ी हुई थी। विकसित गाँवों से अभिप्राय था जहाँ वस्तु-उत्पादन बड़े पैमाने पर हो, लाभ की दर भी उच्च हो और जहाँ पुननिवेश और वर्गों में तीखी भिन्नता पायी जाती थी। अर्ध-विकसित ग्रामों का स्वरूप बदल रहा था और विशेष रूप से ये व्यावसायिक विभिन्नता की ओर अग्रसर थे। जनजातीय क्षेत्रों में निवासी आर्थिक विकास की निम्नतम सीढ़ी पर टिके थे और आर्थिक रूप से अपेक्षाकृत अस्तरतित थे। इन सामाजिक ढाँचों में जाति और वर्ग, प्रौद्योगिकी और महिलाओं की स्थिति में भी विभिन्नता पायी जाती है।

विचार करें।

भारत में महिलाओं की उत्पीड़ित स्थिति संबंधी पहलुओं को समझने के लिए, हमें प्रौद्योगिकीय परिवर्तन और आर्थिक विकास के संदर्भ में जाति, वर्ग और लिंग संबंधी अंतरसंबंधों की जाँच करनी होगी। इस प्रक्रिया में महिलाओं की उत्पीड़ित स्थिति विभिन्न स्वरूपों में बंटी हुई है। कार्य सहभागिता के संदर्भ में महिलाओं की उत्पीड़ित स्थिति संबंधी स्पष्ट अभिव्यक्ति निम्न प्रकार की हो सकती है:

- इन्हें उत्पादन संबंधी रोज़गारों से बाहर कर दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप इन्हें न केवल मज़दूरी में कम हिस्सा प्राप्त होता है बल्कि इन्हें प्राप्त वैतनिक रोज़गार भी कम हो जाते हैं।
- इन्हें न्यूनतम कार्यों में रोज़गार प्राप्त होता है।
- इन्हें अल्प अदायगी प्राप्त होती है और केवल नीचे दर्ज़े के रोज़गार प्राप्त होते हैं (महिला संबंधी कार्यों में)

इन्हें आर्थिक रूप से असमान स्थितियों में रखा जाता है जिन्हें महिला श्रम शक्ति विभिन्नताओं और आकस्मिक कार्यों द्वारा प्रतिबिंबित किया गया है। (स्कॉट 1986)

4.6 नयी प्रौद्योगिकी, विकास और महिला उत्पीड़न

उपर्युक्त उल्लिखित अध्ययनों से पता चलता है कि नयी प्रौद्योगिकीयों द्वारा महिलाओं की कार्य-सहभागिता और घरेलू उत्तरदायित्व गाँवों के आर-पार विभिन्न रूपों से प्रभावित हुए हैं। कृषि संबंधी विकसित गाँवों में प्रौद्योगिकी और मशीनकीरण के आगमन और इसके विस्तृत प्रयोग द्वारा कृषि क्षेत्रों में महिलाओं का न कवेल कार्य-बोझ बढ़ा है बल्कि उनके रोज़गार अवसरों में भी बढ़ोत्तरी हुई है। न केवल घरेलू कामकाजों में बल्कि कृषि संबंधी क्षेत्रों में भी इन महिलाओं का कार्य-बोझ काफ़ी बढ़ा है जैसे कि (खाना अधिक मात्रा में पकाना, अधिक कपड़ों की धुलाई, अधिक बर्तनों की सफाई, आश्रित सदस्यों और पशुओं की देखाभाल और घरेलू परिसम्पत्तियों आदि का रख-रखाव करना)।

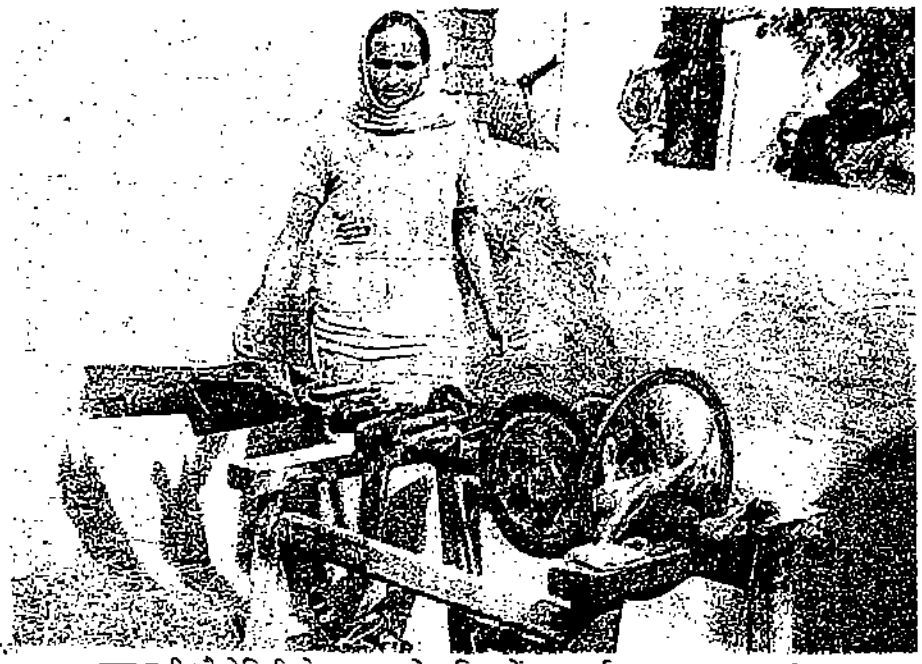

क्या नयी प्रौद्योगिकी के आगमन से महिलाओं का कार्यभार कुछ कम हुआ?

सौजन्य : सी डब्ल्यू डी एस, नई दिल्ली

विकसित गाँवों में श्रेणीबद्धता पर आधारित प्रत्येक वर्ग में महिलाओं की स्थिति न केवल जटिल बल्कि अपेक्षित भी रही है और ये जाति, नृजातीय और स्थानीय मानदंडों के अतिरिक्त सामाजिक मूल्यों पर भी आधारित हैं। स्थानीय मानदंड, जाति संबंधी मूल्य और परिवार की उन्नत आर्थिक स्थिति आदि मुद्दे महिलाएँ आमतौर पर अपना दृष्टिकोण घर से बाहर कृषि और घरेलू काम-काज तक सीमित रखती है। नयी कृषि प्रौद्योगिकी के आगमन और घरेलू आमदनी में वृद्धि द्वारा कार्य सहभागिता में महिलाओं की छिपी भूमिका को दोबारा लागू किया गया। इस वर्ग से संबंधित महिलाओं की अधिकांश अनुसूचित जातियाँ और अन्य पिछड़ी जातियाँ जो आमतौर पर काम-काजी हैं, उनके लिए गृहकार्य और बाहर के कार्य दोनों प्रकार के कार्य-भार बढ़े हैं। कृषि संबंधी सभी कार्यों में महिलाएँ शामिल थीं, फिर भी कुछ पिछड़ी जातियों और अनुसूचित जाति संबंधी परिवारों में यह देखा गया कि पारिवारिक आमदनी में बढ़ोत्तरी होने से ये महिलाएँ घर से बाहर जाना बंद कर देती है किंतु ये प्रवृत्तियाँ केवल ऐसे परिवारों में देखी गयी जहाँ आर्थिक विकास, शिक्षा संबंधी उपलब्धियाँ और व्यावसायिक विभिन्नता संबंधी क्रियाओं की जड़े काफी मज़बूत थी और व्यापारीकरण से महिला श्रमिकों की सौदा-सामर्थ्यता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े हैं। यद्यपि इनके रोज़गार अवसरों में वृद्धि हुई हैं किंतु लागत वृद्धि द्वारा उनकी वास्तविक आमदनी काफी कम हो गई। वन कटाव, चारागाहों की समाप्ति, पीने के पानी में कमी आदि समस्याओं ने इनके कार्य बोझ को और अधिक बढ़ा दिया है। ऐसी स्थिति में लिंग आधारित मज़दूरी में भेदभाव जैसी नीतियों में काफ़ी तेजी से वृद्धि आई है। चूँकि कृषि संबंधी कुटुम्ब रोज़गार, कृषि निवेश ईंधन, चारा आदि की प्राप्ति में भूस्वामियों पर निर्भर करते हैं इसलिए महिला श्रमिकों को भी इन स्वामित्वों की शर्तों के अनुसार ही कार्य करना पड़ता है।

4.6.1 जनजातीय गाँव और अर्ध-विकसित गाँव

नयी प्रौद्योगिकी द्वारा जनजातीय गाँवों की उत्पादन व्यवस्था में किसी भी तरह का कोई भी परिवर्तन नहीं आया। ये गाँव न केवल आर्थिक रूप से पिछड़े रहें बल्कि अपेक्षाकृत कम स्तरित भी रहे है। बढ़ते वन कटाव, अर्थव्यवस्था में सीमित पहचान और कृषि में विद्यमान पिछड़ेपन द्वारा ग्रमीण महिलाओं के कार्य संबंधी बोझ इतने अधिक बढ़ गए कि वे मात्र परिवार को जीवित रहने संबंधी आवश्यकताओं को ही पूरा करने में जुट गई। चूँकि गाँवों में पिछड़ेपन के कारण रोज़गार अवसर पर्याप्त रूप से उपलब्ध नहीं है इसलिए अधिकांश परिवार जिनमें महिलाएँ भी शामिल हैं काम की तलाश में शहरी क्षेत्रों में नियमित रूप से जाने लगे या फिर वहीं जाकर बस गए। वे काम की तलाश में वन में भी भटकने लगे ताकि वनकार्य या वन उत्पादों द्वारा ही अपनी जीविका कमा सकें। आर्थिक सुरक्षा में महिलाओं की निम्न स्थिति द्वारा कार्य सहभागिता में इनकी छवि उभरने लगी। किंतु नियोजक, मध्यस्थ और वन ठेकेदार इनकी निम्न सौदा सार्म्यता को विभिन्न प्रकार से शोषित करने लगे। अर्ध-विकसित गाँवों में कृषि विकास का स्वरूप संयत था और इसके साथ-साथ पुरुष श्रमिकों की एक बड़ी संख्या के लिए संचार और परिवहन नेटवर्क के विस्तार द्वारा गैर-कृषि रोज़गारों के विभिन्न अवसर प्राप्त होने लगे जिसके परिणामस्वरूप अधिकांश श्रमिक या तो नियमित रूप से शहरों में जाने लगे या फिर अपने परिवारों से दूर इन शहरों में रहने लगे।

इस समस्या द्वारा कृषि में महिलाओं की कार्य सहभागिता बढ़ी। विस्तृत भूस्वामित्व संबंधी उच्च जाति वर्गों में आय में बढ़ोत्तरी के साथ-साथ महिलाओं का कार्यभार भी बढ़ने लगा जोकि व्यावहारिक रूप से दिखाई नहीं देता था। कृषि और जातियाँ श्रेणीबद्धता के निम्न और मध्यम स्तरों की महिलाओं द्वारा पारिवारिक श्रम की सहायता से अधिकांश कृषि परिचालन संबंधी कार्य पूरे किए जाने लगे। पारिवारिक कार्यों में अरिरिक्त उत्तरदायित्व, आश्रितों को देखभाल और सूखा-पीड़ित पशुओं की देखभाल जैसे कार्यों में भी महिलाएँ हाथ बटाँने लगी। कृषि और गैर-कृषि दोनों क्षेत्रों में महिला श्रमिकों के रोज़गार अवसर

बढ़ गए किंतु इनकी मज़दूरी दर किसी भी तरह से प्रभावित नहीं हुई। उनकी कठिनाइयाँ पहले से अधिक बढ़ गई जैसे ईंधन और चारा इकट्ठा करना और पीने का पानी दूर-दूर से भर कर लाना आदि। इनमें से कई तो नियोक्ताओं के हाथों की कठपुतली ही बन कर रह गई।

4.6.2 महिला उत्पीड़िन संबंधी उभरते पहलू

अध्ययनों द्वारा सिद्ध किया गया है कि उन्नत प्रौद्योगिकी की कृषि व्यापारीकरण द्वारा उत्पादन संगठन संबंधी परिवर्तनों को बढ़ावा तो मिला है किंतु इसके परिणामस्वरूप जाति और वर्गों के आर-पार महिलाओं के न केवल कार्य-भार बल्कि इनके उत्तरदायित्वों में भी काफी वृद्धि हुई और इन परिवर्तनों का न तो इनकी निजी आमदनी पर ही कोई प्रभाव पड़ा और न ही घर या बाहर निर्णय संबंधी मामलों में इनकी भागेदारी बढ़ी। परंपराओं पर आधारित इन व्यवस्थाओं में महिलाओं की स्थिति असमान और असम ही रही और विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में इनकी स्थिति उत्पीड़ित और निर्बल रही है। प्रत्येक गाँवों में 14 वर्ष से कम-आयु संबंधी समूहों लड़को की तुलना में लड़कियाँ कम देखने को मिली जो दर्शाता है कि इस समाज़ में बालिकाओं की उपेक्षा की जाती थी। यह प्रचलन विशेष रूप से उच्च कृषि संबंधी विकसित गाँवों और जनजातीय गाँवों में पाया जाता है। सभी गाँवों में शिशु मृत्युदर की तुलना में बालिका शिशु-मृत्युदर उच्च रही है। उच्च वर्गों में भी कृषि विकास और व्यावसायिक गतिशीलता के बावजूद भी बालिकाओं के प्रति व्यवहार में कोई सुधार नहीं आया। निम्न स्तरों में निर्धनता के कारण परिवार में लड़कों की तुलना में लड़कियों की उपेक्षा की जाती है। बाज़ारी शक्तियों के अतिरिक्त समाजिक संबंधों का व्यापारीकरण, शहरीकरण और उच्च जाति की नकल आदि कारणों से निम्न जातियों में बालिकाओं की स्थिति नकारात्मक रूप से प्रभावित होती है।

क्या आप जानते है?

गाँवो में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की साक्षरता दर निम्न होती है जिसमें विरत छात्राओं की उच्च दर भी शामिल होती है। यद्यपि कृषि विकसित और व्यावसायिक विविधीकरण वाले गाँवों में युवा पीढ़ी में साक्षरता की दर काफ़ी तेजी से बढ़ी है फिर भी इन गाँवों में लिंग संबंधी भेदभाव अभी भी काफ़ी अधिक है। कृषि विकास के साथ-साथ इन गाँवो के वर्गों में मुख्य रूप से निर्धनता के कारण विरत छात्रा की दर काफी उच्च होती है और विकसित गाँवो के उच्च स्तरों में बालिकाओं को पढ़ने से रोका जाता है ताकि कृषि संबंधी विकासात्मक कार्यों में वे घर में बढ़ती ज़रूरतों में अपना हाथ बटाएं।

बालिकाओं की अधूरी शिक्षा का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण है — दहेज। चूँकि यह आशा की जाती है कि सभी दृष्टिकोणों से कन्या की तुलना में वर की स्थिति अधिक उच्च हो। ऐसे मामलों में शिक्षित कन्या के लिए उच्च शिक्षित वर खोजने में एक बड़ी कीमत दहेज के रूप में देनी पड़ती है। इसलिए माता-पिता ऐसी परंपराओं से बचने के लिए बालिकाओं को उच्च शिक्षा देने के पक्ष में नहीं होते। कृषि विकास और व्यावसायिक गतिशीलता द्वारा प्रदान की गई भौतिक समृद्धि के भूस्वामित्व, भूमि पर नियंत्रण या भूमि तक पहुँच जैसी विकट समस्याओं के संदर्भ में लिंग भेदभाव काफ़ी तेजी से बढ़े हैं। महिलाओं का आधुनिक प्रौद्योगिकी और जीवन-संबंधी सुख सुविधाओं पर कोई नियंत्रण नहीं है जैसे कि ट्रैक्टर, पम्प सेट, साइकिल, मोटर साइकिल, रेडियो, टेलीविजन और टेलीफोन आदि सुविधाओं की प्राप्ति। उन्हें तो भूस्वामित्व और पशुधन केवल नाममात्र को ही प्राप्त होते हैं। जनजातीय गाँवों में महिलाओं की संपित्त पर पहुँच संबंधी अधिकारों का विस्तार अभी भी अपेक्षाकृत उच्च है किंतु उन्नत प्रौद्योगिकी को अपनाने के बावजूद भी उनकी उत्पीड़ित स्थिति ज्यों की त्यों है। इन जातियों में विवाह-योग्य आयु में वृद्धि तो हुई है किंतु फिर भी वे अपनी मर्जी से अपना वर-वधू तलाश नहीं कर

सकती जबकि इन जनजातीय गाँवों और निम्न जातियों में रीति-रिवाजों के अनुसार ही ब्याह किए जाते हैं। कृषि में विकास और व्यारीकरण के बढ़ते विस्तार के साथ-साथ ग्रामीण संस्कृति में दहेज भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसलिए इन स्थानों में वर-वधू की निजी पसंद पर ध्यान न देते हुए, मात-पिता अपनी लड़की की शादी छोटी आयु में ही करने पर विवश हो जाते हैं। चूँकि इन कृषि विकसित क्षेत्रों में दान-दहेज पर अधिक जोर दिया जाता है इसलिए माता-पिता छोटी आयु में ही अपनी कन्या का ब्याह कर देते हैं। किंतु इसकी तुलना में कृषि संबंधी पिछड़ी जनजातियों में ब्याह, अपेक्षित समान्य आयु में ही किए जाते हैं। इन गाँवों में दहेज ने अभी तक अभिशाप का रूप ग्रहण किया यहाँ विवाह का अर्थ जीवन भर साथ निभाना ही होता है। यहाँ अधिकतर विवाह या तो गाँवों के भीतर ही या आस-पास के गाँवों में सम्पन्न होते हैं।

4.7 सारांश

जहाँ कृषि संबंधी विकास द्वारा महिलाओं का कार्य-भार काफ़ी तेजी से बढ़ा है वहीं परिवार में निर्णय लेना जैसे कार्यों में उनकी सहभागिता केवल नाममात्र की ही बनी रही। किंतु इस सहभागिता का विस्तार भी उनेक कारणों से प्रभावित होता है जैसे कि आयु, जाति, महिला संबंधी नृजातीयता और संबंधित मुद्दों की प्रकृति। यद्यपि विकसित ग्रामीण क्षेत्रों में शादी-ब्याह के मामलों में घर की बुजुर्ग महिलाओं की राय सर्वोपरि होती है और बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के संदर्भ में शिक्षित महिलाओं की राय मानी जाती है किंतु भूस्वामित्व जैसे मुद्दों में उनकी सदैव उपेक्षा की जाती रही है। इसकी तुलना में सभी गाँवों में जनजातीय महिलाएँ अपनी परंपरागत शैलियों के अनुरूप घरेलू मामलों में जैसे कि शादी-ब्याह और संपत्ति आदि में निर्णय लेने में स्वतंत्र होती हैं।

राजनीति में भागीदारी-सामाजिक स्थिति का एक महत्त्वपूर्ण सूचक माना जाता है। अध्ययनों से पता चलता है कि राजनीतिक व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका काफ़ी निष्क्रिय होती है। ग्राम पंचायत की सदस्यता केवल गिनी-चुनी महिलाओं को ही प्राप्त होती है और महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता निर्वाचन व्यवस्था तक ही सीमित होती है जिसमें मुख्य रूप से वोट डालना और कभी-कभार राजनीतिक सम्मेलन या जलसों में भाग लेना जैसे कार्यों में शामिल किया जाता है। इनके द्वारा लिए गए राजनीतिक निर्णय स्वतंत्र नहीं होते बल्कि नियोजक, राजनीतिक दल संबंधी कार्यकर्ताओं या पुरुष नातेदारों द्वारा प्रभावित होते हैं। एक महत्त्वपूर्ण वर्ग का मानना है कि वोट डालने जैसे अधिकार में वे पूर्ण स्वतंत्र हैं जोकि सामाजिक बाधाओं के विरुद्ध आत्मसम्मान और आत्म-अभिव्यक्ति की प्रछन्न इच्छा शक्ति का सूचक है। इसकी तुलना में जनजातीय ग्रामीण क्षेत्रों में नियोजक-कर्मचारी संबंध अधिक गहरे नहीं होते जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं द्वारा लिए गए राजनीतिक निर्णय किसी भी राजनीतिक कार्यकर्ता, नातेदारों या संबंधित जाति के पुरुषों द्वारा अधिक प्रभावित नहीं होते जोकि महिलाओं की खाद्य शक्ति और स्वायत्तता को दर्शाती है। किंतु इस स्वायत्तता द्वारा उनकी दैनिकचर्या संबंधी शरीरिक कष्ट अप्रभावित रहते हैं। सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक विकास की व्यापक प्रक्रियाओं में महिलाओं का भाग्य, दुर्गति, कष्टदायक श्रम और न्यूनतम स्थिति तक ही सीमित रहा है।

4.8 शब्दावली

पहुँच	:	किसी व्यक्ति विशेष या वर्ग को उपलब्ध उपकरण।
सहयोग	:	नियमित वस्तु और समान लाभ की प्राप्ति में समान रूप से सहयोग प्रदान करना।
लिंग भेदभाव	:	महिला और पुरुषों के प्रति सामाजिक रूप से निर्मित विचारधाराएँ।

जातिगत : किसी प्रक्रिया या विचार के मूल कारण।
एच वाई वी : उच्च पैदावर किस्में जैसे कि हरित क्रांति में बीजों का प्रयोग।

4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

विभूति, पी, (1984), 'भारत में महिलाओं की कार्यस्थिति और रोजगार पर आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रभाव'। *महिला, प्रौद्योगिकी और उत्पादन* के विभिन्न स्वरूपों पर आयोजित कार्यशाला में लेख की प्रस्तुति, मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ डिवलपमेंट स्टडिस, मद्रास

एस ई डब्लू ए (1989), एस ई डब्लू एस् 1988, स्वनियोजित महिला संघ, अहमदाबाद।

संदर्भ

अग्रवाल, बीना (1996) 'दि जेंडर एंड इनवायर्नमेंट डिबेट - लेशनस फ्राम इंडियां', इन *साइटस फार चेंज - दि स्ट्रक्चरल कॉनटेक्ट फार इम्पावरिंग वूमेन इन इंडिया* (संपादित), एन राव, एल शेरप, आर सुदर्शन, इफ, ई, एंड यू एन डी पी.

डाइट्रिच जी (1983) 'वूमेन एंड हाउसहोल्ड लेबर, सोशल सांइटिस्ट। वाल्यूम 2, संख्या 2 कल्पगम, यू (1994) *लेबर एंड जेंडर - सरवाइवल इन अरबन इंडिया*, नई दिल्ली : सेज।

कृष्णराज, एम एंड वी पटेल (1981)। हाऊस वर्क एंड दि पॉलिटिकल इकॉनामी ऑफ वूमेनज लिबरेशन, पेपर प्रस्तुत किया - *फर्स्ट नेशनल कॉनफ्रेंस आन वूमेजन स्टीडिज*, बम्बई।

कुमार, आर (1994) ' फैक्ट्री लाइफ : वमून वर्कस इन दि बम्बई कॉटन टेक्सटाइल इंडस्ट्री 1919 - 1939' पेपर प्रस्तुत किया *सेकेंड नेशनल कॉफ्रेंस ऑन वूमेनज स्टडीज*, त्रिवद्रम।

मेनन, यू (1982) 'वूमेन एंड हाउसहोल्ड लेबर' *सोशल सांइटिस्ट*, वाल्यूम 10 से 7

मीज़, एम. (1982) *'दि लेस मेकर्स आफ नारसपुर : इंडियन हाउसवीवज प्रोड्यूस ऑर दि वर्ल्ड मार्किट*, लंदन : ज़ेड प्रेस

नक्सवासिस (एन सी एस डब्ल्यू एस आईएस) (1988) श्रमशक्ति रिर्पोट ऑफ दि नेशनल कमीशन ऑन सेल्फ-इम्पालइड वूमेन एंड वूमेन इन दि इनफोरमल सेक्टर) नई दिल्ली', भारत सरकार

राव, आर एंड हुसैन, एस (1987) "इनविजीबल हैंड्स : वूमेन इन होम बेसड प्रोडक्शन इन दि गारमेंट एक्सपोर्ट इंडस्ट्री इन दिल्ली', इन ए.एम सिंह एड ए. केल्सस-वीटानेन (सपा) *इनविजीबल हैंडस*, नई दिल्ली सेज

शर्मा, यू (1990) 'पब्लिक इम्पलॉयमेंट एंड प्राइवेट रिलेशन : वूमेन एंड वर्क इन इंडिया, इन एस. स्टीचर एंड पारपर्ट (संपादित) वूमेन, *इम्पालॉयमेंट एंड दि फेमिली इन दि इंटरनेशनल डिवीजन ऑफ* लेबर, लंदन : मैकमिलन।

खंड

2

महिलाएँ और उत्पादक संसाधन पहुँच, नियंत्रण और प्रबंधन

खंड परिचय : महिलाएँ और उत्पाद संसाधन : पहुँच, नियंत्रण और प्रबंधन	3
इकाई 5 महिलाओं पर आर्थिक विकास का प्रभाव	5
इकाई 6 श्रम विभाजन	15
इकाई 7 महिलाओं में गरीबी	28
इकाई 8 उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तन	40
इकाई 9 नियोजित आर्थिक विकास	55
संदर्भ	67

खंड परिचय

खंड 2, महिलाएं और उत्पादन के संसाधन : पहुंच, नियंत्रण और प्रबंध

इस खंड का उद्देश्य विकास का संगठन तथा महिलाओं पर उसके प्रभावों का अध्ययन करने के लिए सामाजिक परिप्रेक्ष्य प्रदान करना है। इस पाठ्यक्रम के पहले खंड में आपने महिलाओं और अर्थव्यवस्था के बीच संबंध के बारे में अध्ययन किया है। जो भूमि, प्राकृतिक संसाधनों, तकनीकी और श्रम आदि की प्राप्ति, नियंत्रण और प्रबंध की व्यवस्था से प्रकट होता है। यह खंड अपने पूर्व खंड का विस्तार है तथा यह मूलत: आर्थिक विकास का महिलाओं पर पड़ने वाले प्रभावों पर एक अंतरदृष्टि प्रदान करता है। इसका मुख्य उद्देश्य उत्पादन संगठनों का वर्णन तथा विश्लेषण करना है।

महिलाओं के लिए आर्थिक विकास के भावार्थ की इकाई पांच न केवल समाज में पुरुषों और महिलाओं के बीच शोषणात्मक संबंधों का वर्णन करती है अपितु आर्थिक विकास पर विभिन्न सामाजिक सांस्कृतिक प्रभावों के बारे में भी बताती है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप परिवार राज्य और निजी संपत्ति के बीच विद्यमान संबंधों का विश्लेषण कर सकेंगे। यह उच्च और मध्य स्तर के कृषक सामंतों की उस प्रवृत्ति की भी चर्चा करती है जिसके कारण उन्होंने महिलाओं को श्रम से बाहर कर लिया क्योंकि वे श्रेणी क्रम में ऊपर आ गए थे। इस प्रकार उर्ध्व गतिशीलता ने उनको पराधीन बना दिया।

श्रम विभाजन पर प्रस्तुत इकाई 6 एक तरफ श्रम विभाजन की उत्पत्ति आधारों का वर्णन करती हैं तो दूसरी तरफ श्रम विभाजन में पुरुष और महिलाओं के बीच विद्यमान लिंगीय विषमता का भी वर्णन करती है। इस प्रकार के श्रम विभाजन का महिलाओं की स्थिति पर कैसा प्रभाव पड़ता हैं या महिलाओं की आधीनस्थतों को स्थाई बनता है। महिलाएं और कार्य के अनुसंधानकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत विचार तथा कल्पनाएं कहां तक सही है। आगे उन तरीकों का विश्लेषण करने का भी प्रयास किया गया है जिनके द्वारा समग्र आर्थिक और सामाजिक ढांचे में होनेवाले परिवर्तनों में महिलाओं को कैसे शामिल किया गया है। इस तथ्य को कुछ मामलों के अध्ययन के माध्यम से उजागर किया गया है।

जैसा कि आप जानते हैं कि गरीबी और गरीब को पहचानने और परिभाषित करने की अनेक विचारधाराएं हैं। गरीबी का महिलाकरण पर इकाई 7 में गरीबी का महिलाकरण की संकल्पना और अध्ययनों के बारे में की गई व्याख्याओं से आप परिचित हैं। इसकी स्पष्ट प्रस्तुति के लिए हमने विभिन्न विचारधाराओं का उल्लेख किया है जो व्यापक रूप से व्यावहारिक एवं नीतिगत लिंगीय आवश्यकताओं का वर्णन करती हैं।

पुनरुत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तन पर इकाई में उत्पादन तकनीक में परिवर्तनों एंव समकालीन विश्व में लिंगीय विषयों पर उनके प्रभावों का अच्छे विचार व्यक्त किए गए है। महिलाओं की अर्थव्यवस्था पर विश्वव्यापी परिप्रेक्ष्य का वर्णन करने का भी प्रयास किया गया है। सामान्य स्वार्थों के लिए महिलाओं को एक समूह के समझना कहां तक ठीक है अंत में शिक्षा और लिंगीय व्यवस्था पर भी विचार प्रस्तुत किया गया है। आप देखेंगे कि केवल तकनीक तथा प्रशिक्षण प्राप्त करना ही लिंगीय विषमताओं को बदलने के लिए पर्याप्त नहीं है।

इस खंड की अंति इकाई योजनाबद्ध आर्थिक विकास से संबंधित है। यह आर्थिक विकास में आर्थिक तथा साथ ही गैर-आर्थिक घटकों के योगदान का वर्णन करती है। यह एक तरफ विकासशील देशों के संबंध में उत्थान नीयितों को स्पष्ट करती है तो दूसरी तरफ विकास के रूपों का। भारत में आर्थिक विकास के उद्देश्य और योजनाओं का भी विस्तृत वर्णन किया गया है।

इकाई 5 महिलाओं पर आर्थिक विकास का प्रभाव

रूपरेखा

5.0 लक्ष्य और उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 परिवार और राज्य
5.3 सामाजिक - सांस्कृतिक कारक, आर्थिक विकास और महिलाएं
5.4 आर्थिक विकास, ऊर्ध्वगामी गतिशीलता और महिलाएं
5.4.1 जाति, वर्ग और लिंग
5.5 लिंग, जाति और वर्ग: उच्च और मध्य स्तर
5.5.1 लिंग, जाति और वर्ग : निम्न स्तर
5.6 निम्न स्तर की महिलाएँ और पराश्रितता संबंध
5.6.1 जनजातीय महिलाएँ
5.7 महिलाओं को दरकिनार करना : कुछ उभरती हुई प्रवृत्तियाँ
5.8 सारांश
5.9 शब्दावली
5.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.0 लक्ष्य और उद्देश्य

तीसरी दुनिया में सामान्यतया और भारत में विशेषतया, विकास सम्बन्धी प्रारंभिक कार्य, विद्यमान संस्थात्मक संरचनाओं द्वारा किए जाते हैं। भारत, जाति और वर्ग पर आधारित, एक स्तरीकृत समाज है। चूँकि समाज की, विद्यमान संरचनात्मक व्यवस्था के अंतर्गत महिलाओं को निम्न सामाजिक स्तर दिया गया है, अत: विकासात्मक प्रक्रियाओं ने मानकीय व्यवस्था को लागू और मज़बूत करके, एक बार फिर से समाज में महिलाओं की स्थिति को दरकिनार कर दिया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- परिवार, राज्य और निजी संपत्ति के बीच संबंध की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- समाज में पुरुषों और महिलाओं के बीच असमान और अन्यायपूर्ण संबंधों की समझ सकेंगे;
- आर्थिक विकास और उत्थान तथा उसके महिलाओं पर पड़ने वाले प्रभाव के बीच संबंध का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- महिलाओं के संबंध में आधुनिकीकरण और आर्थिक विकास के प्रभाव का विश्लेषण कर सकेंगे

5.1 प्रस्तावना

भारत जैसे, एक स्तरीकृत समाज में, अधिकांश उत्पादनशील संसाधन जैसे कि, भूमि, पूंजी, प्रौद्योगिकी और ज्ञान, उच्च वर्ग और उच्च जाति के कुछ लोगों के हाथों तक ही संकेन्द्रित हैं। आर्थिक और सामाजिक शक्ति पर अपने नियंत्रण के फलस्वरूप वे लोग निर्णयन की प्रक्रियाओं को भी नियंत्रित कर लेते हैं। संसाधनों और राजनीतिक शक्ति पर उच्च जातियों के नियंत्रण के कारण, निम्न स्तर की महिलाएँ, निम्न जाति और समाज से बेदखल वर्ग से संबंधित होती हैं। पितृ सत्तात्मक विचारधारा द्वारा महिलाओं को दर किनार अलग-थलग किया जाता है।

इस प्रक्रिया की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

i) समाज में महिलाओं और पुरुषों के बीच असमान, भेदभावपूर्ण और अन्यायपूर्ण संबंध।

ii) महिलाओं के श्रम और पुनरुत्पादन, (reproduction) भूमिका का ह्रास।

iii) उत्पादनशील संसाधनों, ज्ञान और सूचना प्रणाली तक महिलाओं का न पहुँच पाना।

iv) स्वास्थ्य और शिक्षा संबंधी सुविधाओं तक कम पहुँच प्राप्त कर पाना।

v) स्वयं अपने ऊपर और शरीर के ऊपर नियंत्राण खोना।

vi) निर्णयन की प्रक्रिया में संभावना और महिलाओं को धीरे-धीरे शक्तिहीन करना।

5.2 परिवार और राज्य

अपनी प्रसिद्ध कृति **"ओरीजिन ऑफ फेमिली प्राइवेट प्रोपर्टी एंड स्टेट"** में कार्ल मार्क्स और एफ. एन्जल्स ने, महिलाओं पर, विकास के प्रभाव का मूल्यांकन किया है। उनके अनुसार, मानव समाज ने, जंगलीपन की अवस्था से असभ्यता और असभ्यता से सभ्यता की स्थिति की ओर उन्नति की। सभ्यता की अवस्था में पहुँचने के बाद उनके सामने निजी संपत्ति और परिवार की संकल्पना उभरी और निजी संपत्ति का यह उद्भव ही मानव समाज में महिलाओं के दमन का मूल कारण बना। धन दौलत में बढ़ोतरी ने सामाजिक संबंधों के नए नए समूह बनाए। संबंधों के इन नए समूहों के अंतर्गत महिलाओं को उनके पारंपरिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया। पूर्ववर्ती, साम्यवादपरक घरों में माता की अन्य लोगों के ऊपर सर्वोच्चता होती थी "वैसे ही जैसे कि एक जननी माता (natural mother) की विशिष्ट मान्यता"। इस समाज में महिलाओं को समाज में उच्च सम्मान भी दिया जाता था। वास्तव में तो प्राचीन सामाजिक गठन में महिलाओं को केवल स्वतंत्र ही नहीं बल्कि उच्च सम्मानजनक स्थिति भी प्राप्त थी।

विचार करें - 1

परिवार, राज्य और निजी संपत्ति के बीच क्या संबंध है? आपके विचार से, परिवार की संस्था के बिना, क्या निजी संपत्ति विद्यमान रह सकती है? अपने उत्तर की पुष्टि के लिए कारण बताइए और उन्हें लिखिए।

तथापि, जीवन की आर्थिक स्थितियों के विकास के एक विवाही विवाहों द्वारा युग्मन परिवारों (pairing families) (एक पुरुष और एक महिला) की शुरुआत और उन परिवारों द्वारा निजी धन-दौलत के कब्जे के परिणामस्वरूप महिलाओं की स्थिति और "मातृ - अधिकार" की संकल्पना बुरी तरह से प्रभावित हुई। युग्मित विवाह और युग्मित परिवार की प्रणाली द्वारा, जननी माता के पास पास, प्रमाणित जनक पिता को भी रखा गया। तथापि 'मातृ-अधिकार' के अनुसार बच्चे अपने पिता से उत्तराधिकार नहीं प्राप्त कर सकते थे। बच्चे मां के ही माने जाते थे और वे मां के जीन (Gens) ही प्राप्त करते थे। लेकिन फिर भी, जब एक पशुशाला के मालिक का देहांत हुआ तो उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकार, उसके भाइयों और बहनों और उसके भाई, बहनों के बच्चों को या उसकी माता की बहनों के वंशजों को मिला। एन्जिल के कथनानुसार, जैसे जैसे धन दौलत में वृद्धि हुई वैसे वैसे पुरुष को परिवार में स्त्री से अधिक महत्वपूर्ण स्थिति प्राप्त होने लगी। इसके कारण पुरुष को यह प्रेरणा मिली कि वह अपनी

मज़बूत स्थिति का प्रयोग करे ताकि उत्तराधिकार के उस पारंपरिक क्रम को अपने बच्चों के पक्ष में समाप्त कर सके। परंतु जब तक 'मातृ-अधिकार के अनुसार वंश का प्रचलन था, यह संभव नहीं था। अत: इसको समाप्त करना जरूरी था और अंत में यह समाप्त हो ही गया। मातृ अधिकार की समाप्ति, संसार में स्त्रीलिंग की एक ऐतिहासिक हार थी। पुरुष ने घर की बागडोर भी ज़ब्त कर ली, महिलाओं की स्थिति निम्न कर दी गई और वे पुरुष की वासना की गुलाम बन गई और बच्चों को पैदा करने व पालने पोसने का एक साधन बन कर रह गईं। (1976 : 232-33)

5.3 सामाजिक-सांस्कृतिक कारक, आर्थिक विकास और महिलाएँ

बृहत् आर्थिक राज्य व्यवस्था, क्योंकि सामान्यत: अभेदवादी घरेलू इकाइयों को मानती है अत: यह महिलाओं पर आर्थिक विकास के विषम प्रभाव के मुद्दों की उपेक्षा करती है। अनेकों विद्वानों ने इस धारणा को चुनौती दी है कि राज्यों द्वारा प्रायोजित विकास, लिंग संबंधी मुद्दों पर तटस्थ है। असलियत में तो, महिलाओं की स्थिति का वास्तविक निर्धारण तो केवल आर्थिक विकास के साथ साथ समाज में महिलाओं की भूमिका को शासित करने वाले सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारकों की जटिल परस्परक्रिया की जानकारी के माध्यम से उभर कर सामने आ सकता है।

5.4 आर्थिक विकास, ऊर्ध्वगामी गतिशीलता और महिलाएँ

यह माना जाता है कि आर्थिक विकास सामान्यत:, ऊर्ध्वगामी गतिशीलता के लिए रास्ता खोलता है। तथापि, क्या यह अवसर जनसंख्या के सभी वर्गों को एकसमान रूप से उपलब्ध होता है? कई अध्ययनों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि भारत में शुरू किए गए विकास कार्यों ने वर्ग असमानता को और ज्यादा बढ़ा दिया है और कई जगहों पर तो जाति के सोपानक्रम की पकड़ को और मज़बूत कर दिया है। इस विशिष्ट प्रक्रिया के अंतर्गत महिलाएँ, विशेष रूप से जाति और वर्ग सोपानक्रम के निम्न स्तर की महिलाएँ इस ऊर्ध्वगामी गतिशीलता के स्थान को प्राप्त करने की स्थिति में नहीं है। एम. एन श्रीनिवास ने यह संकेत दिया है कि विकास प्रक्रिया ने देश में, विविध जातियों और वर्गों में कुछ गतिशीलता प्रारंभ की है। तथापि, विभिन्न अवस्थाओं में, विभिन्न जाति समूहों को भिन्न भिन्न रूप से लाभ हुआ। शुरू में तो उच्च जातियां लाभान्वित हुई। बाद में, प्रभावी किसान जातियों और अन्य समूहों को, राजनीतिक शक्ति, शिक्षा और अफसरशाही में, प्रवेश प्राप्त करने में सफलता मिली। स्वतंत्र भारत की, संरक्षण भेदभाव की नीति से अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और समाज के अन्य क़मज़ोर वर्गों में गतिशीलता में बढ़त हुई। आर्थिक विकास और प्रौद्योगिकीय आधुनिकीकरण ने, कृषक समुदाय के लोगों के लिए गतिशीलता के अवसर बढ़ा दिए हैं। इसके अतिरिक्त, हरित क्रांति के फलस्वरूप भी, कृषक समाज के उच्च स्तर के लोगों में समृद्धि आई और वे शहरी मध्यम वर्ग की जीवन शैली की बराबरी करने लगे। तथापि यह प्रक्रिया सीमित ही है और समाज़ में धन संपत्ति का ध्रुवीकरण और अधिक बढ़ा हुआ ही दिखाई देता है।

क्या बाहरी कार्यकलाप को कम करने से महिलाओं के कार्य बोझ में कमी आएगी?
सौजन्य : सी.एस.आर., नई दिल्ली

क्या आप जानते हैं? - 1

श्रीनिवास के लिए भारतीय समाज में, गतिशीलता का वैधीकरण संस्कृतिकरण की प्रक्रिया द्वारा होता है। तथापि, जीवन शैली में परिवर्तन और संस्कृतिकरण के आश्रय द्वारा वैधीकरण ने, महिलाओं के जीवन पर अतिवादी प्रभाव डाले हैं। संस्कृतिकरण के कारण पति और पत्नी के बीच असमानता की भावना अब उन निम्न जातियों में भी शुरू हो गई है जहां पहले ये संबंध अधिकतर समानतावादी स्वरूप के ही होते थे।

संस्कृतिकरण के परिणाम के रूप में ऊर्ध्वगामी गतिशील जातियों ने अपनी महिलाओं को, दृश्यमान, शारीरिक, बाहरी गतिविधियों से हटा लिया। इसके कारण महिलाए घरों के अंदर कैद हो कर रह गईं। संस्कृतिकरण, पवित्रता और प्रदूषण के विचारों की संवेदनशीलता को बढ़ाता है और महिलाओं को पवित्रता का परिरक्षक कहा जाता है।

तथापि, सांस्कृतिक हिन्दुत्व में, महिलाओं के प्रति व्यवहार में द्विभाजन विद्यमान रहता है, पत्नी को एक ओर तो पति का नैतिक और धार्मिक अर्धांग माना जाता है और वहीं दूसरी ओर उसे अधीनस्थ साथी बना दिया गया है। पति को पत्नी का मालिक और देवता भी माना जाता है। पति भले ही शराबी, जुआरी या कंजूस हो या पत्नी की पिटाई करता हो फिर भी पत्नी का कर्तव्य है कि वह उसकी सेवा और आज्ञा-पालन करे।

5.4.1 जाति, वर्ग और लिंग

मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के आठ विभिन्न, फसल क्षेत्रों में सिंघारॉय (1995) द्वारा किए गए एक

महत्वपूर्ण अध्ययन द्वारा यह जानकारी प्राप्त हुई है कि ग्रामीण भारत में नई विकास कार्यनीतियों के परिणामस्वरूप विकास संबंधी प्रारंभिक कार्यक्रमों का विषम प्रभाव हुआ है। विकास संबंधी पहलुओं और नई कृषिक प्रौद्योगिकी ने क्षेत्रीय असंतुलनों की वृद्धि, वर्ग असमानता और लिंग भेदभाव को जारी रखने में योगदान किया है। महिलाओं को खासतौर से समाज के निम्न स्तर की महिलाओं को इन भेदभावों की निर्णायक अभिव्यक्ति का सामना करना पड़ा है। इससे प्रकट होता है कि राज्यों और उपज क्षेत्रों की सीमाओं के आरपार कुछ क्षेत्र खेती की आधुनिक प्रौद्योगिकी के उच्चतर प्रयोग और व्यापारिक फसल की खेती के अर्थों में, खेती की दृष्टि से विकसित हो कर उभरे हैं। कुछ क्षेत्र, आधुनिक प्रौद्योगिकी के आंशिक प्रयोग और आंशिक व्यापारिक फसल की खेती और व्यावसायिक विविधता के उच्च विस्तार के कारण अर्ध विकसित क्षेत्र के रूप में उभर कर सामने आए है। अधिकांश जनजातीय क्षेत्र, आधुनिक प्रौद्योगिकी और व्यापारिक फसल खेती के किसी भी प्रयोग के अभाव और निर्वाह खेती (Subsitence Crops) की प्रमुखता के कारण खेती की दृष्टि से और आर्थिक रूप से कृषि आधुनिकीकरण और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के कारण, विकसित और अर्ध-विकसित गांवों के स्तरीकरण की स्थिति तो उच्च हुई है परंतु जनजातीय ग्रामीण व्यक्तियों का स्तरीकरण कम ही रहा है। यद्यपि वे समजातीय नहीं है।

अनुभव से सीखें।

अपने क्षेत्र के ग्रामीण लोगों से बातचीत करिए और उनसे पूछिए कि प्रौद्योगिक निवेशों ने जाति, वर्ग और लिंग के सामाजिक संबंधों को किस हद तक परिवर्तित किया है। अपनी जानकारी को एक पुस्तिका में लिखिए। क्या उनसे प्राप्त जानकारी, इस इकाई में दी गई जानकारी की पुष्टि करती है?

तथापि, विविध क्षेत्रों की श्रम प्रक्रिया और सांस्कृतिक और भाषा संबंधी विभिन्नताओं के बावजूद, जाति और वर्ग द्वारा महिलाओं के उत्पीड़न के तरीके में कुछ आंतरिक समानताएं हैं। विकसित और अर्ध विकसित, दोनों ही प्रकार के गांवों की महिलाओं को, जोकि जाति और वर्ग सोपानक्रम के उच्च और मध्यम किसी भी स्तर की हों एक ही प्रकार के उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। विकसित गावों के निम्नतर स्तर की महिलाओं और जनजातीय गांवों की महिलाओं के बीच लिंग उत्पीड़न के मामले में एक सामान्यता पाई जाती है।

5.5 लिंग, जाति और वर्ग : उच्च और मध्य स्तर

कृषिक सोपानक्रमों के उच्च और मध्यम स्तरों में कृषक आधुनिकीकरण और आर्थिक विकास के साथ साथ, महिलाओं को स्पष्ट शारीरिक कृषक गतिविधियों से हटा लेने की प्रवृत्ति पाई जाती है जिसके कारण महिलाओं के स्तर पर गंभीर सामाजिक प्रभाव पड़े हैं। भारत में, सामान्यत:, कारबाहय शरीरिक कृषक गतिविधियों में महिलाओं की कार्य में भागीदारी को एक ऊर्ध्वमुखी गतिशील समुदाय के या समाज में किसी व्यक्ति विशेष के स्तर के लिए अप्रतिष्ठित और अपमानजनक समझा जाता है। श्रीनिवास के कथनानुसार, वेतन के लिए कार्य करना, निम्न स्तर का सूचक है और बड़े ज़मीदारों के घरों की महिलाएं वेतन के लिए काम नहीं करतीं। महिलाओं को उच्च स्तर, कारबाहय कार्य के साथ असंगत जान पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप ऊर्ध्वगामी गतिशीलता उन्हें घर में कैदी बना देती है। अत: कृषिक सोपानक्रम के निम्नतम स्तरों पर तो महिलाएं अंत: और बाहय दोनों प्रकार के कार्य करती हैं, लेकिन उच्चतम स्तर की महिलाएं ही कैदी बन कर रह जाती हैं। श्रीनिवास के अनुसार, इस सामाजिक गतिशीलता को संस्कृतिकरण द्वारा वैध बना दिया गया है जिसने महिलाओं के जीवन में नकारात्मक रूप से अतिक्रमण किया है। सांस्कृतिकरण की प्रक्रिया में महिलाएं, स्तर के फंदे में फंस कर रह गई हैं। (श्रीनिवास 1978:7)

विचार करें 2

ग्रामीण महिलाओं का जैसे जैसे स्तर ऊपर उठता है वैसे वैसे उनमें घरों के अंदर रहने की प्रवृत्ति देखी जाती है और वे अन्य क्षेत्रों जैसे खेती आदि का काम नहीं करतीं। इस व्यवहार के क्या कारण हैं? अपनी पुस्तिका में लिखिए।

सांस्कृतिकरण की प्रक्रिया ने हमारे समाज में महिलाओं की स्थिति को दरकिनार कर दिया है। वास्तव में, सांस्कृतिकरण की प्रक्रिया का पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रह है जिसमें महिलाओं के उत्पीड़न ने नया पहलू ग्रहण कर लिया है और यह विविध नए क्षेत्रों तक फैल गया है जिसकी जड़ें विद्यमान प्रणालियों में हैं और इसको सांस्कृतिक मानकों, मूल्यों, प्रथाओं और समाज की मानकीय व्यवस्थाओं द्वारा वैध बना दिया गया है।

सांस्कृतिकरण की प्रक्रिया, महिलाओं के व्यवहार, आंदोलन और कार्य में उनकी भागीदारी पर तो कई प्रतिबंध लागू करती है परंतु इसने परिवार और समाज में पुरुषों के अनियंत्रित प्राधिकार को स्पष्टतया और अप्रत्यक्ष रूप से मान्यता प्रदान की है। महिलाओं पर पितृ सत्तात्मक नियंत्रण का विस्तार, जोकि ऊर्ध्वगामी गतिशील घरों के उच्च और मध्यम स्तर में काफी सुदृढ़ है, महिलाओं पर शारीरिक हिंसा के रूप में भी दिखलाई देता है। उच्च जाति के पुरुष वर्ग में, समृद्धि और धनाढ्यता के कारण शराब पीने की आदत फैल गई है और यदि उनकी महिलाएं इस आदत के विरुद्ध आपत्ति करती हैं तो इसके फलस्वरूप उनकी पिटाई की जाती है। हाल ही के वर्षों में, शराबखोरी और पत्नी की मारपीट करने की प्रवृत्ति उच्च और मध्यम जातियों के बीच काफी फैल गई है। कभी कभी पत्नियों की इतनी पिटाई होती है कि उन्हें अस्पताल में भर्ती करना पड़ता है।

क्या आप जानते हैं 2

कृषक विकास ने उच्च जाति की महिलाओं के बारे में विशिष्ट धारणा को प्रबल किया है और इसको उन जाति समूहों के बीच सुदृढ़ किया है जो स्तर वृद्धि के संस्कृतिकृत मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं, जहां महिलाओं की निष्क्रियता, आज्ञाकारिता, सहनशक्ति और प्रतिबंधित क्रियाओं को उच्च मूल्य दिया जाता है। यह प्रक्रिया श्रम के लैंगिक विभाजक को भी सुदृढ़ करती है और लिंग भूमिका की रूढ़िबद्ध धारणा को प्रबल करती है जिसमें महिलाएं केवल उन पुनरुत्पादन क्रियाओं तक ही सीमित रह जाती हैं जिन्हें उच्च जातियों के मूल्य मानकों और प्रथाओं द्वारा पवित्र किया गया है। लिंग संबंधी यह अंतर जीवन के सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में बढ़ गया है और यह कई स्तर सूचकों में महिलाओं की निम्न स्थिति के रूप में स्वयं को दर्शाता है।

5.5.1 लिंग, जाति और वर्ग : निम्न स्तर

श्रम का लैंगिक विभाजन, जोकि खेती में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जाति संरचना द्वारा और अधिक प्रबलता प्राप्त कर लेता है। जाति द्वारा केवल व्यावसायिक सोपानक्रमों की ही रचना नहीं की जाती बल्कि कार्य के लैंगिक विभाजन के प्रतिमान भी बनाए जाते हैं। (किशन राज 1988-85-6)। जाति सोपानक्रम के निम्नतर स्तर की महिलाओं द्वारा किए जानेवाले कृषक कार्यों के प्रकारों को हीन और अप्रतिष्ठित माना जाता है क्योंकि ये कार्य अधिकतर शारीरिक होते हैं और हमारे समाज के अधिकांश हिस्सों में महिलाओं के उच्च स्तर की पारंपरिक संकल्पना के प्रति सकारात्मक होते हैं।

सभी प्रकार के गाँवों में, निम्न जाति की और जनजातीय महिलाएँ, कृषक सोपानक्रम के निम्न स्तर से संबंधित होती हैं। कृषक आधुनिकीकरण और आर्थिक विकास की प्रक्रिया ने हाल के वर्षों में ऐसे घर परिवारों की संख्या में बढ़ोतरी की है। इसके कुछ कारण नीचे दिए जा रहे है :

- ये परिवार या तो भूमिहीन हैं या अर्ध-भूमिहीन
- उनमें से अनेकों बटाईदार थे और उन्हें उनकी भूमि से बेदखल कर दिया गया था। इनमें से अनेकों को निर्धनता के कारण अपनी जोत गंवानी पड़ी थी।
- वे अपनी जोतों में आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग प्रारंभ नहीं कर सके थे।
- उनकी जनसंख्या में निरंतर बढ़ोतरी होती रही परंतु उसके अनुपात में उनकी कमाई के स्रोत में वृद्धि नहीं हुई।
- निरक्षरता और जानकारी के अभाव के कारण, वे लोग आय के वैकल्पिक स्रोतों के उभरते हुए अवसरों का उपयुक्त लाभ नहीं उठा सके।
- भूस्वामियों द्वारा उनके ऊपर थोपी गई, कार्य की शोषणकारी शर्तें और नियम।
- अपनी जीविका के लिए वे कृषि पर या तो श्रमिक, या काश्तकार, या बटाईदार या निर्वाह खेतिहर के रूप में पूरी तरह से निर्भर थे।
- लिंग आधारित, मज़दूरी में भेदभाव काफी व्यापक हो चुका था।
- वनोन्मूलन के अनियंत्रित प्रसार से उनकी जीविका और अधिक कठिन हो गई थी।
- पुरुष वर्ग में मदिरापान की आदत बढ़ रही थी

इस प्रकार इन गाँवों में विविध प्रकार के निर्भरता संबंध उभरे, जहां ग़रीब किसान, बटाईदार और कृषक मजदूर, कृषक सोपानक्रम के उच्च स्तर पर बहुत अधिक निर्भर थे। भूमि पर खेती की प्रौद्योगिकी के लिए, बटाईदार प्रणाली के अंतर्गत भूमि का एक टुकड़ा पाने के लिए, ईंधन और चारा पाने के लिए, खेती के उत्पादनों के विपणन के लिए, व्यक्तिगत ऋणों के लिए और बैंकों, ब्लॉक दफ्तर और थाना इत्यादि से औपचारिक संस्थागत सहायता प्राप्त करने के लिए वे लोग, बड़े भूस्वामियों पर निर्भर करते हैं। निर्भरता संबंधों का तात्कालिक प्रभाव, निम्नतर जातियों के अधिक निर्धन वर्गों के लिए हानिकर है।

5.6 निम्न स्तर की महिलाएँ और पराश्रितता संबंध

इन पराश्रितता संबंधों द्वारा, कृषक सोपानक्रम के निम्नतर स्तर की महिलाएं, सर्वाधिक प्रभावित हुई हैं। श्रम बाज़ार में सौदाकारी कर पाने की अपनी शक्ति को खो देने के बाद अब उन्हें बड़े भूस्वामियों द्वारा समय समय पर निश्चित की गई मज़दूरी दर को स्वीकार करना पड़ता है। बिना किसी निश्चित समय सारणी के उन्हें सुबह सबेरे से दिन छिपने तक कार्य करना पड़ता है। उन्हें किसी विशेष भूस्वामी के लिए काम करने के लिए बाध्य होना पड़ता है क्योंकि वे विविध प्रकार के ऋण लेने के लिए उस पर निर्भर होती हैं। उसी काम के लिए पुरुषों की तुलना में उन्हें कम मज़दूरी दी जाती है। विकास, इन महिलाओं के लिए केवल दुख तकलीफ ही लाया है। उनकी दशा और अधिक खराब हो गई है क्योंकि ईंधन और चारे को इकट्ठा कर पाना और अधिक मुश्किल हो गया है और इनको इकट्ठा करने में महिलाओं को ज्यादा समय लगाना पड़ता है। वनोन्मूलन और कृषक आधुनिकीकरण के कारण ये महिलाएँ, भूसंपत्तिवान उच्च जातियों पर निर्भर हो गई हैं। बढ़ती हुई निर्धनता, आर्थिक अनिश्चितता और निर्भरता के फलस्वरूप उनकी घरेलू ज़िम्मेदारियाँ भी बढ़ गई हैं।

5.6.1 जनजातीय महिलाएँ

कृषि संबंधी सतत् पिछड़ेपन, वनोन्मूलन और बाज़ार शक्तियों के प्रवेश के कारण महिलाओं के दुख

संताप और जीवन की कठिनता में और बढ़ोतरी हुई है। कृषि में सतत पिछड़ेपन और वन संसाधनों तक पहुंच न पाने की वजह से गांवों में उनके रोजगार के अवसर कम हो गए हैं। वनोन्मूलन ने इस प्रक्रिया को काफी हद तक प्रबल बनाया है। जहाँ पर शारीरिक गतिशीलता के रास्ते उपलब्ध हैं वहां बड़े पैमाने पर मौसमी प्रवास होता है। महिलाओं को रोजगार संबंधी असुरक्षा, निम्न वेतन, वेतन संबंधी भेदभाव और बेइमान बिचौलियों और ठेकेदारों द्वारा किए जाने वाले शोषण का सामना करना पड़ता है। गरीबी और आर्थिक अनिश्चितता का सामना करते करते उनका कुंठित पुरुष वर्ग, नियमित रूप से देसी शराब पीने लग जाता है और अपनी अल्प आय को समाप्त कर डालता है। ऐसी स्थिति में महिलाओं के ऊपर बच्चों के पालन-पोषण, घरेलू कार्य और जीविकोपार्जन की जिम्मेदारी आ जाती है।

खुद भूखी है – किंतु मातृत्व चल रहा है।
सौजन्य : प्रो० कपिल कुमार, इग्नू, नई दिल्ली

अनुभव से सीखें–2

विविध ग्रामीण और शहरी लोगों से बातचीत करके पता लगाइए कि महिलाओं के जीवन पर बाज़ार शक्तियों, आधुनिक संचार और वनोन्मूलन का क्या प्रभाव पड़ा है। अपनी जानकारी एक पुस्तिका में लिखिए।

बाज़ार शक्तियों और आधुनिक संचार एवं साथ ही साथ वनोन्मूलन ने भी अनेकों जनजातीय संस्थाओं को नष्ट कर दिया है जिससे महिलाओं की किस्मत और ज्यादा बिगड़ गयी है। उदाहरणार्थ, वनोन्मूलन और बढ़ती हुई गरीबी के परिणामस्वरूप, इन जनजातीय समाजों की अनेकों पारंपरिक संस्थाएं नष्ट हो रही हैं। समुदाय संरचना इस हद तक कमज़ोर पड़ गई है कि ये जनजातीय लोग, जंगल के ठेकेदारों, पुलिस, सरकारी अधिकारियों और अन्य एजेन्सियों के शोषण के आसानी से शिकार बन गए हैं। ऐसी

स्थितियों में महिलाओं को आर्थिक और शारीरिक, दोनों ही प्रकार के शोषण का सामना करना पड़ता है। जनजातीय महिलाओं में, गर्भपात और रतिरोग बढ़ रहे हैं।

पितृ सत्तात्मक विचारधारा ने जनजातीय ग्रामों में अभी जड़ें नहीं पकड़ी हैं और वहां की महिलाएं कुछ मामलों में अभी भी आज़ाद हैं। तथापि बढ़ती हुई निर्धनता और आर्थिक अनिश्चितता के कारण जनजातीय लोगों को अक्सर, शोषित और उत्पीड़ित होना पड़ता है। जनजातीय परिवारों में महिलाओं को महत्वपूर्ण प्राधिकार प्राप्त हैं लेकिन अनेकों बाह्य शक्तियों के प्रभाव के कारण उनका यह प्राधिकार अब नष्ट हो गया है।

5.7 महिलाओं को दरकिनार करना : कुछ उभरती हुई प्रवृत्तियाँ

यद्यपि अभिव्यक्ति के पहलू भिन्न भिन्न हैं, ग्रामीण महिलाएं, सभी जाति और वर्ग सोपानक्रमों में, सभी सामाजिक प्रक्रियाओं में, पार्श्व में धकेल दी गई हैं। सोपानक्रम के उच्च और मध्य स्तर की महिलाओं को पार्श्व में कर दिया जाना मुख्य रूप से निम्नलिखित रूप में परिलक्षित होता है — (क) कार्य में बढ़ोतरी और परिवार में उनके प्राधिकार में तदनुरूप वृद्धि न होना, (ख) संस्कृतिकरण द्वारा घरों में कैदी बन जाना, (ग) पितृसत्तात्मक मानकों और मूल्यों के अधीनस्थ होना, (घ) उनकी कार्य सहभागिता की 'अदृश्यता' में बढ़ोतरी।

निम्न जाति की महिलाओं के संबंध में यह दरकिनार स्थिति निम्नलिखित रूप में परिलक्षित होती हैं — (क) उनकी कार्य सहभागिता में आकस्मिकता (अनियमितता) की बढ़ती प्रवृत्ति, (ख) नौकरी संबंधी असुरक्षा, (ग) निम्न वेतन और लिंग पर आधारित, वेतन संबंधी भेदभाव, (घ) नियोक्ता के साथ उनके पराश्रितता संबंधों में बढ़ोतरी, (च) कार्य का कठिनतर हो जाना, ईंधन चारा और जल इकट्ठा करने के लिए अधिक समय लगाने की आवश्यकता, (छ) कार्य में वृद्धि, (ज) ऐसी पारंपरिक संस्थाओं, मानकों और मूल्यों का नष्ट होना जिनसे उन्हें उनके समाज में महत्वपूर्ण लैंगिक समानता सुनिश्चित थी। महत्वपूर्ण बात यह है कि सम्पूर्ण भारत में समाज की संरचनात्मक व्यवस्थाएं, ऐसी दरकिनार स्थिति और लिंग विभेद को जारी रखने में मदद करती हैं। आर्थिक विकास की प्रक्रिया में, जाति और वर्ग के समुदाय ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हमारे समाज में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शक्ति, जाति संरचना के साथ एक साथ चलती है। प्रौद्योगिक आधुनिकीकरण ने प्रमुख जातियों की शक्ति को सुदृढ़ करके इस प्रक्रिया को प्रबल किया है। जाति विचारधारा के माध्यम से यह पितृ सत्ता के आधार को मज़बूत करता है जिसके द्वारा महिलाओं को संपत्ति में केवल नाममात्र का हिस्सा मिलता है और निर्णयन की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी की नाममात्र की संभावना होती है और अपने हक के दावे या अभिव्यक्ति और शारीरिक गतिशीलता के लिए उन्हें थोड़ा ही अवसर मिल पाता है। प्रक्रिया में ऐसी महिलाओं ने, न केवल समाज के भौतिक आधार के ऊपर बल्कि अपने 'स्वयं' के ऊपर और अपने शरीर व दिमाग के ऊपर भी नियंत्रण खो दिया है। घरों के अंदर महिलाओं के कैद रहने और उनकी प्रतिबंधित सामाजिक गतिशीलता के फलस्वरूप, अपने समुदाय/जाति में वे पुरुष सदस्यों द्वारा शासित की जाती हैं। उनके पुनरुत्पादक व्यवहार को भी, व्यापक सामाजिक अपेक्षाओं द्वारा परिभाषित और निश्चित किया जाता है। समाजीकरण की प्रक्रिया, ऐसी अधीनस्थता और लिंग भूमिका की रूढ़िबद्धता को ही सुनिश्चित करती है। निम्न जातियों और वर्गों की महिलाओं को, उनकी जाति स्थिति और उनके द्वारा किए गए कार्य के संदर्भ में हीन ही समझा जाता है। लिंग आधारित, मज़दूरी भेदभाव, महिलाओं के ऊपर पित सत्ता के शासन को ही सुनिश्चित करता है। इस अधीनता के विरुद्ध अगर कोई आवाज उठाई जाती है तो उसे निर्ममता पूर्व दबा दिया जाता हैं सामाजिक नियंत्रण और वर्ग एकत्रीकरण की ऐसी प्रक्रिया,

जनसंख्या के एक बड़े वर्ग को शक्तिहीन बनाने और असमानता की प्रणाली के जारी और स्थायी रहने को ही सुनिश्चित करती है।

5.8 सारांश

ग्रामीण भारत में, कृषक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया द्वारा जनसंख्या का एक छोटा वह वर्ग लाभान्वित हुआ है जो गांवों में प्रभावशाली भूमिका निभाता हैं। इस वर्ग के लोग अपनी जाति की उच्चतर स्थिति के कारण निर्विवाद रूप से अपनी सामाजिक स्थिति का आनंद उठाते हैं। उनकी संचित धन संपत्ति और इस वर्ग के हित में प्रयुक्त राजनीतिक प्रभाव द्वारा जाति और लिंग पारंपरिक असमानता की विचारधारा ही प्रबल होती है। ऐसी स्थिति में, लिंगों के बीच के संबंधों में असमानता, भेदभाव और दमन की प्रवृत्ति पाई जाती है। लिंगों के बीच के संबंध केवल आदर्शवादी नहीं होते, वे उत्पादन अर्थात् महिलाओं के श्रम और पुनरुत्पादन संबंध (बच्चों के पालन पोषण और परिवार का अनुरक्षण) के द्वारा एक भौतिक आधार से अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं। उत्पादन और पुनरूत्पादन के ये संबंध महिलाओं के जीवन से जुड़े होते हैं और उन्हें एक निर्भरता की स्थिति में छोड़ देते हैं। इसके अतिरिक्त, "समाज की यांत्रिकता, समाजीकरण, रीति रिवाजों और प्रचलनों के माध्यम से भेदभाव और अधीनता को जारी रखती है।" (कृष्ण राज 1988:35)।

महिलाएँ कोई समजातीय वर्ग नहीं हैं। समाज के उच्च और मध्य वर्ग की समृद्धि और जीवन स्तर, बेदखल वर्गों के शोषण पर निर्भर करते हैं। अत: महिलाओं से संबंधित मुद्दों को, उत्पादन के सामाजिक संबंधों के प्रसंग में समझने की आवश्यकता है। विकास के संपूर्ण पूंजीवादी मार्ग ने, क्षेत्रीय असंतुलनों को उत्पन्न किया है, वर्ग असमानता को बढ़ाया है और श्रम के लैंगिक विभाजन और लिंग पृथक्करण की प्रक्रिया को मज़बूत किया है ज्यादा गरीब महिलाओं को तो दोहरे रुख से पीछे कर दिया है, पहला तो महिला होने के नाते और दूसरा गरीब वर्ग का सदस्य होने के नाते। उन्हें शिक्षा और आत्म-अभिव्यक्ति के लिए प्रशिक्षण के कोई अवसर नहीं मिलते। उत्पादक संसाधनों तक उनकी कोई भी पहुंच और नियंत्रण नहीं होता। पराश्रितता और शोषण के कारण उन्हें दुख भोगने पड़ते हैं। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे वर्तमान विकास कार्यनीति ने मज़बूत बना दिया है।

5.9 शब्दावली

स्वेच्छाचारी शासन **(Anarchy)** : निरंकुश शक्ति, स्वेच्छाचारिता या तानाशाही।

काराबाह्य **(Extramural)** : सवेतन रोजगार में सक्रिय भागीदारी कैद घरों के अंदर ही सीमित या बंद रहना

5.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

भारत सरकार (1988) : *महिलाओं के लिए राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना* : महिला और बाल विकास विभाग, नई दिल्ली द्वारा गठित कोर ग्रुप की रिपोर्ट।

जैन शारदा और अन्य (1986) : *महिला विकास कार्यक्रम : एक समीक्षा*, विकास अध्ययन संस्थान, जयपुर

इकाई 6 श्रम विभाजन

रूपरेखा

6.0 लक्ष्य और उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 महिलाएँ और कार्य
  6.2.1 पूंजी निवेश और महिलाएँ
6.3 महिलाओं को प्राप्त होने वाले लाभ
  6.3.1 महिलाएँ, राजनीति और धर्म
6.4 महिलाएँ और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन : भारतीय परिदृश्य
  6.4.1 महिलाएँ, परंपरा और आधुनिकता
  6.4.2 महिलाएँ, जाति और अधीनता
6.5 प्रभुत्व : पूर्वी अफ्रीका में महिलाएँ
  6.5.1 महिलाएँ और विषयगत यथार्थ
  6.5.2 विवाह और निर्भरता
  6.5.3 श्रम, महिलाएँ और साक्षरता
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.0 लक्ष्य और उद्देश्य

ऐतिहासिक रूप से वर्णन करें तो हम कह सकते हैं कि पिछले कई वर्षों से, पुरुषों और महिलाओं के बीच श्रम विभाजन में, लैंगिक असमानता विद्यमान रही है। यह संबंधित पक्षों के लिंग पर आधारित रही है। इस प्रकार अनेकों प्रारंभिक समाज जैसे शिकारी समाज और संग्रहण समाजों में, श्रम का विभाजन स्पष्ट था। यह पुरुषों का काम था कि व रसोई में पकाने के लिए पशुओं का शिकार करके लाएँ। दूसरी और यह महिलाओं का काम था कि वे जड़ी-बूटियाँ इकट्ठी करके लाएँ जिन्हें परिवार के सदस्य खा सकें और पालतू पशुओं को चारे के रूप में दिया जा सके। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- श्रम विभाजन क उद्‌भव और आधार का विश्लेषण कर सकेंगे और बता सकेंगे कि यह महिलाओं की अधीनता को दर्शाता है या नहीं;
- महिलाएँ द्वारा करे गए कार्यों के संबंध में जो धारणाएँ और भ्रात धारणाएँ व्याप्त हैं उनको समझ सकेंगे;
- ऐसे, विभिन्न केस अध्ययनों का वर्णन कर सकेंगे जो महिलाओं की कार्य स्थितियों पर प्रौद्योगिकी के प्रभाव पर प्रकाश डालते है; और
- यह स्पष्ट कर सकेंगे कि लिंग असमानताएँ अक्सर प्रतीकात्मक प्रणालियों द्वारा कैसे नियंत्रित होती हैं।

6.1 प्रस्तावना

हमने अभी अभी यह बताया है कि श्रम का लैंगिक विभाजन, पुरुषों के प्रभुत्व और महिलाओं की

अधीनता की ओर उन्मुख है। यह तर्क पेश किया जाता है कि महिलाएँ कमज़ोर प्राणी है और इसलिए यह दावा किया जाता है कि श्रम के विभाजन की जड़ें जीव-विज्ञान मे ही जमी हैं। यहाँ पर यह बता कर कि पुरुष प्रभुत्व/महिला अधीनता का जीव-वैज्ञानिक सिद्धांत ठीक नहीं है, इस बात का खंडन किया गया है। अपनी इस इकाई में हम ऐसी ही कुछ सैद्धांतिक बातों की जाँच करेंगे और महिलाओं और कार्य के प्रश्न को भी उठायेंगे। इस जाँच पड़ताल का एक हिस्सा उस "पारिश्रमिक" से भी संबंधित है जो महिलाओं को उनके कार्य के लिए मिलता है। इसके अतिरिक्त हम उन तरीकों का भी विशेषण करेंगे जिनके द्वारा महिलाओं ने संपूर्ण आर्थिक और सामाजिक ताने-बाने में परिवर्तन लाने का प्रयास किया है। इसके पश्चात् हम भारतीय मामलों पर विचार करेंगे और देखेंगे कि इससे हमको क्या अंत: ज्ञान प्राप्त होता है।

दूसरा मामला हमने पूर्वी अफ्रीकी महिलाओं का लिया है। यहाँ हम यह देखेंगे कि समाजीकरण के प्रारंभिक प्रतिमानों ने एक लैंगिक अपेक्षा की रचना कैसे की और उससे कुछ, कार्य प्रतिमान कैसे उभर कर आए। पूर्वी अफ्रीका के मामले में यह जानना भी बड़ा दिलचस्प है कि महिला/पुरुषों से संबंधित रूढ़िगत धारणाएँ कैसे टूटीं। हम कुछ ऐसी परिणामवादी स्थितियों पर भी प्रकाश डालेंगे जो लैंगिक अपेक्षाओं पर आधारित हैं और जो स्पष्टत: पुरुषों के पक्ष में पूर्वाग्रह ग्रस्त हैं। तथापि इन पूर्वी अफ्रीकी मामलों में ऐसे विषय भी मिलते हैं जिनके द्वारा हम इस अत्यंत विषम स्थिति में, संतुलन बनाने के बारे में प्रश्न उठा सकते हैं। यहाँ विभिन्न प्रकार की ऐसी महिलाओं के बारे में जानकारी देने का प्रयास किया जाएगा जो परिवर्तन के मूलाधार बनाने में शामिल है। हम नियोजित परिवर्तन की धारणा के बारे में भी कुछ जानकारी देंगे। इस प्रकार इस इकाई में हम, श्रम के लैंगिक विभाजन के बारे में मूल्यावन जानकारी देने से संबंधित पर्याप्त क्षत्रों को शामिल करेंगे।

6.2 महिलाएँ और कार्य

यह महसूस किया जा रहा है कि महिलाओं और कार्य से संबंधित जो विचार अनुसंधानकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत किया गया है वह सही नहीं है (मजूमदार और शर्मा; 1990)। अत: यह लगता है कि समाजीकरण के पहलू पर तो बहुत अधिक बल दिया गया है और जहाँ तक घरेलू संगठन का संबंध है, इस प्रश्न के शक्ति संबंधी आयामों पर बहुत कम जोर दिया गया है। ऐसा सोचने की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है कि एक बड़ी संख्या में महिलाएँ घरेलू कार्य में संलग्न हैं जिसे काम नहीं माना जाता बल्कि इसे अनुत्पादशील समझा जाता है, क्योंकि इसके द्वारा प्रत्यक्षत: कोई पारिश्रमिक नहीं प्राप्त होता। इसके अलावा यह भी देखा जाता है कि जब महिलाएँ आर्थिक और 'उत्पादनशील' कार्यक्षेत्र में प्रविष्ट हो जाती हैं तब भी उन्हें ऐसी ही नौकरिया दी जाती हैं जो निम्न कौशल, निम्न आय और निम्न स्तर की होती है। ऐसा इस धारणा के कारण किया जाता है कि महिलाओं में उच्च कौशल वाली नौकरियों के लिए अपेक्षित कुशलता नहीं होती। हमें इस धारणा को बदलना होगा। बोसरप द्वारा किए गए अध्ययन ने गइराई तक जड़ें जमाई हुई इस धारणा को स्पष्टत: चुनौती दी है कि पुरुष ही वास्तविक कार्यकर्ता हैं जो अपने घर परिवारों के लिए भोजन और सुरक्षा जुटाते हैं और महिलाएँ तो घर पर ही काम करती हैं।

विचार करें 1

क्या आप ऐसा सोचते हैं कि पुरुष ही हमेशा जीविकोपार्जन करते हैं और महिलाएं आर्थिक रूप से किसी भी तरह योगदान नहीं करती? अपने उत्तर को कागज की एक शीट पर लिखें।

बोसरप द्वारा किए गए अध्ययन को आगे चल कर अन्य लोगों ने भी प्रमाणित किया है। उन्होंने बताया कि महिलाओं की बुद्धिमत्ता और अंतदृष्टि समूचे आर्थिक क्षेत्र में व्याप्त है और महिलाएँ अपने अवलोकन द्वारा और सलाहें दे कर निर्माण और कृषि के क्षेत्रों में भी सक्रिय है। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट ही है कि भारत में तो खास तौर से, सभी वर्गों और जातियों की महिलाएँ सवेतन श्रमिक के रूप में भी काम करतीं हैं। यह तो पूर्वाग्रह ग्रस्त मानसिकता है, जो महिलाओं के कार्य में योगदान की वास्तविकता को नकारती है। ऐसे परिदृश्य ऐसी तस्वीर पेश करने का प्रयास करते हैं जिससे में महिलाएँ पुरुषों पर आश्रित हैं। ये महिलाओं की सही तस्वीर नहीं प्रस्तुत करते अर्थात् वे ये नहीं बताना चाहते कि महिलाएँ संयुक्त आर्थिक उद्यमों में, सह-कार्यकर्ता हैं। हर कोई ऐसा नहीं सोचता पर अधिकांश लोगों के विचार ऐसे ही हैं। यह मिथ्या वर्णन, संरचनात्मक स्थितियों जैसे कि संस्थाओं और कानूनी क्षेत्रों के द्वारा भी किया जाता है।

कृषि में हुए संरचनात्मक रूपांतरणों से यह दिखाई देता है कि महिलाओं के भूमि संबंधी अधिकार की जड़ें काटी गई हैं। इसके कारण घर में काम करने के, या पुरुषों के साथ समान भागीदारों के रूप में या सह-कार्यकर्ताओं के रूप में काम करने के अवसरों में कमी आई है। निर्धन परिवारों की महिलाएँ खेतों में, निर्माण स्थलों में एवं खानों और औद्योगिक स्थलों पर काम करती हैं। यह देखा गया है कि इन क्षेत्रों में उनसे कठिन और निम्न आय वाले काम करवाए जाते हैं।

अपने अनुभव से सीखें –1

ऐसी महिलाओं और पुरुषों से बातचीत करिए जो अनियत श्रमिक के रूप में नियोजित हैं और उनसे पूछिए कि क्या वे ऐसा सोचते हैं कि पति और पत्नी सह-कार्यकर्ता हैं। उनके उत्तरों के आधार पर एक संक्षिप्त रिपोर्ट बनाइए।

दूसरी ओर, कृषिक सम्पन्नता द्वारा श्रम के विभाजन में उलटी स्थिति पैदा हो जाती है जहाँ महिलाओं को काम से हटा लिया जाता है। इसके कारण धर्म और कर्मकांड के व्यवहार जिनमें विवाह और अन्य प्रचलन शामिल है, प्रभावित होते हैं।

6.2.1 पूँजी निवेश और महिलाएँ

अर्थव्यवस्था में, बढ़ते पूंजी निवेश के कारण भी कार्य की स्थितियों में असमानता आती है जिसमें पुरुष महिलाओं की अपेक्षा काफी अधिक लाभान्वित होते हैं। पुरुष तो कुशल या अर्ध-कुशल व्यक्ति के रूप में काम करते हैं और महिलाओं को उद्योगों में काम करना पड़ता है और इसके साथ-साथ घर की देखभाल और पुनर्उत्पादन चक्र की जिम्मेदारी भी संभालनी पड़ती है। वे घाटे में ही रहती हैं, खास तौर से तब जब उन्हें 'गृहणी' कहा जाता है। एकदम शुरू से ही महिलाओं पर लगाये गये ऐसे ठप्पे उनके लिए लैंगिक अवरोध बना देते हैं जिन्हें तोड़ डालना बहुत कठिन है। इसी के कारण, बच्चे को जन्म देने के बाद के समय में और माहवारी चक्र के दौरान महिलाओं को समाज से अलग रखने की प्रथा है। भारत में तो यह प्रथा बहुत प्रचलित है।

दक्षिण-एशिया के देशों में, श्रम गहन बहुराष्ट्रीय उद्योग महिलाओं को नियोजित करते हैं परंतु बाज़ार में जब जब उनकी वस्तुओं के व्यापार में घट-बढ़ होती है वे महिलाओं को तब-तब निकाल बाहर करते हैं। वैसे भी महिलाएँ अपने अधिकारों के लिए लड़ाई करने की स्थिति में नहीं होतीं। यही नहीं बल्कि नियोजक महिला कार्यकर्ताओं को अपने नियंत्रण के अधीन रखने के लिए परिवार के प्राधिकरण या

स्थानीय शासन का भी प्रयोग करते हैं। इस प्रकार, पितृसत्तात्मक नियंत्रण से मिली अल्पकालिक मुक्ति महिलाओं के लिए अब नियंत्रण का एक दूसरा रूप ले लेती है। अब यह नियंत्रण उस नियोजक द्वारा किया जाता है जो ग्रामीण महिलाओं का शोषण करने में काफ़ी निपुण होता है, वह उन्हें कम वेतन देता है और यदि उसे महिलाओं की ओर से विद्रोह का कोई भी चिह्न दिखाई देता है तो वह परिवार या स्थानीय शासन से अपील कर देता है।

6.3 महिलाओं को प्राप्त होने वाले लाभ

यह बड़े अचरज की बात दिखाई देती है कि किसी देश में जब पूंजी निवेश में बढ़त होती है तो लैंगिक विभेद प्रबल हो जाता है और इसके कारण असमानता में बढ़ोत्तरी हो जाती है। ऐसा इसलिए होता है कि नौकरियां प्राप्त होने के अवसरों में कमी हो जाती है और अकुशल श्रमिकों की आवश्यकता कम हो जाती है अत: महिलाओं के लिए रोज़गार में भी कमी आ जाती है। इस स्थिति का प्रभाव उन परिवारों पर विशेष रूप से पड़ता है जिसकी मुखिया कोई महिला है। गरीब परिवारों की महिलाएँ और बच्चे सबसे ज्यादा प्रभावित होते हैं। स्वास्थ्य संबंधी देखभाल उनको आसानी से सुलभ नहीं होती और उन्हें प्राय: अतिरिक्त कार्य करना पड़ता है। स्कूल की पढ़ाई बीच में ही छोड़ देने वाले बच्चों में लड़कियों की संख्या सबसे अधिक है। इस सबका, श्रम के विभाजन पर स्पष्ट रूप से प्रभाव पड़ता है, क्योंकि इन स्थितियों के अंतर्गत यह संभव नहीं है कि सम्मान के साथ काम किया जा सके। ऐसा क्यों हो रहा है इसके अनेकों स्पष्टीकरण दिए जाते हैं जो निम्नलिखित हैं:

i) जनसंख्या का दबाव
ii) आर्थिक अवसंरचना में थोड़ी मात्रा में निवेश
iii) ग्रामीण क्षेत्रों की उपेक्षा
iv) बढ़ती हुई वर्ग असमानता

तथापि यह कहा जाता है कि ये कारक, बढ़ते हुए लैंगिक अंतर के लिए वास्तव में उत्तरदायी नहीं हो सकते — अत: यह महिलाओं की अधीनस्थ स्थिति ही है जो महत्वपूर्ण संसाधनों तक उनकी पहुंच के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती है। इस संबंध में की जाने वाली बहस, संरचनात्मक समस्याओं बनाम आधारभूत वास्तविकताओं के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। कुछ विद्वान, महिलाओं के प्रतिक्रिया न करने, उनमें प्रेरणात्मक शक्ति की कमी आदि को उत्तरदायी मानते हैं। तथापि, बुनियादी स्तर पर हम पाते हैं कि महिलाओं की घर के प्रति जिम्मेदारी एक सत्य है और अक्सर वे अपने परिवार के लिए भोजन तक नहीं जुटा पातीं। सामान्य आर्थिक विकास के बावजूद यह स्थिति विद्यमान हैं।

6.3.1 महिलाएँ, राजनीति और धर्म

राजनीतिक विशिष्ट वर्ग और धार्मिक रूपों की यह प्रवृत्ति देखने में आती है कि वे महिलाओं की अधीनता का प्रचार करके उनके द्वारा की गई पहलों को दबा देते हैं। ऐसी संचनाओं को, महिलाओं की सापेक्ष मीडिया प्रतिभा बनाकर और अधिक मजबूत बना दिया जाता है। इस प्रकार, व्यावसायिक विज्ञापनों की दुनियां हमें यह विश्वास दिलाना चाहती है कि महिलाएँ केवल उपयोगी वस्तु या बिगड़ी हुई छोकरियां हैं — और वे नेतृत्व के योग्य नहीं हैं और पुरुषों के आर्थिक प्रयत्नों में वे उनके साथ भागीदारी के काबिल नहीं हैं। मुख्यधारा सिनेमा भी " बेकार गुड़िया" की इस घिसीपिटी धारणा को कायम रखता है। आर्थिक विकास में हम जब महिलाओं की भूमिका का अध्ययन करते हैं तो हमें पता चलता है कि इस संबंध में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हैं। जैसा कि मजूमदार ने बताया है कि जब बृहद-आर्थिक

समाज-आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन की शक्तियां क्रियाशील होती हैं तब वे पितृसत्तात्मक नियंत्रण द्वारा अपनी ताकत का प्रयोग करके स्थिति के ऊपर नियंत्रण प्राप्त करने की कोशिश करती हैं। इसलिए समाज-आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन, परंपरागत साधनों द्वारा नियंत्रित किए जाने से कहीं अधिक हैं और सबसे प्रभावशाली तरीका है पितृसत्तात्मक पुन: प्रचलन द्वारा नियंत्रण करना।

ग्रामीण महिलाएँ अधिक आर्थिक भूमिका के लिए संगठित होती है।
सौजन्य : आशा मिश्रा, भोपाल

क्या आप जानते हैं -1

समाज-आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों से निपटने का एक तरीका और है। इसमें, प्रमुख समूह या वर्ग, परिवर्तन की बाहय शक्तियों के साथ भागीदारी नहीं करते। इसके द्वारा, ऐसे परिवर्तनों से, होने वाले संपूर्ण लाभों को यथार्थ में नियंत्रित कर लिया जाता है। परिवर्तनों से महिलाओं को भी लाभ होता है। परंतु ऐसे महिलाओं की संख्या अल्प ही रहती है। फिर भी पितृसत्ता अडिग खड़ी हुई है यद्यपि यह थोड़ी से हिल गई है।

महिलाएँ और सामाजिक आर्थिक परिवर्तन: भारतीय परिदृश्य

महिलाओं की हिंसा से सुरक्षा करने वाले परंपरागत मानक भी अब अदृश्य होने लगे हैं। तलाक की दर बढ़ रही है और महिलाओं को घरों की कैद में, जोकि "उनकी सही जगह" है वापस धकेलने के लिए विचारधाराएँ उठ रहीं हैं। इसके अलावा, पितृसत्ता और राजनीति के हाथों में धार्मिक पुनरुत्थानवाद एक महत्त्वपूर्ण हथियार के रूप में रहता है जिसके द्वारा महिलाओं के ऊपर नियंत्रण को कसा जाता है। इस

प्रकार पितृसत्ता नया रूप धारण कर लेती है। विभिन्न धार्मिक समूहों द्वारा, महिलाओं को घरेलू दायरे तक ही सीमित रखने की जोरदार मांग और सती प्रथा पुनरुत्थान संबंधी माँगों द्वारा यह सिद्ध हो जाता है। इन सभी विकासों से यह प्रमाणित हो जाता है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया ने, महिलाओं के ऊपर पितृसत्तात्मक नियंत्रण को समाप्त नहीं किया है।

6.4 महिलाएँ और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन : भारतीय परिदृश्य

आर्थिक परितर्वन में महिलाओं ने जो योगदान किया है उसको आंशिक रूप से ही प्रलेखित किया गया है भी और उनकी सफलता की कुछ भी कहानियाँ भी लिखी गई हैं। इनसे पता चलता है कि महिलाएँ अच्छी और सफल उद्यमी साबित हो सकती हैं और वे सामूहिक संगठन चला सकती हैं। किसान आंदोलनों पर किए गए अध्ययनों से ज्ञात होता है कि औपनिवशिक युग में महिलाओं ने इन आंदोलनों में भाग लिया था।

कुछ अध्ययनों के अनुसार, पाषाणपूर्व युग के 'प्रारंभिक' समाजों में जोकि भोजन संग्रहण पर ही जीवित रहते थे, महिलाएँ ही खाद्य पदार्थ संग्रहित करतीं थीं और वे ही थोड़े से अतिरिक्त भोजन के प्रयोग को नियंत्रित करतीं थीं। इस प्रबंधकीय कार्य का जिम्मा, पितृसत्ता और परिवार के मुखिया द्वारा तो बहुत बाद में जाकर लिया गया।

चारा संग्रहित करना और ईंधन लकड़ी और डोरी इकट्ठा करना आज भी महिलाओं का ही काम है। यह तथ्य समाजशास्त्र के क्षेत्र कार्यकर्ताओं को भलीभांति ज्ञात था परंतु पूरे विश्व की जानकारी में यह बात उत्तराखंड के चिपको आंदोलन के साथ ही आई। इस आंदोलन में महिलाओं ने वनोन्मूलन का विरोध किया। इसके लिए वे जा कर पेड़ों से चिपक जातीं थी और किसी भी व्यक्ति या ठेकेदार को उन पेड़ों को काटने की अनुमति नहीं देती थीं। महिलाओं और वनों के बीच एक स्पस्ट संबंध है (भोजन और ईंधन के लिए) और महिलाएँ इस बारे में पूरी सजग हैं कि किस दर पर और किन तरीकों से इन्हें जोड़ा जा सकता है।

कुछ लोगों द्वारा महिलओं को अग्रणी खेतिहर माना जाता है। झूम खेती में महिलाएँ अभी भी अग्रणी हैं। वस्तुत: तो ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जहाँ महिलाओं में हाथ से कुछ विशेष पौधों को उपजाने का महान कौशल दिखाई पड़ता है। यह बात कई पीढ़ियों के कौशल निर्माण से ही संभव हो सकती हैं। महिलाएँ हस्तशिल्प, कपड़ा और मिट्टी के बर्तन बनाने में भी बहुत सक्रिय रहीं हैं। औद्योगीकरण के साथ-साथ उत्पादन की क्रिया कारखानों में स्थानंतरित हो गई और शिल्पकारी संबंधी गतिविधियाँ रूक गईं।

अपने अनुभव से सीखें -2

किसी पास के गाव में जाइए और वहाँ की महिलाओं से पूछिए कि रोपण, प्रतिरोपण और कृषिक बीजों के प्रतिपालन में उनकी क्या भूमिका है। अपनी अभ्यास पुस्तिका में संक्षिप्त नोट लिखिए।

6.4.1 महिलाएँ, परंपरा और आधुनिकता

उपनिवेशवाद के अलावा वे अन्य कारक कौन से हैं जिनके कारण इस क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता

में कमी आई? इस बारे में दो विचारधाराएँ हैं। पहली विचारधारा यह है कि प्रौद्योगिकीय प्रगति के कारण बुनाई की वर्तमान प्रौद्योगिकी पुरानी हो गई है। चरखे के लिए बहुत कम निवेश की आवश्यकता होती थी। प्रौद्योगिकी प्रगति के बावजूद महिलाएँ प्रौद्योगिकी की पुरानी किस्मों का ही प्रयोग करतीं थीं। नई प्रौद्योगिकी इस समय बहुत महंगी है।

दूसरा कारण रेशम उत्पादन के मामले में सामने आता है। महिलाएँ रेशम उत्पादकों की मुख्य भूमिका से हट कर केवल कृषि पालन में लग गईं। कृषि पालन के अलावा रेशम उत्पादन का पूरा काम पुरुषों द्वारा अपने कब्ज़े में ले लिया गया। भारतीय महिलाओं का यही हाल कपास और जूट के निर्माण के क्षेत्रों में हुआ। वहाँ लंकाशायर की मिलों के दबाव के कारण महिला श्रमिकों की संख्या में स्पष्ट रूप से कमी आई। उनकी संख्या में ही कटौती ही नहीं हुई बल्कि उनका निष्कासन भी किया गया। कृषि के मामले में हम देखते हैं कि भूमि का प्रारंभ में जो सामुदायिक स्वामित्व हुआ करता था अब उसकी जगह विभिन्न लोगों का जैसे कि पुजारी और राजाओं आदि का व्यक्तिगत स्वामित्व होने लगा। कृषक महिला और पुरुषों को जबर्दस्ती श्रमिक बना दिया गया। इस प्रकार श्रम का यह लैंगिक विभाजन उन विभिन्न सामंतवादी नेताओं को नियंत्रित करने का यंत्र बन गया जो इन स्थितियों से उत्पन्न हुए सामाजिक सोपान क्रमों को जारी रखने के प्रयास में लगे थे।

क्या श्रम का लिंगीय विभाजन सदैव रहेगा?
सौजन्य : सी डब्ल्यू.डी.एस., नई दिल्ली

विचार करें -2

क्या कृषिक उत्पादन के लिए प्रौद्योगिकी सदैव ही वरदान सिद्ध होती है? क्या यह कार्य भार में कमी लाती है या केवल ग्रामीण महिलाओं को दरकिनार करती है? अपने उत्तर को एक पुस्तिका में लिखिए।

वर्ग विभेद ने शिल्पकारों और किसानों के बीच भी उर्ध्वमुखी और अधोमुखी गतिशीलता बनाई। इसके कारण शासक वर्ग की विचारधारा और पितृसत्तात्मक मानकों के प्रसार में बढ़ोत्तरी हुई। इसके अलावा यह भी देखने में आता है कि गरीबी और ऋणग्रस्तता के कारण महिलाएँ परवशता के अधीन हो गई हैं। इसके अलावा यह समस्या भी रहती है कि महिलाओं का उनके नियाजकों के द्वारा बलात् यौन शोषण किए जाने का खतरा सदैव बना रहता है।

6.4.2 महिलाएँ जाति और अधीनता

संस्कृतीकरण के सिद्धांत के अनुसार, निम्न जातियाँ अपनी प्रतिष्ठा को ऊपर उठाने के लिए उच्च जातियों का अनुकरण करने का प्रयास करतीं हैं। जहाँ तक कृषक वर्ग की बात है तो उनके यहाँ महिलाओं को इस उर्ध्वमुखी गतिशीलता के साथ पितृसत्तात्मक कठोर नियंत्रण में रखा जाता है। इसके कारण वे यौन शोषण से सुरिक्षत रहती हैं। उच्च जाति की महिलाओं को अधीनता में और अक्सर एकांत में भी रखा जाता था। इसका संबंध सामाजिक ताने बाने की ब्राह्मणवादी प्रमुखता से जोड़ा जाता है। इसलिए संबंधित महिलाओं की अधीनता की स्थिति पर जाति कारकों द्वारा पड़ने वाले प्रभाव को कम नहीं आंका जा सकता। यह स्पष्ट है कि भारत में विकास की प्रक्रिया में पितृसत्ता एक ऐसी हकीकत रही है जिसे नकारा नहीं जा सकता। तथापि कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि स्वतंत्रता के लिए अपनी लड़ाई में महिलाएँ पराजित हो चुकी हैं। इस विषय में कई कल्पित और पौराणिक कथाएँ और तथ्य हैं जो इस बात को स्पष्ट करते हैं।

6.5 प्रभुत्व : पूर्वी अफ्रीका में महिलाएँ

अब हम अपने दूसरे केस अध्ययन पर विचार करेंगे। यह पूर्वी अफ्रीका की महिलाओं के बारे में, विद्वानों के विषयगत अनुभव और वस्तुनिष्ठ अवलोकनों पर आधारित है। केस अध्ययन दृष्टिकोण में मानव वैज्ञानिकों ने इस बात को रेखांकित करके उस पर विशेष बल दिया है कि वे यह सोचते हैं कि 'सार्वभौमिक विचार' हमेशा सही हों ऐसा नहीं है और वे अक्सर गुमराह भी करते हैं। उन्होंने चेतावनी दी है कि महिलाओं से संबंधित सभी क्षेत्रों और श्रम के विभाजन के प्रश्न पर निष्पक्ष 'वस्तुनिष्ठ' दर्शक के दोनों ही दृष्टिकोणों से विचार करना आवश्यक है। इसकी वजह यह है कि यद्यपि, लगभग सभी समाजों में महिलाओं की स्थिति अधीनता की ही है तथापि ऐसा भी नहीं है कि उनकी स्थित, शक्ति तक उनकी पहुँच और उनकी आर्थिक स्थिति में कहीं कोई अंतर नहीं है। इस बात पर ज़ोर देने की जरूरत है। ओबो (1990) ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि पूर्वी अफ्रीका में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन, नियंत्रण ओर शक्ति के उन कारकों के संदर्भ के बिना नहीं हो सकता जो उनके अपने कार्य और स्वयं अपने ऊपर हैं। नियंत्रण और शक्ति के ये कारक ही समाज में प्रतिफलों के वितरण का निर्णय करते हैं। श्रम के विभाजन के केस अध्ययन में हम, नियंत्रण और शक्ति के विभिन्न पहलुओं की और उन विभिन्न तरीकों की जाँच करेंगे जिनसे वे अंत:संबंधित हैं। इससे अपने आप ही पता चलेगा कि ये महिलाओं को अपने समाज में स्वयं ही पूर्ण रूप से कैसे प्रभावित करते हैं। ओबो के मतानतुसार महिलाओं का कार्य कुछ विशेष प्रकार के कार्यों से और उनके करने की विधि से संबंधित है। महिला क्या कर सकती हैं और क्या नहीं कर सकती इससे संबंधित सहमतियों और असहमतियों का एक सेट है, इसके फलस्वरूप महिलाओं की अपनी एक पहचान बनती है और वे आत्मज्ञान कर सकती हैं। आइए अब पूर्वी अफ्रीकी महिलाओं से संबंधित, समाजीकरण के विभिन्न रूपों पर विचार-विमर्श करें जिनमें विचारधारा संबंधी और प्रतीकात्मक रूप भी शामिल हैं।

क्या आप जानते हैं? 2

समाजीकरण, पुरुषों और महिलाओं में एक सम्पूर्ण दृष्टिकोण को जन्म देता है। पुरातन परिभाषाओं और विभाजनों को, जिनमें कि लिंग विभाजन भी शामिल है, जारी रखने में समाजीकरण, समाज का मुख्य आधार स्तंभ है। उदाहरणार्थ, पूर्वी अफ्रीका में काम को बहुत गंभीरतापूर्वक लिया जाता है और यह भाव उनके लोक गीतों में भी बना हुआ है। इसके अलावा, अव्यवस्थित रहने की आदत को, चाहे वह पुरुष की हो या महिला की, कभी भी पसंद नहीं किया जाता। सभी आलसी लोगों को नापसंद किया जाता है। यह बात सामान्यत: पुरुष और महिला दोनों ही के कार्य के संबंध में लागू होती है। श्रम का विभाजन जैसा भी हो, काम को भली भांति ही करना चाहिए।

ऐसी अनेकों कहावतें हैं जो इस बात की परवाह न करके कि किए जाने वाला कार्य किस प्रकार का है, पुरुष और महिला दोनों ही के काम संबंध में एक आचार-शास्त्र की रचना करती हैं। उदाहरणार्थ,

i) तुम्हें काम करने से नफरत है। लेकिन हर स्त्री को साफ सुथरा होना चाहिए और भली भांति खाना पकाना आना चाहिए। अन्यथा उसकी शादी ज्यादा दिन तक नहीं टिक पाएगी।
ii) यदि तुम वेश्या बनना चाहती हो तो ठीक है, अन्यथा तो महिला की किस्मत में बस काम करते रहना ही लिखा है। (ओब्बो पृष्ठ 212)

श्रम के विभाजन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि महिलाएँ कैसे और कब काम करती है। इस पहलू के बारे में बताने के लिए ओब्बो ने दो केस अध्ययन किए हैं। पहले केस अध्ययन में लेखाचित्र द्वारा बताया गया है कि पुरुष तो तेज़ गति से कार्य करते हैं, लेकिन महिलाएँ काफी अधिक पूर्णता से काम करतीं है। जैसे कि वासभूमि पर जब झाड़ियों की कटाई और सफाई करवाई गई तो देखा गया कि अंत तक महिलाओं ने इस कार्य को अधिक पूर्णता से किया। पुरुषों का काम, वहाँ पर महिलाओं की अपेक्षा काफी बेढंगा था।

ओब्बो द्वारा प्रस्तुत मानव जाति वर्णन संबंधी दूसरे उदाहरण से सिद्ध होता है कि महिलाओं का कार्य तो एक अंतहीन प्रक्रिया है जो कभी खत्म होती नहीं दिखाई देती और सभी दिशाओं में फैली होती है। उनके कार्य का यह अंतहीन चक्र, बच्चों का पालन पोषण और घर के रखरखाव तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसका विस्तार क्षेत्र काफी बड़ा है। उन्हें धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेना पड़ता है, आतिथ्य सेवाओं में भाग लेना पड़ता है, उपहार के लिए खाद्य पदार्थ बनाने पड़ते हैं, भोजन संसाधन करना पड़ता है, बीमारों की देखभाल करनी पड़ती है, और इसके अलावा खेतों में भी काम करना पड़ता है। पूर्वी अफ्रीका की महिलाएँ अन्य देशों की महिलाओं की ही भांति, एक ही समय में कई काम संभालती हैं। इन सबके अलावा, मातृत्व बहुत ही महत्त्वपूर्ण पहलू है। इस संबंध में जो विषय स्वयं को फिर से दुहराते हैं वे हैं उदारता, मान मर्यादा और धार्मिक अनुष्ठान संबंधी पवित्रता।

जहाँ तक धार्मिक अनुष्ठानों का संबंध है, महिलाओं की भूमिका और कार्य है श्रम करना , ताकि वह अनुष्ठान सफल हो सके। पूर्वी अफ्रीका में धार्मिक अनुष्ठानों में भागीदारी, अक्सर महिलाओं पर संकेन्द्रित होती है, ख़ास तौर से उन पर जो रजोधर्म और रजोनिवृत्ति से पवित्र हुई मानी जाती है। तथापि पूर्वी अफ्रीका के विभिन्न भागों में महिलाओं की भूमिकाओं में अंतर होता है और यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि आइवरी कोस्ट में बड़े-बुजर्ग, महिलाओं को नियंत्रित कर के युवा पुरुषों पर अपना नियंत्रण कायम रखते थें।

अत: यदि महिलाएँ, स्थापित आदर्श को वास्तव में चुनौती देना चाहती हैं और उनके संबंध में प्रश्न उठाना चाहतीं हैं तो उन्हें संसाधनों को नियंत्रित करना होगा। महिलाओं और पुरुषों के बीच श्रम के विभाजन को जब तक बाहरी/घरेलू की दृष्टि से देखा जाएगा जब तक घरेलू और रिश्तेदारी की संरचना को बदलना मुश्किल है।

6.5.1 महिलाएँ और विषयगत यथार्थ

आइए अब इस विषयगत यथार्थ पर विचार करें कि महिलाएँ क्या करतीं हैं। ऐसा इसलिए है कि कि एक महिला या पुरुष जो काम करता है वही उनकी वास्तविकता को बताता है। पूर्वी अफ्रीका में महिलाओं का श्रम और पुरुषों के नियंत्रण में है और वहाँ, पवित्रता, महिलाओं के लिए एक महत्त्वपूर्ण सद्गुण है। महिलाओं की लैंगिकता और श्रम, नियंत्रण और पुनर्उत्पादन के बहुत महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं। इस भांति लैंगिकता और नियंत्रण विभिन्न रूपों में दिखलाई देते हैं, जैसे कि:

i) रोज़मर्रा की स्थितियाँ
ii) पारिवारिक अंत:संबंध
iii) अपने स्वयं के अनुभवों पर आधारित महिलाओं के विचार।

इन तीनों बातों पर थोड़ा विचार किया जाना आवश्यक है क्योंकि ये प्रधानता/अधीनता संयोगों में मैत्रीपूर्ण हैं। यदि हम उन्हें समझ लेंगे तो हम श्रम के विभाजन के बारे में काफी कुछ समझ सकेंगे।

पुरुष अपने प्रभुत्व का प्रभाव कैसे डालते है इस बात को स्पष्ट रूप से समझाने के लिए ओब्बो ने तीन महत्त्वपूर्ण उदाहरण दिए है :

i) पूर्वी अफ्रीका में, एक अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार में, विश्वविद्यालय के एक पुरुष प्रोफेसर ने एक महिला सहकर्मी को टोकते हुए डांटना और गालियाँ देना शुरू कर दिया और कहा कि वह घर जाए और और अपने बच्चों के लिए खाना पकाए और जब उनसे इस व्यवहार के बारे में प्रश्न किए गए तो उसने इस बात पर काफी बल दिया कि वह उग्र नहीं है। बाद में उस महिला ने यह बताया कि उसने उस प्रोफेसर के विश्वविद्यालय में नि:शुल्क व्याख्यान देने से इंकार कर दिया था क्योंकि एक पुरुष को उसी प्रकार के व्याख्यान के लिए उसने शुल्क का भुगतान किया था। महिला के इंकार ने पुरुषों के, अपनी शक्ति के संबंध में विचारों में उथल-पुथल पैदा कर दी। उसकी यह धारणा थी कि महिलाओं के अस्तित्व का सम्पूर्ण उद्देश्य यह होता है कि वे पुरुषों का ध्यान रखा करें। यदि महिलाओं को अपने श्रम के बदले वेतन मिल जाए तो उन्हें स्वयं को भाग्यशाली मानना चाहिए।

ii) रवान्डा में, यदि महिलाओं को किसी काम को करने के बदले में जैसे कि बागवानी का काम, या कोई ओर काम हो, वेतन मिलता हो और उसके पति को वेतन नहीं मिलता हो तो वह बहुत परेशान हो जाता है। ऐसा इस तथ्य के बावजूद है कि यह अतिरिक्त कार्य है जो किया जा रहा है। तंज़ानिया में भी ऐसी ही हालत है। ऐसा क्यों है कि महिलाओं का श्रम मुआवज़ा देने लायक़ नहीं है? और एक पुरुष का है। ऐसा इसलिए है क्योंकि महिलाओं के श्रम को जीवन-निर्वाह श्रम के रूप में देखा जाता है और मुआवज़ा माँग कर महिलाएँ सामाजिक रूप से बनाए गए उन मूल्यों और मानकों को चुनौती देती हैं जो सम्पूर्ण समाज में बाल्यावस्था से ही जड़ें जमाए हुए हैं। यदि महिलाओं को किसी कार्य के बदले में वेतन मिलता भी है तो इसको उनके घरेलू कार्य का विस्तार

ही माना जाता है। दूसरी ओर महिलाएँ ऐसे तरीके से अलग कर दी जाती हैं जिससे कि वे मूल्यवान संसाधानों से दूर रहें। अत: यूगांडा के एन्कल में महिलाएँ, बछड़ों का पालन पोषण करतीं हैं परंतु दूध उन्हें उनके पतियों के द्वारा ही मिलता है। उनके पतियों को यह दूध उनके पिताओं से मिलता है। यही नहीं, एन्कल में पतियों को यह अनुमति प्राप्त है कि वे यौन संबंध बनाने के लिए अपनी पत्नियों को अपने परम मित्रों के पास भेजें। इससे यह ज्ञात होता है महिलाओं के शरीरों का उनके पतियों व पतियों के मित्र द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है।

श्रम के विभाजन के परिपेक्ष्य में महिलाएँ स्वयं को माता और पत्नी व तद्नुसार देखभालकर्ताओं के रूप में देखतीं है। जब वे इन घेरों से बाहर निकल कर काम करतीं हैं तो सामान्यत: उन्हें अच्छा वेतन नहीं दिया जाता। अपनी पत्नी के शरीर के ऊपर पुरुष का अधिकार इस सीमा तक है कि वह उसे अपने मित्रों के सामने एक उपभोक्ता वस्तु के रूप में पेश कर सकता है। इससे यह प्रकट होता कि पूर्वी अफ्रीका में महिलाएँ 'नियंत्रित श्रमिक' हैं। इस सामाजिक परिभाषा से हट कर अगर कोई महिला कदम उठाती है तो उसे शरीरिक, वित्तीय या सामाजिक, किसी भी प्रकार का दंड मिल सकता है। इस भांति, इन समाजों में; घरेलू/घर से बाहर, का मूल विभाजन बना रहता है।

6.5.2 विवाह और निर्भरता

अफ्रीका और विश्व के अन्य भागों में, महिलाओं का विवाह, भौतिक समस्याओं से बचने और अपने अभिभावाकों के साथ उनके निर्भरता संबंध टालने के लिए किया जाता है। इसके कारण, श्रम के, महिला/पुरुष और घरेलू/घर बाहर, विभाजन की परंपरा जारी रहती है। इस भाँति, लिंग भूमिकाएँ, अनुकूल स्तर पर बढ़ जाती है। तथापि बहुत कुछ इस पर निर्भर करता है कि कोई संबंध, कैसे विकसित होता है और संबंध कुछ हद तक, उत्पादन की प्रमुख विधि के अंतर्गत भी, आकार बदल सकता है।

श्रम के विभाजन के कारण जहाँ तक भूमिकाओं में परितर्वन का संबंध है, यह देखने में आता है कि शहरी क्षेत्र सबसे अधिक प्रभावित है। अफ्रीका की शहरी महिलाएँ, लाभों और शक्ति के संदर्भ में, अपने संबंधों की पुनर्व्यवस्था करने में सक्रिय रूप से संलग्न हैं। तथापि हमें यह याद रखना चाहिए कि, ग्रामीण क्षेत्रों से रोज़गार की खोज में शहरी क्षेत्रों की ओर प्रवास की क्रियां ही 'महिला वर्ग' की धारणा के बोध में फौरन परिवर्तन ले आती है। अनेकों महिलाएँ बड़ी भयंकर स्थितियों में काम करती हैं जैसे कि कृषि की मौसमी मांगों के लिए श्रम की बिक्री। इस प्रकार, समय के प्रतिबंध और आय उपार्जन के अवसरों की कमी, ग्रामीण महिलाओं को अक्सर, शहरों की ओर प्रवास के लिए बाध्य कर देती है। प्राय: ये प्रवासी, ऐसी एकल महिलाएँ होती हैं जो अक्सर, शहरों की ओर प्रवास के लिए बाध्य कर देती है। प्राय: ये प्रवासी, ऐसी एकल महिलाएँ होती हैं जो परंपराओं का पालन नहीं करती और विवाह करने से इंकार कर देती हैं। पूर्वी अफ्रीकी शहरों में विधवा और तलाकशुदा महिलाएँ भी स्वयं ही अपनी देखभाल करना पसंद करती हैं और इस तरह, पूर्वी अफ्रीका की शहरी महिलाओं को तीन प्रकार के श्रम करने होते हैं। ये हैं :

i) संभ्रात महिलाएँ जो अच्छा वेतन प्रदान करने वाले कार्य — यहाँ तक कि व्यावसायिक कार्य भी करतीं हैं।
ii) प्रारंभिक संभ्रात महिलाएँ कार्यालयों, मुख्यत: नौकरी सेक्टर में काम करतीं हैं।
iii) अकुशल कार्यकर्ता जो कि घरेलू नौकर का काम करती हैं या किसी स्व-रोज़गार अवसर को स्थापित करने का प्रयास करती है।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि महिलाओं की भूमिकाओं में परिवर्तन लाना या तो उस कार्य पर निर्भर करता है जिसे महिलाएँ करती हैं या श्रम की उस किस्म पर, जिससे से स्वयं को संलग्न करतीं हैं।

इस प्रकार, अफ्रीका में ऐसी संभ्रात महिलाओं की संख्या बहुत कम है जो अच्छे वेतन वाली नौकरियों में हैं, या उच्च वेतन पाती हैं, अच्छे मुहल्लों में रहती हैं, जिनके बच्चे अच्छे स्कूलों में पढ़ने जाते हैं और जो धन निवेश करती हैं और जिनके अपने अलग बैंक एकाउंट होते हैं। संसाधनों के स्वामित्व या नियंत्रण के बारे में, वहाँ कोई भ्रम नहीं है क्योंकि ये महिलाएँ जानतीं है कि कानूनी और सामाजिक नियंत्रण पुरुषों के हाथ में हैं। आधुनिक अफ्रीका पितृसत्तात्मक है ओर हर वर्ग की महिलाएँ इस तथ्य को भलीभांति जानती हैं। वस्तुत: कुछ अफ्रीकी महिलाएँ तो श्वेत पुरुषों से विवाह भी कर लेतीं हैं ताकि अपने समाजों में व्याप्त, अत्यंत उत्पीड़क, लिंग पूर्वाग्रहों से वे दूर रहे सकें।

प्रारंभी संभ्रात महिलाएँ उस समूह से संबंधित हैं जोकि थोड़ी बहुत माध्यमिक शिक्षा प्राप्त है और इसलिए नौकरी सेक्टर में क्लर्क या रिसेप्शनिस्ट जैसी, बाबूगीरी वाली नौकरियां पाने की पात्र हैं। इनमें निम्न ग्रेड वाली अध्यापिकाएँ, सेक्रेटरी और नर्सें भी शामिल हैं। ये महिलाएँ धनाभाव की कठिनाई भुगत चुकी होती हैं और वे अधिकतर जीविका के लिए कमाई में लगी रहती हैं ताकि वस्त्र, भोजन, परिवहन और किराये से संबंधित आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। कुछ महिलाएँ काम करते करते सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ जाती हैं परंतु सामान्यत: पुरुष अपने प्रतियोगी स्वभाव ओर उग्र बर्ताव से उन्हें वहाँ नहीं ठहरने देते। कभी-कभी, इन महिलाओं को यौन संबंधों के प्रस्तावों के आगे समर्पण करना पड़ जाता है परंतु यह बहुत खतरनाक साबित हो सकता है और वे रास्ते से भटक सकतीं हैं। अफ़सर का अपनी सेक्रट्री से विवाह कर लेना इसी प्रकार का उदाहरण है। महिलाएँ ही यौन प्रस्तावों के आगे समर्पित होने की इच्छुक होती हैं जिसके कारण संभ्रात वर्ग की विवाहित महिलाओं को खतरे की आशंका हो जाती है। परंतु ऐसी महिलाओं का अंत अच्छा नहीं होता और वे, एकल माताएँ बन कर रह जाती हैं। यह, लिंगों के बीच एक जटिल खिलवाड़ की स्थिति है और यह ऐसे क्षेत्र में है, जहाँ श्रम का क्षेत्र एक ओर तो अविश्वास पूर्ण है और साथ ही अबाधित भी। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रम के विभाजन में, लैंगिक राजनीति भी व्याप्त है।

महिलाओं के संबंध में, अकुशल श्रम को दो भागों में बांटा गया है, अर्धसाक्षर और निरक्षर। अर्धसाक्षर महिलाएँ, अपने प्रशिक्षण के बावजूद, कार्यालयों में नौकरी नहीं प्राप्त कर पाती। उच्चतम उद्योगों में तो लगभग पूरी तरह ही, पुरुषों द्वारा ही काम किया जाता है और इस कारण इन महिलाओं को घरेलू नौकरों का ही काम मिल पाता है। कुछ आधारभूत प्रशिक्षण के कारण, ये महिलाएँ बेहतर मज़दूरी और कार्य घंटों के लिए समझौते की बातचीत कर सकतीं हैं। परंतु इस श्रेणी से सम्बद्ध महिलाओं की संख्या इतनी अधिक है कि अंत में उन्हें झाड़ू देने और भवनों की सफाई का काम ही मिल पाता है। जो पुरुष इस तरह के काम करते हैं उन्हें बेहतर रोज़गार दिया जाता है जिसमें उन्हें पहनने के लिए वरदी मिलती है। उन्हें क्लर्क की नौकरी दी जाती है। कुछ महिलाएँ दुकानों में सहायिका का और महिला वेटर (वेट्रेस) का काम करती है। गरीबी और जीवन निर्वाह की कठिन स्थितियों के कारण ये महिलाएँ अक्सर, अंशकालिक वेश्याएँ बन कर, शहरी पुरुषों की आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रम का विभाजन निश्चित रूप से अन्यायपूर्ण है और यह दर्शाता है कि ऐसी स्थितियों में पुरुष, महिलाओं का कैसे लाभ उठाते हैं। श्रम के विभाजन का पलड़ा पुरुषों के पक्ष में झुका हुआ है और महिलाओं के खिलाफ है।

6.5.3 श्रम, महिलाएँ और साक्षरता

पूर्वी अफ्रीका की निरक्षर महिलाएँ अनौपचारिक सेक्टर में काम करती हैं जैसे कि बीयर (शराब)

बनाना, सब्जी बेचना या स्वाल्पाहार आदि बेचना। ऐसी कुछ महिलाओं को सवेतन नौकरियाँ भी उपलब्ध हैं जैसे कि अस्पतालों/या स्कूलों में रसोइये की। ऐसी नौकरियों में वेतन ज्यादा नहीं मिलता और इन महिलाओं की और इनके परिवारों की घोर निर्धनता आसानी से नज़र में आ जाती है। इससे भी बदतर यह है कि ऐसे कार्यों को, घरेलू कार्य का अतिरिक्त भाग ही माना जाता है और इसलिए उनकी आय को उनके पतियों द्वारा पारिवारिक आय का ही हिस्सा समझा जाता है। तथापि, ऐसे श्रम से पुरुषों को प्राय: खतरे का आभास होता है क्योंकि वे इसे पुरुष प्राधिकार के लिए एक चुनौती के रूप में देखते हैं। इस प्रकार, अफ्रीका में लैंगिक संबंधों और कार्य के पारंपरिक प्रतिमानों के क्षय ने तनावपूर्ण क्रांतिकाल को जन्म दिया है। महिलाओं को अकेले ही इस स्थिति का सामना करना पड़ता है। विकासात्मक परियोजनाएँ पुरुषों के पक्ष में हैं जिनके कारण पुरुष तो संस्थापित हो रहे हैं और महिलाएँ अधीनता की स्थिति में है। अफ्रीका में, जब गरीबी कम होगी तभी विकास होगा और इसकी सर्वोत्तम विधि यह होगी कि स्त्री और पुरुष दोनों ही को काम के लिए समान अवसर प्रदान किए जाएँ, और इस प्रकार लैंगिक असमानता को कम किया जाए।

6.6 सारांश

इस भांति यह ज्ञात होता है कि किसी समाज में, श्रम का विभाजन ही है जो महिला और पुरुष दोनों ही पहचानों को आकार प्रदान करता है। यह एक वास्तविकता है कि कार्य ही, महिलाओं की स्थिति और सामाजिक पहचान को भी आकार देता है। एक पारंपरिक प्रणाली में सामाजिक मानक और व्यापक समाज का अपेक्षित व्यवहार, जिसमें स्कूल भी शामिल हैं वहाँ कार्य ही है जो स्त्री और पुरुष दोनों को सुसंस्कृत बनाता है। यही देखने में आता है कि ये विचारधाराएँ पुरुषों की ही पक्षपाती है। इन लैंगिक असमानताओं को प्राय:, धर्म और धार्मिक अनुष्ठानों में अभिव्यक्त प्रतीकात्मक शैलियों द्वारा नियंत्रित किया जाता है जो कि यथापूर्व स्थिति को बनाए रखने का शक्तिशाली तरीका बन जाते हैं। ऐसा इसलिए है कि ये, उत्पादन और पुनर्उत्पादन के लिए केंद्रीय हैं। यह तर्क देना गलत है कि पुरुष महिलाओं के श्रम का नियंत्रण नहीं करते। कुल मिला कर, स्थिति यह है कि श्रम का विभाजन, पूर्वाग्रह ग्रस्त उन लैंगिक असमानताओं को प्रतिबिंबित करता है जहाँ पुरुषों के पास शक्ति व अधिकार है और महिलाओं को पुरुषों के द्वारा शोषित किया जाता है।

6.7 शब्दावली

पितृसत्तात्मक : वह परिवार प्रणाली जहाँ महिलाओं और संपत्ति पर पुरुषों का नियंत्रण होता है और वे ही सारे महत्त्वपूर्ण निर्णय करते हैं।

पुनर्उत्पादन : मानव जाति के जैविक स्थायीकरण की क्रिया। सहनिवास के माध्यम से।

समाजीकरण : वह प्रक्रिया, जिसमें मानकों और मूल्यों के सभी रूपों को दोनों लिंगों और सभी आयु वर्ग के शिक्षार्थियों को सौंप दिया जाता है।

6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बर्धन, कल्पना, 1985 'वुमैन्स वर्क वेल्फेयर एंड स्टेटस'। *इकोनोमिक एंड पोलिटीकल वीकली*, 20 (दिसंबर 21-28) ओब्बो, क्रिस्टीन, 1980, *अफ्रीकन वुमेन*। लंदन, ज़ेड प्रेस।

इकाई 7 महिलाओं में गरीबी

रूपरेखा

7.0 लक्ष्य और उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 महिलाओं में गरीबी : मुख्य विचारधाराएं
7.3 कल्याणकारी विचारधारा
7.4 समानता की विचारधारा
7.5 गरीबी विरोधी विचारधारा
7.6 महिलाओं के प्रति भेदभाव
7.7 कार्यकुशलता की विचारधारा
7.7.1 उत्पादन का श्रेणीकरण
7.8 नारी-परिवेश (पर्यावरण) संबंधी विचारधारा
7.9 महिलाओं में गरीबी के बारे में अध्ययन
7.9.1 निर्मला बनर्जी
7.9.2 प्रदीप कुमार पांडा
7.9.3 विद्युत भागवत
7.10 सारांश
7.11 शब्दावली
7.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में हमने महिलाओं में गरीबी का विश्लेषण किया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- महिलाओं में गरीबी की अवधारणा और उसकी व्याख्या कर सकेंगे;
- इस अवधारणा के लिए विचारधाराओं का वर्णन कर सकेंगे;
- विषय से संबंधित विभिन्न अध्ययनों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे; और
- समस्या के समाधान के लिए विभिन्न उपायों की चर्चा कर सकेंगे;

आज किसी भी समाज में महिलाओं को पुरुषों के बराबर अवसर नहीं मिलते। यह असमान स्थिति मानव विकास में महिलाओं के अत्यधिक योगदान तथा उस विकास के लाभ में उनकी अल्प प्राप्ति के मध्य अत्यधिक असमानता दर्शाती है।

विश्व विकास की 1990 की रिपोर्ट दर्शाती है कि विकासशील देशों में एक बिलियन से भी अधिक व्यक्ति गरीब हैं। इस रिपोर्ट में इस बात पर विशेष प्रकाश डाला गया है कि वास्तव में ये लोग जिंदा रहने के लिए प्रतिदिन एक डालर से भी कम आमदनी पर निर्भर करते हैं। 1970 के दशक में गरीबी कम करने तथा पुरुषों और महिलाओं में समानता की समस्या पर विद्वानों तथा नीति निर्माताओं ने काफी ध्यान दिया। यह देखा गया कि इस दशक की चर्चाओं में गरीबी दूर करने का पुनःवितरण व विकास की मूलभूत आवश्यकताओं पर तो काफी जोर दिया गया। लेकिन महिलाओं और उनके विकास के विषय हाशिये पर रहे। फिर भी कुछ विद्वानों एवं नीति निर्माताओं ने गरीबी तथा लिंग भेद के विषयों को जोड़ने का प्रयास किया।

1980 के दशक को अनेक अर्थों में नुकसान या क्षति का दशक माना गया। इस दशक का कुछ विशेष क्षेत्रों में अत्यधिक प्रभाव पड़ा। सहारा, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका उप-महाद्वीपों में आय में काफी कमी आई तथा गरीबी में वृद्धि हुई। गरीबी की यह समस्या विकासशील दुनिया के इन क्षेत्रों में आने वाले देशों तथा इन देशों के कुछ क्षेत्रों में असमान रूप से फैल गई। अनुमान लगाया गया कि विश्व के लगभग आधे गरीब लोग दक्षिण एशिया में हैं जहां विश्व की 30% आबादी रहती है।

गरीबी का यह भार कुछ समूहों पर अत्यधिक पड़ता है। प्राय: महिलाओं को अधिक हानि होती है। गरीब परिवारों में वे पुरुषों से अधिक कार्य करती हैं। वे कम शिक्षित हैं तथा आर्थिक गतिविधियों में उनकी भागीदारी बहुत कम होती है।

7.1 प्रस्तावना

गरीबी और गरीब की अनेक परिभाषाएँ है। 'गरीबी रेखा' के निर्धारण की मुख्य विचारधारा की परिभाषा में आय का एक स्तर है जिससे नीचे के आमदनी वाले लोगों को गरीब माना जाता है। मुख्य गणना की विचारधारा गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या की गणना करती है। यह उपाय नीति निर्माताओं के लिए उपयोगी है क्योंकि इससे उन्हें गरीब जनसंख्या का अनुमान हो जाता है। 'गरीबी रेखा' को प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति द्वारा ली जाने वाली कैलोरी अर्थात 2300 कैलोरी के रूप में परिभाषित किया गया है।

विश्व के कुल गरीबों में लगभग 70% महिलाएँ गरीब हैं और उन पर गरीबी का असमान भार पड़ता है। यह देखा गया है कि :

i) महिला प्रधान परिवारों में गरीबी की दर में 1970 के दशक के आरंभिक वर्षों में वृद्धि हुई; और

ii) गरीबों की संख्या में महिला प्रधान परिवारों का अनुपात अत्यधिक है।

पिछले दशक में रोज़गार अवसरों की कमी से आमतौर पर गरीबों की और विशेषतया महिलाओं की आर्थिक स्थिति और खराब हो गई। विपरीत सार्वजनिक नीति ने पारिवारिक ढांचा तोड़ दिया तथा सामुदायिक जीवन के अन्य संबंधित तथ्यों को समाप्त कर दिया।

क्या आप जानते हैं - 1

महिलाओं में गरीबी को हाल ही के वर्षों में कुछ तथा अंग्रेज और अमरीकी महिला छात्रवृति के परिणामस्वरूप व्यापक रूप से सैद्धांतिक वैधता तथा राजनीतिक पहचान प्राप्त हुई है। आस्ट्रेलिया के लोगों से अधिक चेतावनी दी गई है। महिलाओं और उनके परिवारों को आसानी से निर्धन बनने तथा उन्हें पूरी तरह सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक भागीदारी से अत्यधिक बहिष्कृत होने पर चिन्ता जताई गई है।

गरीबी से पीड़ित व्यक्तियों की आमदनी पर्याप्त नहीं है तथा किसी समाज के पारंपरिक जीवन में पूरी तरह भागीदारी के लिए उनकी सेवाओं और साधनों का अभाव होता है। गरीबी आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक न्यूनताओं वाला जीवन-चक्र है।

7.2 महिलाओं में गरीबी : मुख्य विचारधाराएँ

महिलाओं में गरीबी की स्पष्ट स्थिति जानने के लिए हम अनेक विचारधाराओं का अध्ययन कर सकते हैं जो पर्याप्त सीमा तक उत्पन्न व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक आवश्यकताओं को बताती हैं।

7.3 कल्याणकारी विचारधारा

अतीत में यूरोप में दो विश्व युद्धों के बाद पीढ़ित समूहों के पुनर्निर्माण के रूप में राहत कार्यक्रम चलाए गए। इन कार्यक्रमों से महिलाओं को सर्वाधिक लाभ हुआ। महिलाओं को मुख्यत: पत्नी और बहनों के रूप में देखा गया।

तीसरी दुनिया में इसे दो तरह से लागू किया गया। एक आर्थिक उत्थान के लिए पश्चिम से आर्थिक सहायता तथा दूसरा वंचित समूहों को सहायता या राहत पहुंचाना। इसलिए घनी पूंजी वाले औद्योगिक क्षेत्र में निवेश को प्राथमिकता दी गई। इस क्षेत्र को उन्नति का अगुआ माना गया। फिर भी इस क्षेत्र में उत्पन्न कार्य मुख्यत: पुरुषों ने हथिया लिए क्योंकि ये शिक्षित थे और उनके पास आवश्यक योग्यता भी थी। महिलाओं को यदि कुछ कार्य मिला भी तो वह अकुशलता या लिपकीय स्तर का था। महिलाएं नए शिल्प प्रशिक्षण से वंचित या बाजार से अपरिचित होकर परिवार में अन्दर ही रही।

विचार करें 1

विकास प्रक्रिया में महिलाएं हाशिए पर क्यों रहीं? आपके विचार से क्या केवल कल्याणकारी उपाय से स्थिति में परिवर्तन आएगा? विभिन्न स्तर वाली अनेक महिलाओं से बात करें तथा इस विषय में अपने विचार कापी में लिखें।

तीस वर्षों से भी अधिक समय से महिलाओं के लिए विभिन्न कल्याणकारी कार्यक्रमों के लिए पर्याप्त आर्थिक सहायता दी जा रही है। उपर्युक्त स्थिति से महिलाएँ राज्य द्वारा दी जाने वाली सहायता की निष्क्रिय ग्रहणकर्ता बन गईं। उनकी पुनरुत्पादन की भूमिका के दबाव ने उनकी उत्पादक भूमिका को पीछे धकेल दिया। परिवार का हित महत्वपूर्ण हो गया। इसलिए 60 के दशक से 'मां-शिशु स्वास्थ्य' कार्यक्रम जैसे कार्यक्रम चलाए गए।

कल्याणकारी विचारधारा ने महिलाओं को ऐसे निष्क्रिय सदस्य के रूप में माना जिसे आर्थिक रूप से ऊपर उठाना है। उन्हें परिवार के आकार के लिए उत्तरदायी माना गया तथा वह जनसंख्या नियंत्रण उपायों का लक्ष्य बन गई। फिर भी जनसंख्या नियंत्रण के जोर जबरदस्ती वाले तरीकों की असफलता ने अनुभव कराया कि ऐसी नीतियों को लागू करने के लिए कुछ रचनात्मक तथ्यों का भी ध्यान रखना चाहिए।

7.4 समानता की विचारधारा

समानता की विचारधारा को महिलाओं की विकास प्रक्रिया में शामिल करने के लिए आजमाया गया। महिलाओं के मुख्य धारा में शामिल होने के लिए माना गया कि वे समाज में अनेक भूमिकाएं निभा सकती है। इन्हें महिलाओं के तीन दायित्व कहा गया जो इस प्रकार हैं। प्रथम है पुनरुत्पादन भूमिका, बच्चा

पैदा करना, पालन पोषण तथा गृह कार्य से वर्तमान तथा भावी कार्य का पता चलता है। दूसरा दायित्व है अतिरिक्त आयकर्ता के रूप में उत्पादक भूमिका। यह मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्रों में खेती के कार्यों तथा शहरों में गैर-पारंपरिक क्षेत्र में किया जाता है। तीसरी भूमिका सामुदायिक प्रबंध की है जिसमें सामूहिक उपयोग के अपर्याप्त स्रोतों जैसे जल, स्वास्थ्य सुविधाएँ तथा शिक्षा स्रोतों की व्यवस्था एवं देखभाल करना शामिल है। इन सबसे महिलाओं की गतिशीलता पर रोक लग जाती है। वे जीवन स्तर को सुधारने वाले उपलब्ध अवसरों का लाभ नहीं उठा पाती। समानता की विचारधारा इन तीन दबावों को पहचानती है तथा उसका मत है कि राज्य को संबंधित क्षेत्रों में हस्तक्षेप करना चाहिए ताकि महिलाओं को पुरुषों के बराबर समझा जा सके।

पुरुषों से महिलाओं को स्रोतों के पुन: आबंटन पर जोर देना राजनीतिक रूप से संवेदनशील विषय था जो उन विकासात्मक सहायता एजेंसियों के लिए अभिशाप बन गया जो पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करने से संकोच करती थी। अत: एक ऐसे विचार पर ध्यान केंद्रित हुआ जो लिंगभेद आधारित अधिकार संरचना के बुनियादी समीकरण को प्रभावित न करती हो।

7.5 गरीबी विरोधी विचारधारा

समाज में लिंगभेद आधारित अधिकार समीकरणों की नींव हिलने के भय से महिलाओं को अधिकार संपन्न करने की कोशिशों को लागू करने में कठिनाई का अनुभव करने से सहायता एजेंसियों ने अपना ध्यान गरीबी विरोधी कार्यक्रमों की तरफ केंद्रित किया जिसमें महिलाओं पर विशेष ध्यान दिया गया। इस कार्यक्रम में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठनों ने कार्य करने वाले गरीब को गैर-पारंपरिक क्षेत्र में शामिल करने के लिए अपने आदेश को और व्यापक बनाया। लगभग उसी समय विश्व बैंक ने अपने उद्देश्य को और व्यापक कर दिया। उसका उद्देश्य अब आर्थिक उत्थान से आगे संपूर्ण गरीबी उन्मूलन और उत्थान के साथ पुन:वितरण करना हो गया गरीब से गरीब व्यक्ति और विशेष कर तीसरी दुनिया की महिलाओं की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करना था। इनमें बुनियादी आवश्यकताएँ जैस-2 भोजन, वस्त्र, आवास, ईंधन के साथ साथ शिक्षा, मानव अधिकार तथा रोज़गार और राजनीतिक भागीदारी के माध्यम से समाज में भागीदार होने जैसी सामाजिक आवश्यकताएँ भी शामिल थी।

बनाई गई इस नीति के पीछे यह धारणा थी कि महिलाओं को कष्ट उनकी गौण सामाजिक स्थिति की अपेक्षा उनके अविकसित होने के कारण है। अविकास की समस्या को आमदनी बढ़ाने वाले कार्य, भूमि, पूंजी प्रदान करने तथा शिक्षा प्रदान करने के द्वारा भी हल करना था ताकि जनसंख्या वृद्धि की समस्या पर भी ध्यान दिया जा सके। यह माना गया कि गैर पारंपरिक क्षेत्र में स्वत: प्रगति होगी। यह धारणा बाद में गलत साबित हुई। अधिकांश या संपूर्ण महिलाओं की भागीदारी वाले छोटे व्यवसाय आरंभ किए गए। इसके पीछे धारणा यह थी कि स्पर्धात्मक बाजार में व्यवसाय के स्थापित होने में उसका छोटा स्तर बाधा नहीं बनेगा।

प्रमाणों से संकेत मिलते हैं कि विभिन्न कारणों से ये कार्यक्रम अधिक सफल नहीं हुए। गैर पारंपरिक क्षेत्र में रोज़गार की सीमित संभावनाएँ होती हैं और इसकी प्रगति भी अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों से जुड़ी होती है। आरंभ किए गए इन व्यवसायों की क्षमता का वास्तविक अनुमान नहीं लगाया गया। कच्चे माल की आपूर्ति, उत्पादन तथा विपणन के बीच समन्वय कमजोर रहा। इसके अतिरिक्त इन परियोजनाओं में महिलाओं की पारंपरिक गतिविधियों पर जोर रहा जिसमें विकास एजेंसियों का झुकाव स्पष्ट नजर आता था। वे गरीब व्यक्ति की सहायता करने के लिए उसे व्यवसायी के रूप में शामिल करने हेतु लघुतम संगठनों में निवेश करते थे। इस प्रकार की गतिविधियों के चयन ने महिलाओं की एक जैसी कार्य

प्रणाली को दृढ़ किया और वे उत्पादन के वितरण जैसे अर्थव्यवस्था के अधिक प्रगतिशील अन्य क्षेत्रों से बाहर हो गई।

7.6 महिलाओं के प्रति भेदभाव

जब विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत प्रदान की जाने वाली सहायता परिवार के मुखिया के माध्यम से दी जाती है और प्राय: यह मुखिया पुरुष ही होता है तब गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का उद्देश्य धूमिल हो जाता है

इसी प्रकार उत्पादक संसाधनों तक महिलाओं की पहुँच अप्रत्यक्ष रहती है। उनकी पहुँच पति, पिता, भाई, बेटा होती है जो पुरुष सदस्य के माध्यम से होती है। इस प्रकार यह प्राप्ति महिलाओं और विशेषकर विधवाओं, तलाकशुदा या परित्यक्ताओं के लिए और भी कठिन हो जाती है क्योंकि उनके लिए अपने पति की संपत्ति प्राप्त करना कठिन होता है। भूमि के टुकड़ों के कारण कृषि भूमि पर महिलाओं के अधिकार लागू करना और भी कठिन है।

मजदूरी में भी पक्षपात होता है। महिलाओं के काम के बदले मिलने वाली मजदूरी वस्तु या पैसा होती है। कृषि क्षेत्र में श्रम के लिंग भेद विभाजन से महिलाओं को हानि होती हैं। यदि महिलाएं और पुरुष एक ही कार्य करें तो भी उनकी मजदूरी भिन्न भिन्न होती है।

मजदूरी (वेतन) संबंधी भेदभाव कब तक चलेगा?
सौजन्य : सी डब्ल्यू डी एस, नई दिल्ली

परिवार में भी संसाधनों की उपलब्धि में पुरुषों और महिलाओं में भेद किया जाता है। वैवाहिक संसाधन भी पत्नी द्वारा प्राथमिकता या समानता के आधार पर नहीं प्राप्त किए जा सकते। महिलाएँ अपनी पैतृक

संपत्ति पर भी अपना अधिकार नहीं रख पातीं। यह चक्र पुत्रियों की स्वास्थ्य देखभाल, भोजन तथा शिक्षा भी के साथ चलता है। उनका वैवाहिक जीवन कमजोर आर्थिक एवं सामाजिक स्तर पर आरंभ होता है और इससे उनकी सौदेबाजी करने की स्थिति प्रभावित होती है।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में जिनका केन्द्र -परिवार के पुरुष को घरेलू लक्ष्य बना कर, मूल्य कल्याण चक्रानुक्रम, वेतन से संबंधित था, लिंग संबंधी इन मुद्दों पर ध्यान नहीं दिया गया।

7.7 कार्यकुशलता की विचारधारा

गरीबी उन्मूलन विचारधारा से 'कार्यकुशलता' विचारधारा में परिवर्तन हमारे देश की वर्तमान उदारवादी दशा से मेल खाता है। विश्वास किया जाता है कि अर्थव्यवस्था के कार्यकलापों में महिलाओं की भागीदारी को अभी तक उनकी कार्यकुशलता का अधूरा उपयोग और मानवीय साधन को व्यर्थ गवाना था। यह विश्वास उन्हें अधिकारसंपन्न तथा समानता की तरफ ले जाता है। यह विचारधारा भी अनुपयुक्त है। इसमें भी पूर्ण विचारधाराओं की तरह तर्क संगत दोष है। माना जाता है कि आर्थिक उत्थान दान के विपरीत सभी भागीदारों के लाभ के लिए होता है। यह लिंग भेद के झुकाव के रूप में महिलाओं की संरचनात्मक बाधाओं तथा उसके परिणामों पर ध्यान नहीं देता। संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम (एस.ए.पी . स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंट प्रोग्राम) में कार्यकुशलता तथा उत्पादकता बढ़ाने का मुहावरा ही माना जाता है। वास्तव में एस.ए.पी कार्यक्रमों का सरल अर्थ है महिलाओं के खाली समय के उपयोग के माध्यम से चुकाई गई लागत को अचुकाई गई अर्थव्यवस्था में बदलना। यद्यपि एस.ए.पी. के प्रभावों का अधिक व्यवस्थित एवं व्यापक मूल्यांकन अभी होना है तो इससे यह संकेत मिलते हैं कि यह महिलाओं के तीन दायित्वों को बढ़ाता है। और विशेषकर सामुदायिक प्रबंध वाले दायित्व को बढ़ाता है। राज्य के आर्थिक संकट पर नियंत्रण पाने के लिए महिलाओं से समायोजन का दायित्व वहन करने की अपेक्षा की जाती है जबकि आरंभ में यह आर्थिक संकट की स्थिति उनके द्वारा पैदा की हुई नहीं है।

कृषि के व्यावसायीकरण का भी पुरुषों पर प्रभाव महिलाओं से भिन्न पड़ता है। ऐसी सूचनाएँ हैं कि पुरुषों की आर्थिक स्थिति अच्छी होती है और महिलाओं की खराब। गांव में कृषि पूँजी के विस्तार से निचली, पहाड़ी और भीतरी भूमि के कारण ईंधन और जल की माँग बढ़ने से इन्हें पूरा करने के लिए महिलाओं से और अधिक समय तक कार्य करने की आशा की जाती है।

अनुभव से सीखें - 1

आर्थिक विकास की 'टाप डाउन' (ऊपर से नीचे तक) विचारधारा से महिलाओं और विकास से होने वाले लाभों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जो महिलाओं के लिए लाभदायक नहीं है। विभिन्न लोगों से चर्चा करें कि 'टाप डाउन' विचारधारा से महिलाओं को लाभ क्यों नहीं है। अपनी खोज को कापी में लिखें।

7.7.1 उत्पादन का श्रेणीकरण

ायः महिलाएँ उत्पादन प्रक्रिया का अब निम्नतम स्तर हैं जिसे न तो दक्षता या प्रशिक्षण की और न ी शारीरिक स्वास्थ्य की आवश्यकता होती। आय के अवसर पुरुष अपनी बोलने की शक्ति से स्पष्ट कर ेते हैं तथा कार्यस्थल को अमानवीय भी बना देते हैं। महिलाओं के अप्रत्यक्ष कार्य में वृद्धि होने से रकार द्वारा उन्हें सामाजिक सेवाओं से हटाना पड़ा। यह महिला श्रम का एक अतिरिक्त कारण भी ना।

बदलते औद्योगिक ढाँचे के कारण लचीले श्रम की माँग को बढ़ा दिया और माना गया कि महिलाएँ इसके लिए उपयुक्त हैं। उन्हें अधिकतम कार्य के समय श्रम की संख्या बढ़ाने के लिए 'रिजर्व श्रम' के रूप में माना गया। इस प्रकार महिला श्रम की माँग बढ़ने लगी तथा महिला श्रमिक बल में वृद्धि होने लगी। इससे कुछ कार्यों के लिए भागीदारी में पुरुषों की संख्या कम होने लगी तथा उसी के अनुसार महिलाओं की संख्या में वृद्धि होने लगी। तकनीक में परिवर्तन होने से रोजगारों की संख्या कम होने लगी तथा औद्योगिक रोजगार की पारंपरिक संकल्पना में परिवर्तन होने लगा। आरंभ में महिलाओं को उपलब्ध कार्यों के रूप में कुछ लाभ हुआ लेकिन ये रोजगार उत्पादन प्रक्रिया के सबसे निचले स्तर के थे। धीरे धीरे कार्य के लिए ज्ञान की आवश्यकता होगी। वहां शिक्षा और कार्य निपुणता की कमी के कारण वे मुकाबला नहीं कर पाएगी।

क्या आप जानते हैं? - 2

एस.ए.पी. (संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम) आरंभ होने पर सरकारी इकाइयों पर पुनर्संगठन के लिए दबाव था। राष्ट्रीयकृत बैंकों में 20% कर्मचारी महिलाएं थीं तथा उनमें 4 लाख लोगों को फालतू घोषित कर दिया गया।

रेलवे विभाग ने कर्मचारियों की भर्ती पर रोक लगा दी। डाक-तार विभाग ने भी इसके निजीकरण करने की स्थिति में 2 लाख कर्मचारियों की छंटनी योजना बनाई है जिसके कारण कार्यबल में महत्वपूर्ण कटौती होगी और महिलाएँ इसका महत्वपूर्ण लक्ष्य होंगी।

7.8 नारी परिवेश (पर्यावरण) संबंधी विचारधारा

नारी परिवेश संबंधी विचारधारा में प्रतिपादित किया गया है कि महिलाओं और प्रकृति के बीच संबंध पुरुषों और प्रकृति के बीच के संबंधों से अधिक मजबूत है। महिलाएं प्रकृति को संरक्षित करने और जीवन के प्राकृतिक तरीकों का पालन करने में तत्पर रहती हैं।

वस्तुओं का असीमित उपभोग संसाधनों के विनाश का संकेत है और यह सब विकास के नाम पर किया जा रहा है। असीमित वृद्धि के बाद भटकते हुए कुविकास का भारत में हरित क्रांति एक उत्कृष्ट मामला है जिसे महिला परिवेश के समर्थक विद्वानों ने उठाया है। इससे महिलाओं का कार्य बीज तैयार करने जैसा फालतू हो गया क्योंकि बीज हर साल खरीदे जाते हैं। परिणामस्वरूप महिलाओं को उन व्यक्तियों के श्रम बल से निकालना पड़ा जिनकी आय हरित क्रांति से तथा साथ ही कृषि प्रक्रियां का मशीनीकरण होने से बढ़ गई थी।

कृषि के व्यावसायीकरण होने से बागवानी तथा पुष्पोत्पादन के विकास का आंदोलन सा आ गया। फिर भी इसका श्रम बाजार में अभी मूल्यांकन होना बाकी था। लैटिन अमेरिका में किए गए अध्ययनों से पता लगता है कि भारत में ऐसी बागवानी का अर्थ है 'निर्यात फसलों' को निर्यात करना।

इससे किसान सीमांत पहाड़ी और जंगली क्षेत्रों में चले गए। परिणामत: गरीबी के कारण ईंधन की लकड़ी के लिए इन वृक्षों की कटाई या खेती को जलाने जैसी अल्पकालिक मजबूरियाँ बढ़ गइ।

कौन वृक्ष काटता है और कौन दृष्टिकोण वृक्षारोपण करता है
सौजन्य : सी.एस.आर, नई दिल्ली

क्या आप जानते हैं? - 3

पर्यावरण का विनाश स्वदेशी लोगों जैसे कबीलों और महिलाओं को दूर किनारे करने और असमानता को बढ़ावा देने के कारण हुआ। ईंधन के लिए लकड़ी का संकट एक उदाहरण है कि किस प्रकार महिलाएँ विकास परियोजनाओं से प्रभावित होती हैं।

स्त्री परिवेशवादी विद्वानों ने मत व्यक्त किया कि सार्वजनिक तथा निजी जीवन की स्थितियों का मिलान करना होगा क्योंकि जीवन को विभाजित करके नहीं समझा जा सकता। आत्मानुभव का कार्य के साथ परस्पर संबंध पुन: स्थापित करना होगा। कार्य को मजबूरी के रूप में नहीं बल्कि रचनात्मक गतिविधि के रूप में मानना चाहिए तथा उसके अनुरूप प्रसन्न रहना चाहिए। स्त्री परिवेशवादियों ने इस परियोजना से पुरुषों को अलग नहीं रखा क्योंकि पुरुषों और महिलाओं दोनों को अपना जीवनदर्शन बदलना होगा तथा महिलाओं द्वारा वहन किए जाने वाले तिहरे बोझ को उन्हें मिलकर वहन करना होगा ताकि वे बाजारी शक्तियों द्वारा बनाई गई विनाशकारी प्रवृत्तियों से कम पीड़ित हो।

7.9 महिलाओं में गरीबी के बारे में अध्ययन

विद्वानों ने गरीबी और महिलाओं पर अध्ययन किए हैं। एकत्रित जानकारी के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाले हैं। हम निर्मला बनर्जी, पी.के. पांडा तथा वी. भागवत द्वारा किए अध्ययन का संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं।

7.9.1 निर्मला बनर्जी

"पावर्टी वर्क एंड जैंडर इन अर्बन इंडिया" (शहरी भारत में गरीबी, कार्य तथा पुरुष और महिलाएं) में अपने अध्ययन में उन्होंने बताया है कि राष्ट्रीय नीति के एजेंडा में गरीबी उन्मूलन और अतिरिक्त रोजगार जुटाने के विषय सबसे ऊपर थे तो भी इस संदर्भ में महिलाओं के लिए अभी तक बहुत कम कार्य किया गया है। वे तर्क देती हैं कि श्रम के क्षेत्र में महिलाओं में गरीबी तथा भेदभाव भी अत्यधिक रूप से विद्यमान है।

वे बताती है कि 1987-88 में शहरी आबादी में 1000 पुरुषों की तुलना में 912 महिलाएँ थी। लेकिन परिवार में गरीबी रेखा से नीचे उनकी संख्या 1000 पुरुषों की तुलना में 974 थीं। यह पाया गया कि जनसंख्या और परिवारों में महिला प्रधान परिवारों में गरीबी का प्रतिशत संपूर्ण शहरी परिवारों की तुलना में काफी अधिक था।

विचार करें 2

गरीबी का प्रभाव पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं पर अधिक होता है? आप ऐसा क्या सोचते है। विभिन्न प्रकार के शहरी और ग्रामीण तथा धनी व गरीब व्यक्तियों से चर्चा करें तथा अपने विचार एक कापी में लिखें।

महिलाप्रधान परिवार जीवित रहने के लिए महिला के कार्य पर निर्भर करते हैं। महिलाओं को कम मजदूरी मिलने के कारण वे अन्य परिवारों की तुलना में अधिक गरीब होते हैं।

अध्ययन में दिए गए आँकड़ो से पता लगता है कि 1987-88 में शीघ्र विवाह होते थे और 19 वर्ष से अधिक केवल 9 प्रतिशत महिलाएँ ही अविवाहित थीं। इसके अतिरिक्त वयस्कता के आरंभ में तथा विवाह के बाद शीघ्र ही महिलाओं से आशा की जाती है कि वे पूरी तरह अपनी उत्पादकता की भूमिका को निभाएँ। फलस्वरूप शहरी महिलाएँ श्रम के क्षेत्र में विलंब से आती हैं। श्रम के क्षेत्र में विलंब से आने का अर्थ है कि वे पुरुषों की तरह नए शिल्प और अनुभव नहीं सीख पाती। नियोक्ता भी उन्हें उत्तरदायित्व वाले कार्य न देना उचित समझते हैं क्योंकि वे मानते हैं कि अधेड़ महिलाएँ अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण ऐसे कार्यों के लिए जरूरी एकाग्रता या व्यावसायिक निपुणता नहीं रख पातीं।

महिलाएँ श्रम के क्षेत्र में अत्यधिक गरीबी तथा परिवार को पूरी तरह जीवित रखने के लिए आमदनी की आवश्यकता के कारण आती हैं। कलकत्ता में परिवारों का सर्वेक्षण बताता है कि आधे से अधिक महिलाएँ परिवार की संपूर्ण आय का 40% से अधिक कमाती हैं तो भी पूरा परिवार राशन व्यवस्था के अंतर्गत उन्हें आंबटित पूरा किया गया, पूरा राशन खरीदने की स्थिति में नहीं है। ऐसी स्थिति में महिलाएँ न केवल निम्नतर कार्य स्वीकार करती हैं अपितु श्रम क्षेत्र में आने के लिए कम मजदूरी भी स्वीकार कर लेती हैं। इस तरह की विषमता विधवाओं, तलाकशुदा तथा परित्यक्ताओं में पूरी तरह आम बात हैं जिनकी अपने परिवारों की प्रमुख आयकर्ता होने की संभावना है।

7.9.2 प्रदीप कुमार पांडा

प्रदीप कुमार पांडा का अध्ययन बताता है कि गरीबी और महिलाप्रधान परिवारों में परस्पर गहरा संबंध

हैं। पांडा कहते है कि उड़ीसा में गरीबी उन्मूलन के लिए महिला प्रधान परिवार उपयोगी लक्ष्य हो सकता है। अध्ययन से पता लगता है कि महिलाप्रधान परिवारों को अधिक समय तथा आमदनी संबंधी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। महिलाप्रधान परिवारों का उपभोग खर्च इतना कम है कि वे वैयक्तिक उपभोग के लिए अधिक नहीं खर्च करते वे बच्चों से संबंधित वस्तुओं पर भी अधिक नहीं व्यय करते। अध्ययन दर्शाता है कि बच्चों की स्वास्थ्य देखभाल, प्राइमरी से मिडिल तक तथा सैकेंडरी शिक्षा भी महिलाप्रधान परिवारों में पुरुष प्रधान परिवारों की अपेक्षा वास्तव में कम है। यह भी देखा गया है कि ऐसे परिवारों में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों को कम लाभ मिलता है। अंत में ये महिलाप्रधान परिवार और गरीबी कल्याणकारी और गरीबी उन्मूलन योजनाओं के बावजूद परस्पर गहन रूप से जुड़े हुए हैं।

7.9.3 विद्युत भागवत

विद्युत भागवत ने भी एक अध्ययन किया है। यह अध्ययन विशेषत: 'महिलाओं के कार्य का परिवार में और परिवार से बाहर बदलते स्वरूप' के संदर्भ में है। यह अध्ययन पूणे शहर में किया गया। अध्ययन बताता है कि निम्न वर्ग की महिलाएँ मजदूरी वाले कार्य करने के लिए मजबूर हो जाती हैं क्योंकि अधिकांशतया उनके पति परिवार के खर्च में कोई योगदान नहीं करते। इसका कारण यह है कि वे गैर-जिम्मेदार, नशेड़ी या बेरोजगार होते हैं। इन महिलाओं को रोजी रोटी कमाने वाले की भूमिका निभानी पड़ती है परन्तु उन्हें परिवार के दूसरे कार्य भी करने पड़ते हैं। हो सकता है कि उच्च और मध्य वर्गीय कार्यरत महिलाएं परिवार के काम कम करती हों क्योंकि वे घरेलू नौकर रख सकती हैं। भागवत ने यह भी देखा कि कार्य का चयन न केवल श्रम के लिंगीय भेद के आधार पर किया जाता है अपितु जाति और सामुदायिक ढांचे के अनुसार भी किया जाता है। जाति आधारित व्यवसाय कम मजदूरी वाले होते हैं लेकिन महिलाएं ऐसे व्यवसाय मुख्यत: शिक्षा, निपुणता के अभाव में और अन्य सामाजिक विवशताओं के कारण करती हैं।

अनुभव से सीखें – 2

महिलाओं में गरीबी के लिए जाति तथा शिक्षा की क्या भूमिका है? विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित पुरुषों और महिलाओं से चर्चा करें और यह देखें कि किस प्रकार जाति व शिक्षा के घटकों को परिवर्तित किया जा सकता है ताकि महिलाएं अधिक समय तक विकास प्रक्रिया के निम्नतम स्तर पर न रहें। अपने निष्कर्ष एक कापी में लिखें।

यह भी बताया गया कि शहरीकरण की प्रक्रिया पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं पर अधिक दबाव डालती है। यह उन्हें फिर सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों की परिधि में धकेल देती है।

उन्होंने इसके समाधान हेतु कुछ सुझाव दिए हैं :

i) राज्य को स्वरोजगार तथा मजदूरी करने वाली महिलाओं के लिए विश्वसनीय और गारंटीशुदा सुरक्षित आमदनी प्रदान करने का ध्यान रखना चाहिए।

ii) आमदनी करने वालों और वास्तविक शिल्प के बीच एक संबंध होना चाहिए। यदि कोई महिला किसी शिल्प में दक्ष है तो उसे अधिक अवसर तथा उस क्षेत्र में व्यापक कार्य क्षेत्र मिलना चाहिए। इसके लिए प्रशिक्षण और नई तकनीक के समायोजन की आवश्यकता होती है। एस.ए.पी., एन.

ई.पी. तथा उदारीकरण से हमारे देश में नई तकनीक आ रही है। महिलाओं को उनके अनुरूप प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

iii) बहुत बड़ी संख्या में मेहनतकश महिलाओं के लिए सामुदायिक गतिविधियों में भागीदारी के अवसर प्रदान करने तथा साथ ही शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक राहत प्रदान करने एवं मनोरंजन एवं रचनात्मकता प्रदान करने वाले कार्यक्रमों की तत्काल आवश्यकता है।

iv) कार्य के अधिकार का अर्थ सुविधा तथा सम्मान होना चाहिए। शहरी केंद्रों में नागरिक सहकारी समितियों को मध्यवर्गीय शिक्षित महिलाओं की सहायता से सांस्कृतिक केंद्र, संग्रहालय, पुस्तकालय आदि स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि उन्हें ग्रामीण क्षेत्रों में ले जाया जा सके।

7.10 सारांश

महिलाओं को हाशिए पर रखने की बढ़ती समस्या तब तक दूर नहीं हो सकती जब तक लिंग भेद की गलत अवधारणा को परिवर्तित कर तथा महिलाओं के कार्यों का मूल्य बढ़ाकर उन्हें समाज की मुख्यधारा में शामिल नहीं किया जाता।

महिलाओं को रोजगार प्रदान किया जाना चाहिए। उन्हें अपने शिल्पों में दक्षता हासिल करने के लिए तथा अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में अधिक ज्ञान वाले कार्य करने हेतु नए शिल्पों को विकसित करने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। श्रम क्षेत्र में विभाजन को समाप्त किया जाना चाहिए। समान कार्य के लिए समान मजदूरी सख्ती से लागू होनी चाहिए।

सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में बच्चों के लिए आमदनी का सहारा देने, बच्चों के लिए और विशेषतया वृद्ध अभिभावकों और पेंशनभोगियों और बेरोजगार भत्ता पाने वालों के बच्चों की देखभाल के लिए सहारा देने की तरफ ध्यान देना चाहिए। गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में बेरोजगारों और गरीब महिलाओं द्वारा झेलने वाले नुकसानों को दूर करने के लिए भी ध्यान देने की आवश्यकता है।

महिलाओं की सहायता करने के लिए एक व्यापक योजना बनाने पर जोर देना चाहिए जिसकी नीतियाँ पुरुष और महिला को एक समान आमदनी करने वाला माने। इसके लिए उनके श्रम क्षेत्र और योग्यता को बढ़ाया जाना चाहिए। महिलाओं को उनके कार्य और प्रशिक्षण के अनुसार मजदूरी मिले तथा आमदनी और बच्चों की देखभाल में मदद मिलनी चाहिए।

7.11 शब्दावली

नारी परिवेश (पर्यावरण) संबंधी विचारधारा **(Eco-feminist)** : वे विद्वान जो यह मानते हैं कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं का प्रकृति से गहरा संबंध है।

समानता **(Equity)** : यह विचारधारा विकास की मुख्यधारा में महिलाओं को लाने का प्रयास करती है।

गरीबी रेखा (Poverty Line) : आय के स्तर के अनुसार या प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति ग्रहण की जाने वाली कैलोरी अर्थात् 2300 के स्तर के अनुसार गरीबी को परिभाषित करती है।

कल्याण (Welfare) : संभावित वर्ग अर्थात महिलाओं के लिए राहत कार्यक्रम

7.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

हेएजर, नोएलिनन एंड सेन, गीता (संपा), 1994, *जेंडर, इकॉनामिक ग्रोथ एंड पावर्टी : मार्केट ग्रोथ एंड स्टेट प्लानिंग इन एशिया एंड दि पेसेफ़िक*, काली फार वूमेन, नई दिल्ली।

सरस्वती राजू और बागची दीपिका, 1993 : *वूमेन एंड वर्क इन साउथ एशिया : रीजनल पैटर्न्स एंड पर्सपेक्टिव*, रोटलेज पब्लिकेशन : लंदन

समानता के संबंध में रिपोर्ट, सी.एस. डब्ल्यू आई, 1974, भारत सरकार प्रकाशन

इकाई 8 उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तन

रूपरेखा

8.0 लक्ष्य और उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 महिलाएँ और तकनीकी परिवर्तन
  8.2.1 पश्चिमी तकनीक और भारतीय महिलाएँ
  8.2.2 तकनीक का हस्तांतरण
8.3 महिलाओं की नारी सुलभता और तकनीक
  8.3.1 उच्चतम सामाजिक स्थिति और वास्तविकता
8.4 सही तकनीक
  8.4.1 प्रयोगकर्ता और तकनीक
8.5 विश्व परिप्रेक्ष्य तकनीक
  8.5.1 सार्वभौमिक स्वरूप और महिलाओं की आर्थिक स्थिति
8.6 समाकलित स्वरूप
  8.6.1 बाधाएँ और प्रवेश
  8.6.2 वर्ग क्रम व्यवस्था और अधिकार
8.7 शिक्षा और लिंगीय भेद
  8.7.1 साक्षरता और शिक्षा
  8.7.2 शिक्षा और महिलाएं
8.8 सारांश
8.9 शब्दावली
8.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.0 लक्ष्य और उद्देश्य

उत्पादन तकनीक तथा जीवन स्तर में सुधार संबंधी परिवर्तनों का समकालिक दुनिया में लिंग भेद के विषयों को समझने के साथ गहरा संबंध है। तीसरी दुनिया के विकास संबंधी दो विचारधाराएँ हैं इनमें से एक है कि तीसरी दुनिया के देशों को पश्चिमी देशों द्वारा अपनाए गए विकास और तकनीकी परिवर्तनों का अनुपालन करना चाहिए। किसी देश के लिए भारी औद्योगीकरण सहित सघन पूँजी वाली तकनीक वाला रास्ता एक स्वीकृत आदर्श है। सिफारिश की गई कि भारी औद्योगीकरण मॉडल से समृद्धि होगी। फिर भी हाल के वर्षों में कुछ ग्रामाणिक संकेत हैं कि इनके लाभ अधिकांश आबादी को नहीं पहुंचे।

समाज के निम्नतम स्तर के व्यक्ति को भ्रम में रखने का सिद्धांत सही सिद्ध नहीं हुआ। अनेक विद्वानों द्वारा 'टॉप डाउन' अधोगामी (ऊपर से नीचे तक) विकास के रूप को अस्वीकृत कर दिया गया तथा इसके स्थान पर निम्नतम व्यक्ति का उत्थान या सबसे निचले स्तर पर विकास वाले स्वरूप की सिफारिश की गई।

इस ईकाई को पढ़ने के बाद आप :

- उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तनों को समझ सकेंगे;

- तकनीकी परिवर्तन द्वारा महिला आबादी पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में जान सकेंगे;
- क्या सामान्यतः 'टॉप डाउन' अधोगामी विचारधारा में महिलाओं को कुछ लाभ हुआ है इस संबंध में चर्चा कर सकेंगे;
- क्या ग्रामीण निर्धन महिलाओं को कुछ लाभ हुआ है; और
- क्या उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तनों से हमें भविष्य के लिए कुछ शिक्षा मिलेगी, इससे परिचित हो सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

पूँजी की सघनता के मुकाबले श्रम की सघनता की पद्धतियों पर पक्ष-विपक्ष में चर्चा में तकनीकी परिवर्तनों और महिलाओं पर उनके प्रभावों का अध्ययनों में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन चर्चाओं में पुरुष और महिलाएँ महत्वपूर्ण विषय होता है। जैसा कि आप जानते हैं कि समाज में पुरुष और महिला संरचनात्मक श्रेणी है। इससे महिलाओं का अपने प्रति तथा पुरुषों का महिलाओं के प्रति रुख का पता लगता है, महिलाओं पर तकनीकी प्रभाव को जानने के लिए निम्नलिखित प्रश्न पूछना महत्वपूर्ण है :

i) औद्योगिक देशों से विकासशील देशों को हस्तांतरित तकनीक किस रूप में महिलाओं के जीवन, पुरुषों और महिलाओं के संबंधों तथा परिवार में उनकी भूमिका को प्रभावित करती है? क्या संशोधित तकनीक ने महिलाओं के बेहतर जीवन और संसार की रचना की है? क्या इससे उनका कार्यभार कम, रोज़गार के अवसर और उन्हें अपने जीवन में अधिक नियंत्रण तथा अधिकार प्राप्त हुए हैं?

ii) तकनीकी परिवर्तनों की प्रक्रिया में महिलाएँ किस प्रकार योगदान करती हैं? तकनीक में प्रगति होने पर महिलाओं के प्रशिक्षण प्राप्त करने में क्या कोई बाधा है? किस प्रकार महिलाएँ तकनीक के सुधार में तथा विकास में बड़ी भूमिका निभा सकती हैं?

8.2 महिलाएँ और तकनीकी परिवर्तन

आइए, अब हम महिला और तकनीक के बीच संबंधों की जाँच करें। तकनीक का अर्थ है सभी प्रकार के बड़े और छोटे औद्योगिक तथा तकनीकी उपकरण। कहने का अर्थ है विभिन्न प्रकार के कैलकुलेटर जैसे छोटे यांत्रिक उपकरणों से लेकर वाहन तथा वायुयान आदि बनाने वाले उद्योगों में प्रयुक्त होने वाली बड़ी-बड़ी मशीनें।

हम इस क्षेत्र में किए गए भावनात्मक तथा विशेष अध्ययनों की जांच करेंगे और यह देखेंगे कि वास्तविक स्थिति क्या है। इससे हमें शिक्षा क्षेत्रों में उपयोग सहित नीति निर्धारण विषयों को समझने में सहायता मिलेगी। ऐसा करते समय हम इस क्षेत्र में विभिन्न विचारधाराओं की भी जांच करेंगे जो इस प्रकार हैं:

i) महिलाओं संबंधी तकनीक (प्रौद्योगिकी)
ii) उपयुक्त तकनीक
iii) विश्व अर्थव्यवस्था
iv) सांस्कृतिक-राजनीतिक स्वरूप

ये विचारधाराएँ स्वत: कार्य प्रणाली प्रस्तुत करती हैं जो हमारे लिए विशेषत: शिक्षा के क्षेत्र में प्रस्तावित आधार सामग्री प्रदान करती है। चूंकि सामाजिक व्यवस्था में धारणाएं और पुरुष महिलाओं की प्रवृत्तियां प्रवेश कर जाती हैं अत: परिवार के अन्य व्यापक क्षेत्र भी वैसे ही हो जाते हैं। 1960 के दशक के आरंभ में ही विद्वानों को संदेह होने लगा था कि क्या भारी औद्योगीकरण की नीति से महिलाओं को कुछ लाभ होगा। महिलाओं से संबंधित विषयों के विशेषज्ञों ने बताया कि इन योजनाओं और नीतियों का प्राय: उनके उद्देश्यों और लक्ष्यों से कुछ लेना-देना नहीं होता। परिणामस्वरूप महिलाओं के आर्थिक योगदान को अनदेखा किया गया या कम आंका गया।

8.2.1 पश्चिमी तकनीक और भारतीय महिलाएँ

बताया गया कि लोगों को प्रदान की जाने वाली विकसित तकनीक पुरुषों और महिलाओं को समान रूप से उपलब्ध नहीं होती। उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तनों से पुरुषों को अधिक लाभ हुआ है। इसमें कृषि तकनीक में प्रशिक्षण और वह भी ऐसे क्षेत्रों में जहां पारंपरिक तकनीक में मुख्यत: महिलाओं का प्रभुत्व था, प्रशिक्षण शामिल है।

इस प्रकार नई विचारधारा के प्रति विभिन्न मतों के परिणामस्वरूप भारतीय महिलाओं की स्थिति में गिरावट आई, पुरुषों का महत्व स्थिर रहा और महिलाओं की स्थिति अधीनता वाली रही। इस क्षेत्र में कार्यरत विद्वानों ने मुख्य विषय के रूप में पहुँच वाले प्रश्नों पर जोर दिया। इस प्रकार उन्होंने बताया कि असमानता को समाप्त किया जाना चाहिए या समानता की स्थिति होनी चाहिए। इसका स्पष्ट निष्कर्ष यह है कि महिलाएँ निम्नस्तरीय स्थिति से इसलिए पीड़ित हैं क्यों कि उनकी तकनीक तक पहुँच प्रतिबंधित है। इसका उपाय शिक्षा और प्रशिक्षण के बंद या प्रतिबंधित मार्गों को खोलना था।

विचार करें 1

क्या आप समझते हैं कि पश्चिमी तकनीक भारतीय महिलाओं के लिए उपयुक्त और प्राप्य है? यदि नहीं तो क्यों? अपने विचार कापी में लिखें।

आरंभ में यह महसूस किया गया कि यह प्रक्रिया सामान्यतया स्वाभाविक और समस्या रहित हैं। फिर भी 70 के दशक तक यह धारणा पलटने लगी। बताया गया कि औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण की नीतियों से तीसरी दुनिया में किसी प्रकार के सामाजिक आर्थिक लाभ नहीं हो रहे हैं। इसकी और अधिक व्याख्या की गई कि तीसरी दुनिया में स्थितियां और भी खराब हो गईं क्योंकि इन अर्थव्यवस्थाओं से भारत सहित अन्य देश भी विकसित देशों की तकनीक, प्रशिक्षण और बाजारों पर निर्भर हो गए। इसी कारण विद्वानों ने यह मत प्रकट करना आरंभ किया कि सघन पूंजी वाली तकनीक पर अत्यधिक निर्भरता से गरीबी और महिलाओं की स्थिति में कोई सुधार नहीं होगा।

8.2.2 तकनीक का हस्तांतरण

परिवर्तन लाने के लिए महिलाएँ और विकास तथा तकनीक का हस्तांतरण पश्चिमी महिला समर्थकों का उत्साह दर्शाता है। वास्तव में यह कुछ विद्वानों द्वारा दिया गया तर्क है कि विकास की संकल्पना औद्योगिक देशों के उद्देश्यों को पूरा करती है। पुन: यह तर्क भी दिया गया कि पश्चिमी महिलावाद ने लगभग संपूर्ण जातिवाद, उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के तथ्य को अनदेखा कर दिया है। इसके अतिरिक्त पश्चिमी देशों की आवश्यकताएं तीसरी दुनिया के देशों से भिन्न होती हैं। इस प्रकार तीसरी

दुनिया के देशों में परिवार की संकल्पना पश्चिम से भिन्न होती है। विकास के स्वरूप को परिवार, बच्चों तथा वित्तीय आदतों में सांस्कृतिक भिन्नताओं की भूमिका का भी ध्यान रखना चाहिए।

क्या आप जानते है?-1

1980 के दशक तक शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में महिलाओं के आर्थिक योगदान को मान्यता मिलने लगी। इससे महिलाओं में गरीबी तथा उनकी उत्पादकता प्रभावित होने के बारे में चिन्ता होने लगी। तीसरी दुनिया में महिलाओं की उत्पादक भूमिका को स्वीकार किया गया। परिवर्तन के इस स्वरूप से मजबूत हुई असमानता का अध्ययन किया गया तथा महिला समर्थकों ने सुझाव दिया कि बिना जाँच के तकनीकी हस्तांतरण की स्वीकृति महिलाओं की उनके श्रम की पहचान बनाने में कोई सहायता नहीं करती।

इस प्रकार हमने देखा कि तकनीक पर विभिन्न अथवा वैकल्पिक विचारधाराएं बनी। अब हम इन विकल्पों पर विचार करेंगे।

8.3 महिलाएँ, नारी सुलभता और तकनीक

एक विचारधारा के सुझावों के अनुसार महिला मूल्यों को विकास प्रक्रिया में महत्वपूर्ण एवं केन्द्रीय भूमिका निभानी चाहिए। तकनीक में पुरुषों के प्रति झुकाव, वर्गक्रम तथा एक तरफ प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने वाला तथा दूसरी तरफ निवैयक्तिकरण (depersonalization) की तरफ ले जाता है।

तकनीक के नारी सुलभता के पक्षधर अनुभव करते हैं कि उत्पादन तकनीक में होने वाली प्रगति आर्थिक उत्थान, परिस्थितिकीय उपभोग तथा विकेन्द्रीकरण की अपेक्षा पुन: उसी दिशा में मानव मूल्यों को बढ़ाने वाली तथा वैयक्तिक लाभ की अपेक्षा आत्मानुभव और समग्र मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए होनी चाहिए।

तकनीक का यह मानवीय दृष्टिकोण परिवार में महिलाओं के शामिल होने पर आधारित है जहां वास्तव में कोई वर्गक्रम व्यवस्था नहीं होनी चाहिए अपितु उचित रूप से प्रोत्साहन होना चाहिए। वास्तविकता यह है कि वर्ग क्रमव्यवस्था में चाहे इसका रूप कुछ भी हो कमजोर पक्ष को ही दबाया जाता है।

इस संदर्भ में बार-बार आनेवाली विचारधारा है तकनीकी नवीनता और सैन्य तकनीक में नई प्रगति के बीच परस्पर संबंध। तकनीक का नारी सुलभता होने से माना जाता है कि वह कम हिंसावादी होती है जो वास्तव में युद्ध की संभावनाओं को कम कर सकती है। महिलाओं के महत्व को वर्तमान में घर और कार्य क्षेत्रों को विभाजित कर कम किया जा रहा है। महिलाओं के प्रभाव को बढ़ाने की और तकनीक के मूल्यांकन की नई प्रक्रिया नीति बनाने की आवश्यकता है। इससे नीतिगत निर्णयों में तथा तकनीक का महिलाओं के जीवन और संस्कृति पर पड़ने वाले प्रभाव के मूल्यांकन में महिलाएं शामिल हो सकेंगी।

इसके साथ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कार्य में वर्ग क्रम व्यवस्था की विशिष्टताओं को लगातार चुनौतियां मिल रही थी। कहने का तात्पर्य यह है कि मजदूरी वाले उत्पादक कार्य और बिना मजदूरी वाले गैर उत्पादक कार्य के बीच अंतर कम ही नहीं बल्कि समाप्त हो रहा था। गैर पश्चिमी पादरियों से भिन्नता रखने के लिए राजनैतिक-आर्थिक संगठनों के नए संसाधनों के रूप में महिलाओं के नेटवर्क तथा क्षेत्र को बढ़ाने की नीति अपनाई गई।

आईए हम विकास में भागीदार बनें
सौजन्य : सी.डब्ल्यू.डी.एस., नई दिल्ली

8.3.1 उच्चतम सामाजिक स्थिति व वास्तविकता

उपरोक्त दृष्टिकोण पूर्णत: वास्तविकताओं के अनुरूप संपूर्ण विश्लेषण नहीं करता। बल्कि यह स्पष्टता उच्चतम सामाजिक स्थिति का दृष्टिकोण है। इसकी जड़ें और मूल्य पश्चिमी हैं। पुन: महिलाओं के मूल्यों में व्यापकता और महिलाओं की प्रकृति की विश्व व्यापकता भी सही नहीं है। यह स्वरूप महिलाओं के मूल्यों को परिवार तथा तीसरी दुनिया के समाजों में काल्पनिक बनाता है। महिला और पुरुषों की संरचना व्यापक हैं और समकालिक समाज में भिन्न भिन्न होती है तथा इसका पुरुष और महिला में स्वरूप अपरिवर्तित रहता है। पुन: पुरुष और महिला के बीच दुरियां बढ़ा कर यह स्वरूप वर्गक्रम व्यवस्था की समस्या को उल्ट देता है उसको समाप्त नहीं करता। यदि महिलाएं पुरुषों के साथ कार्य नहीं करती और उनके साथ संबंध नहीं रखती तो वे किसके साथ अपनी योजनाओं को लागू करेंगी। सही तकनीक का स्वरूप अधिक वास्तविक है और हम इसे कैसे उपयोगी बनाएंगे।

8.4 "सही" तकनीक

सही तकनीक का स्वरूप तीसरी दुनिया की गरीबी को तकनीकी प्रयोग बढ़ा कर कम करने का प्रयास करता है। लेकिन यह औद्योगिक राष्ट्रों पर निर्भरता नहीं बढ़ता। इसके पीछे आम धारणा सघन पूंजी वाली तकनीक के प्रयोग को घटा कर स्थानीय संसाधनों के प्रयोग पर जोर देने की है। इसका जोर मुख्यत: पर्याप्त मात्र में तथा पहले से उपलब्ध संसाधनों पर है। महिलाओं के मामले में स्थानीय संसाधनों का अथवा उपयुक्त तकनीक का प्रयोग करने से निश्चित रूप से उनकी उत्पादकता में वृद्धि होगी जिससे दूसरे कार्यों के लिए उनके पास समय बचेगा तथा उनका उद्देश्य सामुदायिक विकास होगा।

> **अपने अनुभव से सीखें-1**
>
> गाँव में जाकर महिलाओं और पुरुषों से पूछें कि उन्हें कैसी तकनीक चाहिए। किसी अप्रचलित या नए विचार का पता लगाने पर अपनी कापी में लिखें।

उदाहरण के लिए, गाँवों में ईंधन की लकड़ी के लिए महिलाओं को काफी दूर जाना पड़ता है अत: कच्ची ईंट के बेहतर किस्म के चूल्हे का प्रयोग काफी उपयोगी है। इससे निश्चित रूप से महिलाओं को सहायता मिलती है। इसी प्रकार भंडारित अन्न को नष्ट करने वाले चूहे आदि, कीड़े-मकौड़े तथा फफूंदी के मामलों में इस तरह की गतिविधियों को रोकने वाली तकनीक से कम लागत वाली भंडारण सुविधा सहायक हो सकती है जो भोजन की उपलब्धता में वृद्धि करती है। इसके अतिरिक्त आटे और अनाज के लिए हस्तचालित पीसने वाली मशीनों के साथ-साथ धान से भूसा हटाने तथा तेल निकालने वाली मशीने भी हैं जिनसे महिलाओं को अनेक घंटे तक काम करने वाले कठिन श्रम से मुक्ति मिलती है।

इसी प्रकार सौर ऊर्जा, वायु ऊर्जा तथा बुगियों (boogies) की विधियों से खर्चीले व्यावसायिक ईंधन की लागत कम हो जाती है। इस सही तकनीक के समर्थकों द्वारा तकनीक के विकास में टॉप डाउन के निर्णय की आलोचना की गई है। इसका कारण यह है कि जब विकास की योजना बनाने वाले तथा इंजीनियर किसी विचारधारा को सही मानते हैं तो देखा गया है कि जो लोग इन पद्धतियों का वास्तव में प्रयोग करते हैं वे इन्हें विद्यमान स्थिति के अनुसार उचित नहीं पाते। उदाहरण के लिए सौर ऊर्जा चूल्हा ईंधन बचाने का उपकरण है। इसका एशिया और अफ्रीका में परीक्षण किया गया। अफ्रीका में महिलाओं ने अनुभव किया कि सौर चूल्हे काफी भारी हैं और सूर्य की किरणें प्राप्त करने के लिए उसे निरंतर स्थानांतरित करना पड़ता है। पुन: वे परिवार में खाना पकाने के लिए बहुत छोटे हैं। इस प्रकार ईंधन बचाने के हिसाब से इस तकनीक के अत्यधिक दोष हैं।

8.4.1 उपयोगकर्ता और तकनीक

फिर भी तकनीक का प्रयोग करने वालों की पूर्णतया सलाह से तकनीक का स्थानीय रूप से प्रयोग करने के लिए उसे बनाया जाता है तो भी यह एक सरल कार्य नहीं है। इसका कारण यह है कि हो सकता है कि महिलाओं श्रम का लिंगीय विभाजन के लिए किसी घरेलू तकनीक का सृजन करें जबकि दूसरी तरफ पुरुष किसी नई व्यापक तकनीक को अपनाना चाहे जिससे रोजगार के अवसर मिल सकें। इससे ऐसे क्षेत्रों में समस्याएँ हो सकती हैं जहां महिलाएँ अपनी आमदनी से घरेलू अर्थव्यवस्था में निवेश करती हैं और जहां महिला प्रधान परिवारों में काफी परिवर्तन आए हैं।

नीति निर्माताओं को महिलाओं के घरेलू कार्य और परिवार पर ध्यान केन्द्रित करने में भी समस्याएँ आती हैं। पुरुषों को परिवार का मुखिया माना जाता है और उन्हें कई प्रकार से उत्पादनकारी के रूप में देखा जाता है। दूसरी तरफ महिलाओं को घरेलू तथा उत्पादनकारी अभिकर्ता के रूप में देखा जाता है। ये स्वरूप नीति निर्माताओं की चिन्ता का मुख्य विषय हैं। ये तथ्य निर्विवादित हैं। तीसरी दुनिया के समाज में महिलाओं की भूमिका निश्चित रूप से भोजन बनाने, बच्चों की देखभाल करने जैसे कार्यों से जुड़ी हुई है। समस्या यह है कि यदि नीति के अन्तर्गत इन क्षेत्रों को सीमित किया जाता है तो राष्ट्रीय नीति में स्वत: ही महिलाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप महिलाओं पर जनसंख्या कार्यक्रमों और कल्याणकारी योजनाओं तथा फालतू समय के श्रमिक के रूप में ध्यान केन्द्रित किया जाता है। कला-शिल्प की संपूर्ण श्रेणियों का प्रयोग करने के लिए बहुत कार्य नहीं किया गया है जिससे महिलाओं को सभी विकास गतिविधियों की कमान मिल सके। यह समस्या अत्यधिक कठिन है क्योंकि मूलत:

महिलाओं को घरेलू श्रमिक और परिवार के सदस्य के रूप में जाना जाता है और कोई भी प्रश्न नहीं करेगा कि वे राष्ट्रीय आर्थिक राजनीतिक मंच नजर क्यों नहीं आती। इस विचारधारा के पक्षधर महसूस करते हैं कि महिलाओं को उच्च तकनीक की नीति योजना में शामिल किया जाना चाहिए। उन्हें ऐसी स्थिति में होना चाहिए कि वे अनुसंधान की कार्यसूची और सरकार द्वारा दी जाने वाली अनुदान सहायता आदि के चयन में अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर सकें। इस प्रकार यह महसूस किया गया कि पुरुष और महिलाएं जो तकनीक का प्रयोग करते हैं वे इसके नियंत्रणकर्ताओं पर निर्भर करते हैं।

8.5 विश्व परिप्रेक्ष्य व तकनीक

विश्व अर्थव्यवस्था का रूप इस बात पर बल देता है कि 'विश्व गांव' में मुख्य मुद्दे आर्थिक और अधिकार से संबंधित हैं। इसे 'नई मार्क्सवादी' विचारधारा कहा जा सकता है जो यह समझती है कि अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता रखने वाले राष्ट्रों के लिए ऐतिहासिक तथ्य बड़े कठिन हैं।

अत्यधिक चिन्ता यह है कि विकासशील देशों से सस्ता कच्चा माल और श्रम कैसे निर्यात किया जाए और उसका कैसे प्रयोग किया जाए। विश्व अर्थव्यवस्था के स्वरूप से पता चलता है कि पीछे बदलते वर्ग संबंधों में तकनीक का उत्पादन और उपभोग, राज्य नीति तथा अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक शक्तियों से गहरा संबंध रहा है। फिर भी हमने देखा कि विकास प्रक्रिया की भागीदारी में महिलाएं पिछड़ गई। अंतर्राष्ट्रीय पूँजी एकत्रीकरण (accumulation) असमानता को पैदा करनेवाली व उसे मजबूत करने वाली तथा महिलाओं को अधीनस्थ करने के लिए पुरुष प्रभुत्व को मज़बूत करनेवाली प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया ऐसे क्षेत्रों में भी है जहां प्रभुत्ववाद ने अधीनस्थता पैदा होने के नए क्षेत्रों की भी शुरुआत की है।

हमें पुन: इस बात का पता लगता है कि श्रम का लिंगीय निर्णय तथा महिलाओं का घरेलूपन पुरुषों द्वारा महिलाओं की प्रजनन क्षमताओं का नियंत्रण करने के लिए प्रयोग किया जाता है जहां पर ये प्रजनन को नियंत्रित नहीं कर सकते वहां महिलाओं को दूर किनारे कर दिया जाता है। ये स्वरूप परिवार के संबंध में तकनीकों और निर्णयों के लिए उपयोगी हैं।

8.5.1 सार्वभौमिक परिप्रेक्ष्य और महिलाओं की आर्थिक स्थिति

यह वैश्विक रूप समग्र आर्थिक नीति को निर्धारित करने की प्रक्रिया में हमें राष्ट्रीय सरकार और अंतर्राष्ट्रीय बाजार का परस्पर संबंध स्थापित करने में सहायता प्रदान करता है। यह हमें आवास, शिक्षा और ऐसे अन्य मामलों में सरकार के निर्णय पर ध्यान केन्द्रित करने में सहायता प्रदान करता है। सरकार किस प्रकार अपनी विकास नीतियां बनाती है, यह किस प्रकार खाद्य फसलों, नकदी फसलों तथा निर्यातमूलक फसलों की आवश्यकता में संतुलन बैठाती है? यह मौजूदा उत्पादन, जो वैश्वीकरण से प्रभावित होता है उसके निर्णय की भी चर्चा करता है। विश्व आर्थिक विचारधारा तकनीक की नारी सुलभ विचारधारा की अपेक्षा विकेंद्रित लघु क्षेत्र के कार्य का विस्तृत विवरण प्रदान करती है। वैश्विक आर्थिक विचारधाराएं स्पष्ट करती है कि यह आवश्यक नहीं कि विकेंद्रित और लघु क्षेत्र के कार्य केंद्रीयकृत विचारधारा के बेहतर विकल्प हो। इसका कारण यह है कि कार्य का उप-ठेका (Sub-Contracting) जो विकेन्द्रित तो है लेकिन समान रूप से या उससे अधिक शोषणकारी हो सकता है। इस विचारधारा में मुख्य चिन्ता परिवार पर वैश्वकीरण के प्रभाव की है तथा साथ ही क्या महिलाएं अपेक्षाकृत छोटी इकाइयों में कार्य प्रक्रिया पर नियंत्रण प्राप्त कर सकेंगी।

विचार करें-2

जहां तक महिलाओं की आर्थिक स्थिति पर वैश्विक परिप्रेक्ष्य का संबंध है महिलाओं के प्रति उनकी क्या विचारधारा है? क्या केवल महिलाओं को सामान्य हितों के लिए एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में देखना ठीक है। अपने विचार एक कापी में लिखिए।

महिलाएं और लघु उत्पादनकारी इकाइयां : क्या इससे महिलाओं को कार्य प्रक्रियाओं पर नियंत्रण प्राप्त करने में सहायता मिलेगी?
सौजन्य : सीएसआर, नई दिल्ली

विश्व अर्थव्यवस्था के पक्षधर महिलाओं को सामान्य हितों के प्रतिनिधि के रूप में देखते हैं और किसी भी रूप में परिवर्तन को तैयार नहीं है। अत:-यह पैरवी की जाती है कि हमें वैयक्तिक महिलाओं की उनके स्थान के संबंध में नकदी फसल और शहरी अर्थव्यवस्था के मिश्रित विद्यमानता की अपेक्षा परिवारों का अध्ययन करना चाहिए। सार्वभौमिक अर्थव्यवस्था के विचारकों ने महिलाओं के लिए प्रकरण तो बना दिया लेकिन जब वे परिवार को विश्लेषण की एक इकाई के रूप में प्रयोग करते हैं तो परिवार के अंदर ही प्रतिस्पर्धा तथा विभाजित हितों की व्याख्या करते हैं।

8.6 समाकलित परिप्रेक्ष्य

हमने नई मार्क्सवादी स्थिति और तकनीक की नारी सुलभता की जांच की है और समाकलित परिप्रेक्ष्य एक ऐसी विचारधारा प्रदान करता है जिसमें इनका कोई भी विचार नहीं है। इस विचारधारा को प्रस्तुत करने वाले विद्वानों का बुनियादी संबंध सीमित संख्या में वैज्ञानिकों और इंजीनियरों से है और तथ्य यह है कि महिलाएँ वैज्ञानिक नेतृत्व की स्थिति में है। इस विचारधारा के पक्षधरों का विचार है कि महिलाएँ तकनीक के फायदों का बेहतर इस्तेमाल कर सकती हैं और विकास प्रक्रिया में भागीदार बनने में अधिक सक्षम हैं। ये विचारक अनुभव करते हैं कि विकास में महिलाओं के एकीकरण से एक समाज की

बुनियादी स्थितियों में परिवर्तन आएगा। इसका कारण यह है कि विकास में महिलाओं के पर्याप्त रूप से भागीदार होने से श्रम और अधिकार के वर्तमान् लिंगीय निर्णयों और असमानता के अन्य रूपों पर प्रश्न खड़े होंगे। यह स्वरूप विकास में महिलाओं की अत्यधिक भागीदारी को नहीं मानता जिसका अर्थ है तकनीक और उद्योग का महिलाकरण। इसकी बजाय यह विकास की प्रत्येक प्रक्रिया पर तथा कार्य जगत पर महिलाओं के प्रभाव का सुझाव देता है। यह संभव है कि समाजवादी स्वरूप अपनी बात से पूंजीवादी संसार की असमानताओं को समाप्त करने की पक्की कल्पना करे। पर यह संभव नहीं है कि कोई व्यक्ति ऐसे किसी उदाहरण से संतुष्ट हो जाए कि तकनीक के क्षेत्र में उनका पालन करने से यह महिलाओं के लिए अधिक औपचारिक है। फिर क्या विकल्प है? गैर पारंपरिक कार्यों और व्यवसायों में वैज्ञानिक शिक्षा के प्रवाह से महिलाओं का सम्मिलित होना भागीदारी की एक संभावना है। अत: ऐसी शिक्षा में आने वाली रूकावट को हटाया जाना चाहिए। इस प्रकार समन्वयकारी स्वरूप से पता चलता है कि तकनीक में महिलाओं की भागीदारी इतनी कम क्यों होती है। यह इसे भी देखने का प्रयास करता है कि विज्ञान और तकनीक में शिक्षा और रोजगार के लिए महिलाएं कम क्यों आती हैं। यह स्वरूप लिंगीय असमानता को उलटने या संतुलित करने का भी प्रयास करता है।

समाकलित परिप्रेक्ष्य के प्रस्तावक अपना ध्यान स्वभाविक स्थिति पर केन्द्रित करते हैं कि तकनीकी दक्षता प्राप्त करना और सामाजिक तथ्य जो मानसिक स्थिति के अनुकूल न हों, पुरुषों और महिलाओं का यह मानना है कि वैज्ञानिक क्षेत्र अनुभव केवल पुरुषों के लिए ही है।

परिवर्तन की कुंजी शिक्षा की संस्कृति और नीतियों में तथा कार्यस्थल में है। लिंगीय स्वरूप के पक्के अनुकूलन को बदलने के लिए सुझाव दिया जाता है कि उन तथ्यों को समझना जरुरी है जो लिंगीय पूर्वाग्रह को बढ़ाते हैं और पुनरुत्पादन करते हैं।

इसका अभिप्राय है कि यह निम्नलिखित के लिए अनिवार्य है :

1) सभी व्यापक सामाजिक परिस्थितियों में सांस्कृतिक परंपरा के रूप में लिंगीय सोपानक्रम को हटाना।

2) एक समान वातावरण में शिक्षा और रोजगार का प्रसार करना जिससे लोगों की धारणा में परिवर्तन हो। सोपानक्रम को आरंभिक मानवीय व्यवहार का अवशेष माना जाता है। विद्यालयों और कार्यस्थलों को इन सुविधाओं से महिलाओं को दूर रखने वाली परंपराओं का पालन नहीं करना चाहिए।

3) संस्थाओं को अच्छे विचार, आदर्श तथा मूल्यों को स्थापित करने में और लोगों को इन मूल्यों तथा नियमों को अपनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए।

8.6.1 बाधाएँ और पहुँच

यह ध्यान रखना चाहिए कि महिलाएँ सामाजिक बाधाओं के कारण अनेक कार्य नहीं कर सकतीं या अनेक संस्थाओं में प्रवेश नहीं ले पातीं। इससे उन्हें उपलब्ध होने वाले अवसर सीमित हो जाते हैं। शिक्षा को उस गौण लक्षण से अधिक मानना चाहिए जो तकनीक को उच्च या निम्न बनाता है और इसे वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्रों में महिलाओं के रोजगार के लिए महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में लिया जाना चाहिए।

तब प्रश्न उठता है शिक्षा तक पहुँचने और उसके द्वारा तकनीक तक पहुँचने का जो उसे लिंगीय समानता की तरफ ले जाती है। इससे ऐसे क्षेत्रों के लिए सामाजिक या पारंपरिक परिवर्तन भी उत्पन्न होते हैं जो लिंगीय न्याय में बाधा बनते हैं। इन्हें समझाना काफी कठिन होता है क्योंकि ये क्षेत्र पुरुषों के गढ़ होते हैं। कार्यस्थल के रूख और स्थितियाँ जिसमें पद की संख्या भी शामिल है उनमें परिवर्तन के लिए राजनीतिक व सांस्कृतिक स्तर पर अत्यधिक कार्य का होना आवश्यक हैं। जो इस कार्य को करना चाहते हैं उन्हें लोगों को गंभीरता से संतुष्ट करना होगा। उन्हें राष्ट्र राज्य से लेकर परिवार और संपूर्ण पारिवारिक अनेक स्तरों पर कार्य करना होगा।

राज्य द्वारा पारित कानूनों को लागू करने के लिए सरकारी मशीनरी को भी संवेदनशील बनाने की आवश्यकता है। राजनीतिक-नौकरशाही तंत्र संबंधित संस्थाओं के विभिन्न रूपों और स्थितियों में परिवर्तनों को सक्रिय कर सकते हैं। फिर भी राजनीतिक संरचना इन परिवर्तनों को आरंभ करती है तथा ये परिवर्तन परिवारों में और काम में निचले स्तर पर होते है। इसलिए महिलाओं को इन कानूनों की जानकारी होना महत्वपूर्ण है तथा इन्हें अपने पक्ष में लागू करवाने के लिए उन्हें संगठित होना चाहिए। फिर भी राजनीतिक पदों पर महिलाओं का प्रतिनिधित्व बहुत कम है तथा किसी भी बड़े परिवर्तन का गहन विरोध होने से सभी यही मानते है कि राजनीतिक इच्छा शक्ति एक महत्वपूर्ण तथ्य है।

8.6.2 वर्गक्रम व्यवस्था (Hierarchy) तथा अधिकार

इस प्रकार कुछ विद्वानों द्वारा जोर दिया गया कि भारत में आर्थिक स्थिति से वर्गक्रम व्यवस्था की विद्यमानता है और विपरीत अधिकारों का आयाम वैध है तथा लाभकारी माना गया है। यह तार्किक नियम का उल्लघंन है। परंतु न केवल पुरुष इस विचार का समर्थन नहीं करते अपितु महिलाएं भी काफी रूढ़िवादी हैं और इस वर्गक्रम व्यवस्था का विरोध नहीं करती। राष्ट्रीय स्तर विरोध भी अनेक कठिनाइयां हैं। विकासशील देशों में लोगों को यह समझाना बड़ा कठिन है कि महिलाओं को वर्तमान की अपेक्षा शिक्षा के और अच्छे अवसर मिलने चाहिए। विज्ञान और तकनीक क्षेत्र में अच्छे अवसर के एकमात्र प्रश्न पर हम पाते हैं कि भारत में निचले स्तर पर गिरावट लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की काफी अधिक है। लड़कियों को आरंभ से ही परिवार के सभी कार्य करने के लिए कहा जाता है और उन्हें परिवार की सहायता के रूप में माना जाता है। इस प्रकार प्रगतिशील तकनीक का प्रयोग करने के लिए इन लड़कियों का शिक्षित होना अनिवार्य है और इसके लिए संस्कृति धारणाओं में परिवर्तन करना होगा। इस विषय पर किसी महानगर में शिक्षित और पढ़ी लिखी महिलाओं से चर्चा की जा सकती है क्योंकि छोटे या गांव के स्तर पर लिंगीय समानता और तकनीक तक पहुंच के विचारों को उपयुक्त रूप से समझने की संभावना नहीं है।

अपने अनुभव से सीखें-2

नजदीक के गाँव के किसी विद्यालय में जाइए और जाँच कीजिए कि अध्यापक लड़कों और लड़कियों से कैसे व्यवहार करते हैं। कारण जानने की कोशिश कीजिए कि क्यों लड़की को अच्छी भूमिका नहीं दी जाती?

कुछ विद्वानों का जोर देकर कहना है कि शिक्षा के प्रसार से विकासशील देशों की समस्या हल नहीं होती। सभी राजनीतिक नेता घोषणा करते हैं कि वे शैक्षिक आधार बढ़ाने का प्रयास करते हैं तो ये उनकी अपनी समझ है कि इस तरह के विस्तार की अपनी समस्याएं हैं। फिर हम देखते हैं कि अत्यधिक

शिक्षित लोग बेरोजगार हैं। इससे शिक्षा प्रसार में रूकावट होती है। फिर भी शिक्षा पर जो सीमित राशि खर्च की जाती है तब ऐसे क्षेत्रों की सुविधा पहले पुरुषों द्वारा उठाई जाती है। महिलाएं विभिन्न सामाजिक परंपराओं के कारण पीछे रह जाती हैं। इस प्रकार कार्यस्थलों पर महिलाओं को रोजगार अवसर न मिलने का यह एक और कारण बताया जाता है। फिर भी आज यह तीसरी दुनिया के विकास शील देशों के लिए अनुचित तर्क है।

8.7 शिक्षा और पुरुष व महिलाएँ

शिक्षा व पुरुष तथा महिलाओं पर परिचर्चा से प्रस्तुत स्वरूप की झलक मिलती है। फिर भी जब यह लिंगीय समानता के लिए परिवर्तन रूप में शिक्षा प्रक्रिया के रूप में आता है तो हम पाते हैं कि सही दिशा में इसमें कोई महत्वपूर्ण परि न नहीं हुआ है। समस्या यह है कि विद्यालय संपूर्ण अनुकूलन प्रक्रिया का एक हिस्सा मात्र है और माज व्यवस्था इस देश में अनेक धारणाओं की जड़ है जो कई शताब्दियों से चलती आ रही है।

क्या आप जानते हैं?-2

विद्वान लोग यह स्पष्ट करने का प्रयास कर रहे हैं कि मिथों और प्राचीन महाग्रंथों के विशेषतया भारत में नायक पुरुष रहे हैं। यह धारणा वेदों और उपनिषदों में भी दिखाई देती है। महाग्रंथों में राम और कृष्ण रामायण और महाभारत के मुख्य नायक थे। प्राय: महिलाओं को विवाद, कलह और समस्याओं का केंद्र बनाकर समस्या के रूप में चित्रित किया गया है (जैसे सीता, दमपंती) आदि।

इस प्रकार केवल शिक्षा में परिवर्तन करना ही लिंगीय समानता के लिए समस्या का क्षेत्र है। विद्वानों ने इस तथ्य का भी पता लगाया है कि विद्यालय पहले ही मौजूद असमानता को फैलाते हैं और निम्नलिखित के कारण उसे और मजबूत करते हैं :

i) ज्ञान की प्राप्ति में भेदभाव

ii) विद्यमान असमानता को उचित बताना।

फिर शिक्षा में उपलब्ध अवसरों ने महिलाओं की बेरोजगारी को कम नहीं किया है और न ही उनसे पुरुष और महिलाओं की मजदूरी का अंतर कम हुआ है और न ही इन्होंने विज्ञान तथा तकनीक क्षेत्र में महिलाओं की संख्या में वृद्धि की है। फिर इनके लिए जो महिलाएं इस क्षेत्र में आई हैं तो उनके लिए दो स्तरीय व्यवस्था बनाई गई जिसमें से महिलाओं ने निम्नतर और कम फायदे वाले स्तर को अपनाया। यह पश्चिम और विकासशील दोनों समाजों के लिए सत्य है। इस बारे में भी संदेह है कि महिलाएं स्थापित वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रवेश के लिए योग्य हैं क्योंकि पूंजीवाद की संपूर्ण रचना सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने वाली मानवीय होने की अपेक्षा प्रतिस्पर्धात्मक है। इस प्रकार महिलाओं के विरुद्ध जैविक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों से पक्षपात हटाने की आवश्यकता है।

महिला पुरुष पूर्वाग्रह से कहीं भी संघर्ष करने के लिए इकट्ठा होना
सौजन्य : सी.एस.आर., नई दिल्ली

कुछ विद्वान अनुभव करते हैं कि शिक्षा में केवल पक्षपात झलकता है। इसका कारण यह है कि शिक्षा समाज में पहले से विद्यमान पक्षपात पर ही जोर देती है। अत: केवल शिक्षा से ही बड़े परिवर्तन की आशा करना व्यर्थ है। अत: बड़ी गहराई से अनुभव किया जाता है कि व्यवस्था में समग्र रूप से परिवर्तन किया जाना चाहिए जो पुरुष मूल्यों को दर्शाने वाला न हो। जो विद्वान सही या उपयुक्त तकनीक के पक्ष में तर्क देते हैं और शिक्षा के पुरुष झुकाव वाली व्यवस्था की आलोचना करते हैं वे यह भी अनुभव करते है कि ऐसे नकल करने वाली शिक्षा प्रणाली से लिंगीय समानता नहीं आती। वे स्वयं महिलाओं की स्थानीय तकनीक में रुचि रखते है और उन्हें ही उनका कार्यक्रम बनाना चाहते हैं। इन स्वरूपों से शिक्षा का उसी में से रूपांतरण करना होगा तथा एक नई व्यवस्था शिक्षा प्रणालियों का विकास करना होगा।

8.7.1 साक्षरता और शिक्षा

जब महिलाएं पढ़ी लिखी और शिक्षित नहीं होंगी तो अपने भाग्य को बदलने या नीति संबंधी निर्णयों को प्रभावित करने में उनका प्रभाव बहुत कम रहेगा। यह कार्य कैसे किया जा सकता है और वास्तविक लिंगीय समानता कैसे बनाई जाए इसके लिए काफी सैद्धांतिक कार्य किया जा चुका है। इनमें से कुछ क्षेत्रों को हम अंतिम रूप से बदलते हैं।

आइए, हम उन तीन क्षेत्रों की जांच करें जो महिलाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले तीन तथ्यों पर प्रकाश डालते हैं। ये तीन क्षेत्र इस प्रकार हैं :

i) विद्यालयों में महिलाओं का जल्दी प्रवेश सुनिश्चित करना

ii) शिक्षण परंपरा में परिवर्तन कर उचित शिक्षा प्रदान करना

iii) महिलाओं की शिक्षा तथा उसके लिए राजनीतिक कार्यक्रम।

आइए, हम एक-एक करके इन पर चर्चा करें।

8.7.2 शिक्षा और महिलाएँ

शिक्षा का अर्थ महिलाओं के लिए पुरुषों जैसा नहीं होता। इसका उन्हें कोई प्रत्यक्ष फायदा नहीं होता जैसा कि पुरुषों को होता है। सांस्कृतिक और पारिवारिक अपेक्षाएं होती हैं कि महिलाएं घरेलू और प्रजनन का कार्य संभाले। इन धारणाओं से विद्यालय में उनकी संख्या कम होती है, उपलब्धियां कम रहती है। बीच में ही पढ़ाई छोड़नेवाले महिलाओं की दरबहुत अधिक है। परिवार के दायित्वों को पुरुष और महिला दोनों द्वारा बांटने में समाज को अपनी धारणा में परिवर्तन करना होगा ताकि महिलाओं को शिक्षा एवं अपनी दक्षता में सुधार के लिए समय मिल सके। यह ज्ञान आधारित उद्योगों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यदि महिलाओं की शिक्षा में किए गए निवेष से वेतन वाले रोजगार उपलब्ध होते हैं तो लोग इसमें निवेष करेंगे। यदि ऐसा नहीं होगा तो वे इसमें निवेश नहीं करना चाहेंगे।

इस प्रकार वेतन वाले रोजगार महिलाओं की शिक्षा की प्रत्यक्ष उपयोगिता के लिए तथा घरेलू स्थिति में उनके योगदान को परिवार द्वारा अनुभव करना बहुत महत्वपूर्ण है। ये तथ्य लड़कों और लड़कियों के लिए शिक्षा में निवेश के बारे में पुनर्मूल्यांकन की तरफ ले जाते हैं। यदि लड़कियों की शिक्षा से उन्हें वेतन वाले रोजगार मिलते हैं तो लड़कियों की शिक्षा प्राप्त करने की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। हम देखते हैं कि पुरुषों के सोपानक्रम की रचना तथा समाज द्वारा इसे मानने में शिक्षा और रोजगार गहराई से जुड़े हुए हैं।

उदाहरण के लिए लेटिन अमेरिका में लेटिन अमेरिकन वित्तीय आयोग (सी.ई.पी.ए.जैड, 1983) ने अध्ययन में पाया कि संसार के इस भाग में महिलाओं में अत्यधिक अशिक्षा है और शिक्षा छोड़ने में लड़को की अपेक्षा उनकी संख्या अत्यधिक है यह अंतर ग्रामीण क्षेत्रों और विशेषत: वर्ग और नैतिक असमानता वाले देशों में और भी अधिक है। यह तर्क दिया जाता है कि इसे सरकार द्वारा माध्यमिक और उच्चत्तर शिक्षा में अधिक निवेश करके कम किया गया।

इलियट और केली (1982:236) ने देखा कि यदि एक बार असमानता स्थापित हो जाए तो उसे मिटाना बहुत कठिन होता है। एक बार जब कोई वर्ग नेतृत्व करता है तो उसे उलटना बहुत कठिन है। पक्षपात वाली नीतियों द्वारा प्राकृतिक लिंगीय भेदों में असमानता करने के बाद उनको पलटने वाला कोई प्रभाव नहीं है। महिलाओं में कम शिक्षा स्तर जारी है और कम वेतन वाले व्यवसायों में उनकी संख्या बढ़ती जा रही है।

शिक्षा का पर्यावरण और महिलाएँ : महिलाओं के लिए लिंगीय समानता को स्वीकृत कराने के लिए हम शिक्षा के वातावरण को कैसे परिवर्तित कर सकते हैं? कुछ सुझाव इस प्रकार हैं — नई पाठ्यक्रम वाली नीतियां, गैर-लिंगीय भेदवाली पाठ्य-पुस्तकें तथा महिलाओं के लिए गणित संबंधी निर्देश। फिर भी संपूर्णतया पुनर्विचार तथा स्थिति को बदलने के बिना इस सबसे अधिक अंतर नहीं पड़ेगा। इसके लिए अत्यधिक राशि के साथ व्यापक राजनीतिक कुशलता की भी आवश्यकता होगी। उदाहरण के लिए, भारत में उच्च शिक्षा में लड़कियों की संख्या अच्छी है लेकिन कृषि और वन्य शिक्षा में उनकी संख्या

कम है। इस प्रकार इन क्षेत्रों में पुरुषों का आधिपत्य है और इस क्षेत्र में वे ही कार्यक्रम बनाते हैं तथा पारंपरिक अलगाव के कारण उन्हें महिलाओं के विषयों के बारे में कम समझ है। यदि योजनाकारों और नीति निर्माताओं को संतुष्ट किया जा सके कि इन क्षेत्रों में तकनीकी रूप से महिलाओं में भी अधिक हिम्मत क्षमता है और उन्हें भी शिक्षित किया जा सकता है तभी ऐसे कार्यक्रमों के लिए अधिक राशि खर्च की जाएगी।

परिवर्तन और लिंगीय समानता : लिंगीय समानता वाले कार्यक्रम कैसे हो सकते हैं? पाया गया कि महिलाओं में उच्च शिक्षा से कम प्रजनन होता है। इससे बच्चों के जीवन और स्वास्थ्य पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ये परिणाम उत्साहवर्धक हैं। परंतु ऐसे अध्ययन को विद्यमान सामाजिक धारणाओं को पक्का करने वाली स्थिति को बदलने वाले अध्ययन के साथ सहारा देने की जरूरत है। राजनीतिक समर्थन महिलाओं को घर में रखने वाले पारंपरिक धुरी के साथ नहीं होना चाहिए। इस प्रकार निम्नलिखित के साथ संबंध के परिणाम के मूल्यांकन करने की आवश्यकता है।

i) महिलाओं की शिक्षा पुरी करने की आयु

ii) शिक्षा आरंभ करने की आयु, बच्चों का कल्याण और क्रम प्रजनन

iii) कृषि और देश की अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में महिलाओं के विषयों को बदलने के नकारात्मक प्रभाव और खर्च।

8.8 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि लिंगीय असमानता को बदलने के लिए तकनीक तथा प्रशिक्षण प्रदान करना ही काफी नहीं है। शिक्षा एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिस पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। फिर भी इस तथ्य का संकेत दिया गया है कि संपूर्ण क्षेत्र संभावनाओं और सामर्थ्य तथा उलझनों से घिरा हुआ है। कार्य एक है जिसे उच्चतम राजनीतिक स्तर से लेकर नीचे परिवार के स्तर पर संभाला जाना है। हमें आवश्यकता है एक सामाजिक पुनर्जागरण की जहां महिलाओं को उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तन के साथ अधिकारसंपन्न बनाया जाए।

8.9 शब्दावली

पहुंच **(Access)** : किसी विशेष तकनीक को प्राप्त करने की योग्यता

विश्व परिप्रेक्ष्य **(global perspective)** : संपूर्ण विश्व की आर्थिक शासन व्यवस्था और समाज को ध्यान में रखना

वर्गक्रम, सोपानक्रम **(hierarvchy)** : स्तर की व्यवस्था के अनुसार समाज/संगठन का क्रम

उपरि स्तर : जिन लोगों के लाभ के लिए योजना या नीति बनाई जाती है उनका ध्यान किए बिना बड़े संगठनों और

व्यक्तियों को ध्यान में रखकर योजना बनाना। धीमी गति की योजना जरूरतमंदो को मामूली लाभ देने वाली बड़ी-बड़ी नीतियां और योजनाएं

8.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बुर्के सी. सुसन एंड वारेन बी.के. " एक्सेस इज़ नाट एनफ : जेंडर पर्सपेक्टिव आन टेक्नालॉजी एंड एजुकेशन, इन टिंकर Irene (1990). *पर्सिस्टेंट इनइक्विलिटीज : वूमेन एंड डवलपमेंट*, बुल्डर कोलोरेडो वेस्टविव प्रेस

चार्लटन, सू एलन, (1984), *वूमेन इन थर्ड वर्ल्ड डवलपमेंट*, बुल्डर कोलोरेडो : वेस्टविव प्रेस

स्टाट, एच (1974), *डज़ सोशलिज्म लिब्रेट वूमेन?* वास्टन बीकन

इकाई 9 नियोजित आर्थिक विकास

रूपरेखा

9.0 लक्ष्य और उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
  9.1.1 आर्थिक कारक
  9.1.2 गैर-आर्थिक कारक
9.2 संवृद्धि की कार्यनीति
  9.2.1 संतुलित संवृद्धि
  9.2.2 असंतुलित संवृद्धि
9.3 विकास के मॉडल
  9.3.1 विकास का नेहरूवादी मॉडल
  9.3.2 गांधीवादी मॉडल
  9.3.3 राव-मनमोहन मॉडल
9.4 नियोजित आर्थिक विकास
  9.4.1 भारत में आर्थिक नियोजन का उद्देश्य
  9.4.2 भारत में आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएं
9.5 पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य
  9.5.1 कारगर आर्थिक नियोजन
  9.5.2 बढ़ती बेरोजगारी
  9.5.3 संपदा और आमदनी का पुनर्वितरण
9.6 आर्थिक नियोजन के दीर्घकालिक उद्देश्य
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.0 लक्ष्य और उद्देश्य

बीसवीं सदी के छठे दशक तक आर्थिक विकास को आर्थिक संवृद्धि के तुल्य माना जाता था। मगर अब इसका अर्थ संवृद्धि के साथ कुछ विशेष महत्वपूर्ण परिवर्तनों में लगातार परिवर्तन माना जाता है जो जन कल्याण को निर्धारित करते हैं।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- आर्थिक विकास में योगदान करने वाले आर्थिक और गैर-आर्थिक कारकों का विश्लेषण और वर्णन कर सकेंगे;
- विकासशील देशों के संबंध में संवृद्धि की कार्यनीतियों को स्पष्ट कर सकेंगे;
- विकास के माडलों को स्पष्ट कर सकेंगे;
- भारत में आर्थिक विकास के उद्देश्यों और योजनाओं का वर्णन कर सकेंगे; और
- अन्य उद्देश्यों को किस प्रकार उपेक्षित कर दिया गया, इस पर प्रकाश डाल सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास में आर्थिक और गैर-आर्थिक दोनों तरह के कारक योगदान करते हैं। मगर आर्थिक कारक ही सबसे निर्णायक हैं:

9.1.1 आर्थिक कारक

इनमें मुख्य इस प्रकार हैं:

i) पूंजी निर्माण : अन्य विकासशील देशों की तरह भारत का बाजार छोटा और सीमित था, जो बड़े पैमाने पर पूंजी निवेश को बढ़ावा देने के लिए पर्याप्त नहीं था। बहरहाल भारत द्वारा खुली आर्थिक नीति अपनाने से इस स्थिति में सन् 1990 में गुणात्मक परिवर्तन आने लगा है।

ii) बिक्री योग्य बेशी कृषि उपज : एक विकासशील अर्थ-व्यवस्था में बिक्री योग्य बेशी कृषि उपज का अपना महत्व है क्योंकि इसी पर शहरी औद्योगिक आबादी आश्रित रहती है। अर्थ-व्यवस्था के विकास के साथ-साथ शहरी जनसंख्या का अनुपात बढ़ता है तो खाद्यान्न उत्पादन के लिए कृषि पर दबाव भी बढ़ता जाता है। इस मांग की पर्याप्त रूप से पूर्ति जरूरी है अन्यथा इसके फलस्वरूप शहरी क्षेत्रों में भोजन की कमी होने से विकास रुक जाएगा।

iii) विदेश व्यापार : विदेश व्यापार उन देशों के लिए बड़ा लाभकारी साबित हुआ जिन देशों ने अपेक्षतया कम समय में उद्योगों की स्थापना कर ली थी। इन देशों ने देर-सबेर अपने औद्योगिक उत्पादों के लिए अंतरराष्ट्रीय बाजार में अपनी जगह बना ली। इसलिए विकासशील देश को पूंजी निवेश के साथ-साथ औद्योगिक उत्पादों के मामले में यथाशीघ्र आत्म-निर्भर बनने का प्रयास ही नहीं करना चाहिए। बल्कि इसके अलावा उसे अपने उद्योगों का विकास इतना उच्च स्तरीय करने का प्रयास भी करना चाहिए कि समय आने पर उसके विनिर्मित उत्पाद प्रधान निर्यात का दर्जा पा सकें।

9.1.2 गैर-आर्थिक कारक

इनमें हम निम्न कारक शामिल कर सकते हैं:

i) मानव संसाधन: आर्थिक विकास में जनसंख्या एक महत्वपूर्ण कारक है। उत्पादन के लिए अनिवार्य श्रमशक्ति आदमी से ही मिलती है और अगर किसी देश का श्रमिक कार्यकुशल और दक्ष है तो उसके आर्थिक विकास में उसका योगदान निश्चित ही अधिक होगा।

ii) तकनीकी जानकारी और सामान्य शिक्षा: वैज्ञानिक और तकनीकी प्रौद्योगिकी में प्रगति के साथ-साथ मानव उत्पादन की अत्याधुनिक तकनीकों की खोज कर लेता है जो उत्पादकता के स्तर में उत्तरोत्तर वृद्धि लाते हैं। टी.डब्लू.शुल्ज, ए.के. सेन और कुछ अन्य विद्वान पिछले कुछेक वर्षों से यह पैरवी कर रहे हैं कि आर्थिक विकास के लिए मानव पूंजी में निवेश अत्यंत महत्वपूर्ण है। (टी. डब्लू. शुल्ज "इनवेस्टमेंट इन ह्युमन कैपिटल," दि अमेरिकन इकोनोमिक रिव्यु; वाल्यूम संख्या 1, पी. 3; मार्च 1961; और ए.के.सेन; "इकोनोमिक अपरोचिज टू एजुकेशन एण्ड मैनपावर प्लानिंग", इंडियन इकोनोमिक रिव्यु; न्यु सीरिज; वाल्युम 1, 1966)

iii) सामाजिक संगठन: दोषपूर्ण सामाजिक संगठन जब भी प्रगति और विकास के लाभों को समाज के कुछ विशेष अभिजात्य जन समूहों को हथिया लेने का अवसर देता है तो जन साधारण में राज्य के विकास कार्यक्रमों के प्रति विरक्ति, उदासीनता सी पैदा हो जाती है। यह विकास नियोजन के समूचे दौर में भारत के अनुभव से स्पष्ट हो जाता है। कृषि के विकास के लिए जो नई कार्यनीति अपनायी गई उसने एक धनाढ्य कृषक वर्ग को जन्म देकर ग्रामीण क्षेत्र में भारी विषमता पैदा कर दी है।

विचार कर 1

विकास में और आर्थिक कारक कितने महत्वपूर्ण हैं? क्या आप इस तरह के अन्य कारकों के बारे में सोच सकते हैं? इनकी सूची अपनी नोटबुक में बनाएं।

iv) विकास की इच्छा: रिचर्ड टी. गिल के अनुसार: "बात यह है कि आर्थिक विकास एक यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है; यह सिर्फ मिले जुले कारकों का साधारण जोड़ नहीं है। यह अंतत: एक मानव उद्यम है। अत: सभी मानव उद्यमों की तरह इसका परिणाम भी अंतत: उन व्यक्तियों की दक्षता, गुणवत्ता और दृष्टिकोणों पर निर्भर करेगा जो इसमें भाग लेते हैं।" (रिचर्ड टी. गिल. आर्थिक विकास भूत और वर्तमान, नई दिल्ली, 1965 पृ: 19)

9.2 संवृद्धि की कार्यनीति

अविकसित अर्थव्यवस्था में बाजार का आकार छोटा होने से निवेशकर्ताओं के लिए यह एक गंभीर समस्या बन जाती है। आर्थिक प्रगति की प्रक्रिया में संतुलन का महत्व कृषि और विनिर्माण मैनुफैक्चरिंग उद्योगों के बीच संबंध के स्वरूप से स्पष्ट हो जाता है। इसीलिए दोनों क्षेत्रों में वृद्धि-विकास के क्रिया-कलापों में तालमेल बिठाने की जरूरत है, अन्यथा एक क्षेत्र में पिछड़ापन दूसरे क्षेत्र में वृद्धि को अवरुद्ध कर देगा।

9.2.1 संतुलित संवृद्धि

संतुलित संवृद्धि दो तरह से प्राप्त की जा सकती है। मिली-जुली अर्थव्यवस्था में संतुलित संवृद्धि मूल्य प्रोत्साहनों के जरिए कायम रखी जाती है मगर नियोजित अर्थ-व्यवस्था में यह राज्य के हस्तक्षेप के माध्यम से किया जाता है। बहरहाल जो भी तरीका अपनाया जा रहा हो यह जरूरी है कि निवेश तरह-तरह के उद्योगों में फैला हो ताकि उनके उत्पादों के लिए बाजार पर्याप्त रूप से फैल सके।

9.2.2 असंतुलित संवृद्धि

अविकसित देशों में अर्थव्यवस्था को पूर्णत: संतुलित बनाने का लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता क्योंकि कुछ खास क्षेत्रों की अतिवृद्धि के कारण नए निवेश से नए असंतुलन ही जन्म लेते हैं। यह स्थिति संपूरक निवेश को बढ़ावा देती है। यह प्रक्रिया सभी समाजों में निरंतर चलती है और द्रुत आर्थिक संवृद्धि के लिए दबाव बनाए रखती है।

क्या आप जानते हैं? - 1

संवृद्धि के सिद्धांत आलोचना से मुक्त नहीं हैं। संतुलित संवृद्धि सिद्धांत के साथ बुनियादी समस्या यह

है कि यह अविकसित देशों की वास्तविक समस्याओं को नहीं समझता जैसे संसाधनों की कमी। इसीलिए हैंस सिंगर जैसे विद्वान जोर देकर कहते हैं कि संवृद्धि को बढ़ावा देने के लिए "आर्थिक विकास की एक बेहतर रणनीति यह हो सकती है कि सुलभ संसाधनों को इस तरह के निवेशों में ही लगाया जाए जो अर्थ-तंत्र को अधिक लचीला बनाएं जिसमें बढ़ते बाजार और बढ़ती मांग के उत्प्रेरक प्रभाव में बढ़ने की क्षमता हो।"

9.3 विकास के मॉडल

अपने वर्गीय आधार के कारण राज्य शहरी और ग्रामीण अभिजात्य वर्ग के निरंतर बढ़ते उपेभोग को रोकने में असफल रहता है। अत: असंतुलित संवृद्धि की कार्यनीति अपने सैद्धांतिक लालित्य के बावजूद भारत में असफल रही है। अत: नीति-निर्माता अर्थ व्यवस्था में तालमेल बिठाकर उसे समकालिक बनाने पर विशेष बल देने लगे हैं।

9.3.1 विकास का नेहरूवादी मॉडल

विकास के इस मॉडल का मुख्य सरोकार भारी उद्योगों के प्रसार से आर्थिक विकास करना था जिससे विदेशी सहायता पर निर्भरता कम हो सके। विकास की इस नेहरूवादी कार्यनीति ने भारत को विश्व के दसवें सबसे अधिक औद्योगीकृत राष्ट्र का स्थान दिलाया। छठी योजना दस्तावेज में यह कहा गया था कि "यह निश्चित ही राष्ट्रीय गौरव का विषय है कि इस अवधि में देश की स्थिर और पराश्रित अर्थ-व्यवस्था को आधुनिक और अधिकाधिक आत्म-निर्भर बना लिया गया है।"

इस मॉडल की कमजोरियां इस प्रकार हैं:

- चार दशक के नियोजन के बावजूद यह मॉडल जन साधारण के लिए न्यूनतम राष्ट्रीय जीवन स्तर नहीं ला पाया है;
- देश की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन कर रही है;
- बेरोजगारी और अपूर्ण-रोजगार में निरंतर वृद्धि हुई है;
- आर्थिक शक्ति चंद लोगों के हाथों में सिमट कर रह गई है;
- आमदनी और संपदा में विषमताएं बढ़ गई हैं;
- भूमि सुधार सही ढंग से लागू नहीं किए गए जिससे ग्रामीण लोगों में असंतोष गहराया।

योजना आयोग के भूतपूर्व सदस्य डॉ. जे.डी. सेठी का कहना था: "नेहरू ने 1964 में जब स्वीकार किया कि उन्होंने गांधीजी को निराश किया है तब तक बहुत देरी हो चुकी थी। दूसरी ओर भारतीय मार्क्सवादियों ने अपने इस वादे के विपरीत, कि वे गांधी और पूंजीवाद दोनों का विकल्प प्रस्तुत करेंगे, मास्को और नेहरू का दामन थाम लिया। नेहरू के शासनकाल में ही भारत के बड़े औद्योगिक घरानों ने अब तक सबसे अधिक वृद्धि दर हासिल की हैं तो वहीं गरीबी और असमानताएं भी खूब बढ़ी हैं।" इसी के मद्देनजर जनता पार्टी की सरकार ने 1977 में आर्थिक विकास के मुख्य लक्ष्य के रूप में गांधी के समाजवाद को अंगीकार किया।

क्या प्रमुख विकास का आरम्भ महिला दस्तकारों के हितों को संरक्षित किया है?
सौजन्य : प्रो० कपिल कुमार, इग्नु, नई दिल्ली

9.3.2 गांधीवादी मॉडल

देश के आर्थिक विकास के लिए गांधी ने 1944 में एक योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की थी, जिसे 1948 में स्वीकारा गया। इस मॉडल का मुख्य उद्देश्य देश की जनता को बुनियादी जीवन स्तर प्रदान करने की दिशा में उसका भौतिक और आध्यात्मिक स्तर उन्नत करना था। इसका लक्ष्य मुख्यत: भारत के 5.5 लाख गांवों की आर्थिक दशा में सुधार लाना था। इसलिए इसमें कृषि के वैज्ञानिक विकास और कुटीर और ग्राम उद्योगों के द्रुत विकास पर विशेष बल दिया गया।

क्या आप जानते हैं? 2

नेहरू ने जहां भारी उद्योगों को सबसे अधिक महत्व दिया, तो वहीं गांधीवादी मॉडल में कृषि के साथ सहायक हस्तशिल्पों और कुटीर उद्योगों को अत्यधिक महत्ता दी गई। भारी उद्योगों के विकास की उपेक्षा कर कृषि और लघु उद्योग क्षेत्र को ही अधिक महत्व देना अपने आप में गलत है। असल में मानव और भौतिक संसाधनों के उपयोग में भारी उद्योग और कृषि क्षेत्र में कोई टकराव नहीं है। दोनों का विकास साथ-साथ किया जा सकता है। संतुलित संवृद्धि-विकास का सिद्धांत अगर 1950 के दशक में मान्य और सामयिक था तो वह आज और भी अधिक मान्य और सामयिक हो गया है।

9.3.3 विकास का राव-मनमोहन मॉडल

आर्थिक विकास की कार्यनीति के रूप में इस मॉडल को 1991 में अपनाया गया, जिसमें अर्थव्यवस्था के निजीकरण और भूमंडलीकरण पर विशेष बल दिया गया। यह मॉडल, जो कि अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष और

विश्व बैंक के स्थिरीकरण और ढांचागत समायोजन के नुस्खे पर चलता है, लोगों के मस्तिष्क में कुछ संदेह पैदा कर रहा है कि क्या हम विकास के सही रास्ते पर चल रहे हैं। इस मॉडल के पांच वर्षों के अनुभव से यह प्रमाण नहीं मिलता जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि इन मानदंडों में सार्थक सुधार आया है।.

9.4 नियोजित आर्थिक विकास

जवाहरलाल नेहरू की पहल पर 1948 में एक राष्ट्रीय योजना समिति गठित हुई। समिति ने नियोजन के सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए आर्थिक विकास से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन किया। समिति ने अपनी रिपोर्ट में मुख्य बड़े उद्योगों और सेवाओं को राज्य के स्वामित्व में लाने की सिफारिश की। जैसे खनिज संपदा और रेलवे, जलपरिवहन, जहाजरानी और अन्य सार्वजनिक सेवाएं।

विचार करें-2

इसके अलावा कुछ अन्य योजनाएं भी प्रस्तुत की गई थीं, जिनका ऐतिहासिक महत्व है क्योंकि इन्हें कभी लागू किया ही नहीं गया। ये हैं

i) आर्थिक विकास के लिए देश के आठ उद्योगपतियों द्वारा तैयार की गई योजना जिसे बॉम्बे प्लान के नाम से जाना गया;
ii) श्रीमन नारायण द्वारा तैयार की गई गांधीवादी योजना;
iii) प्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता एम.एन. रॉय द्वारा तैयार की गई जन योजना

भारत की स्वतंत्रता के बाद 1950-51 में जाकर देश की पूंजी और मानव संसाधनों के आकलन के लिए पंच-वर्षीय योजना पर कार्य आरंभ हुआ ताकि इनका उपयोग संतुलित और प्रभावशाली ढंग से हो सके।

9.4.1 भारत में आर्थिक नियोजन का उद्देश्य

हमारे देश में आर्थिक नियोजन के मुख्यत: चार दीर्घकालिक उद्देश्य हैं:

i) उच्च दर की राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय प्राप्त करने के लिए उच्चतम स्तर तक उत्पादन में वृद्धि;
ii) सभी के लिए रोजगार जुटाना;
iii) आमदनी और संपदा की असमानताओं को कम करना और
iv) एक समाजवादी समाज की स्थापना करना जिसका आधार समानता और न्याय हों न कि शोषण।

9.4.2 भारत में आर्थिक विकास के लिए पंच-वर्षीय योजनाएं

वर्ष 1951 से भारत आठ पंच-वर्षीय योजनाएं लागू कर चुका है और नौवीं पंचवर्षीय योजना पर कार्यान्वियन चल रहा है। पहली पंच-वर्षीय योजना के आरंभ में ही भारत को तीन मुख्य समस्याओं से जूझना पड़ रहा था। ये समस्याएं थीं: शरणार्थियों का सैलाब, भोजन की भयंकर कमी और बढ़ती महंगाई। इसलिए i) पहली पंच वर्षीय योजना (1951-56) में इन तीन बातों पर विशेष बल दिया गया:

क) शरणार्थियों का पुनर्वास
ख) द्रुत कृषि विकास और
ग) मुद्रा स्फ़ीति पर नियंत्रण

ii) पहली योजना के अंतर्गत कृषि के लिए निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति हो जाने पर, द्वितीय पंच-वर्षीय योजना (1951-56) का लक्ष्य द्रुत औद्योगिकीकरण रखा गया जिसमें आधारभूत और भारी उद्योगों के विकास को विशेष महत्व दिया गया। इसमें लोहे और स्टील, भारी रसायनों के उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ भारी इंजीनियरी और मशीन निर्माता उद्योगों के विकास को गति देने पर विशेष बल दिया गया।

iii) योजनाकारों का हालांकि सोचना था कि पहली दो पंच-वर्षीय योजनाओं ने देश के द्रुत आर्थिक विकास के लिए आवश्यक संस्थागत ढांचा खड़ा कर दिया है। मगर दूसरी पंच-वर्षीय योजना के परिणामों से स्पष्ट हो गया कि भारत के आर्थिक विकास में कृषि उत्पादन ही मुख्य परिसीमक कारक है। अत: तीसरी पंच-वर्षीय योजना ने कृषि को सर्वोच्च प्रायमिकता तो दी ही मगर वहीं उसमें बुनियादी उद्योगों के विकास को भी विशेष महत्त्व मिला। इसी दौरान पहले भारत-चीन युद्ध और फिर भारत-पाक युद्ध छिड़े जिनके चलते योजना ने अपना ध्यान विकास से हटाकर रक्षा और विकास पर लगा दिया।

iv) भारत-पाक युद्ध के दौरान भारत को उसके मित्र देशों ने आवश्यक उपकरण, साजोसमान देने से इनकार कर दिया था। इस कड़ुवे अनुभव के मद्देनजर चौथी पंच-वर्षीय योजना ने स्थिरता और आत्म-निर्भरता को आर्थिक विकास का मुख्य लक्ष्य बनाया। इस योजना ने राष्ट्रीय आय में 5.5 प्रतिशत की वृद्धि दर का लक्ष्य रखते हुए समाज के कमजोर तबकों के लिए न्यूनतम राष्ट्रीय जीवन स्तर प्राप्त करने का लक्ष्य भी रखा। इसका मूल नारा गरीबी हटाओ था।

v) पांचवी योजना (1974-79) ने दो मुख्य लक्ष्य रखे: गरीबी हटाओ और आत्म-निर्भरता की प्राप्ति। इसके लिए यह तय किया गया कि आर्थिक वृद्धि-विकास की उच्च दर प्राप्त की जाएगी, आमदनी का बेहतर वितरण किया जाएगा और घरेलू बचत को बढ़ावा दिया जाएगा। जनता पार्टी की सरकार ने मार्च 1978 में पांचवी पंच-वर्षीय योजना को उसके चार वर्ष पूरा करने तक रद्द कर दिया।

vi) छठी पंच-वर्षीय योजना दो बार बनी और लागू हुई। जनता पार्टी सरकार की छठी पंच-वर्षीय योजना (1978-83) ने भारत में आर्थिक विकास के लिए किए जा रहे नियोजन की प्रशंसा करते हुए देश में बढ़ती बेरोजगारी और चंद इजारेदार घरानों के हाथ में सारी आर्थिक शक्ति आ जाने के लिए विकास के नेहरूवादी मॉडल को जिम्मेदार ठहराया। इसलिए इस योजना ने कृषि और संबंधित आर्थिक गतिविधियों में रोजगार को बढ़ाने, एक न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के जरिए उपभोक्ता वस्तुएं बनाने वाले घरेलू और लघु उद्योगों को बढ़ावा देने पर ध्यान केन्द्रित किया। फिर कांग्रेस (इ.) की सरकार द्वारा लाई गई दूसरी छठी पंच-वर्षीय योजना ने जनता पार्टी की सरकार के दृष्टिकोण को खारिज करते हुए विकास के नेहरूवादी मॉडल को फिर से बहाल कर दिया। इस बार इसने विस्तारशील अर्थ-व्यवस्था के लिए समुचित स्थितियां, वातावरण पैदा करके गरीबी की समस्या पर सीधी चोट करने का लक्ष्य रखा।

vii) सातवीं पंच-वर्षीय योजना के तीन मुख्य उद्देश्य थे: अनाज उत्पादन में वृद्धि, रोजगार के अवसरों में वृद्धि और उत्पादकता में बढ़ोतरी।

viii) आठवीं पंच-वर्षीय योजना ने देश की बढ़ती जनसंख्या को नियंत्रण में लाने का लक्ष्य रखा। इसके अलावा इसमें यह एहसास भी किया गया कि गरीबी उन्मूलन की टिकाऊ रणनीति का आधार आर्थिक वृद्धि-विकास की प्रक्रिया में ही उत्पादक रोजगार के अवसरों में वृद्धि होना चाहिए। इसलिए रोजगार के अवसरों में वृद्धि, अर्धरोजगार और पूर्ण रोजगार प्राप्त गरीब लोगों की उत्पादकता और आमदनी के स्तर को बढ़ाना ही आठवीं पंच-वर्षीय योजना के दौरान गरीबी दूर करने के लक्ष्य की पूर्ति का मुख्य साधन बना। आर्थिक नियोजन के कार्यक्रमों में ऊर्जा क्षेत्र को आठवीं पंच-वर्षीय योजना के दौरान सर्वाधिक महत्व मिला। इसने रोजगार पैदा करने के लक्ष्य को भी उच्च प्राथमिकता दी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह योजना विकास की मैहलैनोबिस रणनीति से पूरी तरह से अलग हट चुकी थी जिसे सबसे पहले दूसरी पंच-वर्षीय योजना में अपनाया गया था। इस रणनीति में औद्योगिक क्षेत्र, विशेषकर पूंजीगत सामान बनाने वाले और आधारभूत उद्योगों, पर विशेष बल दिया गया था। कृषि और ग्रामीण विकास पर अधिक बल इस कारण से भी दिया जाता है कि इस क्षेत्र में रोजगार उत्पन्न करने की संभावनाएं कहीं ज्यादा हैं।

9.5 पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य

पहली पंच-वर्षीय योजना के उद्देश्यों में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि "अधिकतम उत्पादन और पूर्ण रोजगार, आर्थिक समानता या सामाजिक न्याय की प्राप्ति जो कि आज की स्थिति में नियोजन के स्वीकार्य उद्देश्य कहे जाते हैं वे असल में अलग-अलग विचार न होकर एक दूसरे से जुड़े लक्ष्यों की कड़ी है जिसकी दिशा में देश को कार्य करना चाहिए। इनमें से किसी भी उद्देश्य को हम दूसरे उद्देश्यों को छोड़कर पूरा नहीं कर सकते। अतः विकास के लिए बनाई जाने वाली योजना को इन सभी को संतुलित महत्व देना होगा।" (योजना आयोग, प्रथम पंच-वर्षीय योजना, पृ. 28)।

भारतीय आर्थिक नियोजन का मूल उद्देश्य कृषि, ऊर्जा, परिवहन और संचार, उद्योग और अर्थ-व्यवस्था के अन्य सभी क्षेत्रों के विकास के जरिए द्रुत आर्थिक संवृद्धि लाना था।

9.5.1 कारगर आर्थिक नियोजन

एक कारगर आर्थिक नियोजन से जनसंख्या वृद्धि की दर के तुल्य राष्ट्रीय आय की दर में वृद्धि होगी। भारतीय योजनाकारों ने यह मानते हुए राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि लाने का लक्ष्य रखा कि इन आमदनियों में निरंतर बढ़ोतरी होने से गरीबी और फटेहाली अपने आप दूर हो जाएगी और जनसाधारण के जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार आएगा। परंतु यह देखने में आया कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ-साथ देश में गरीबी भी खूब बढ़ रही है। इसलिए चौथी पंच-वर्षीय योजना में कई पीढ़ियों से निपट गरीबी में जी रहे लोगों के जीवन-स्तर में सुधार लाने पर विशेष ध्यान दिया गया। चौथी पंच-वर्षीय योजना के अनुसार इसका मूल लक्ष्य जनता के जीवन स्तर में तेजी से सुधार लाना और आम आदमी, समाज के कमजोर और दुर्भाग्यशाली तबकों पर विशेष ध्यान देना था। इस तरह "गरीबी हटाओ" का नारा सातवें दशक में इजाद हुआ।

क्या आप जानते हैं?

योजना आयोग का मानना है कि निवेश में वृद्धि होने से राष्ट्रीय आय और रोजगार में वृद्धि होगी। फिर बेरोजगारी दूर होने से सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि और लोगों के जीवन स्तर में सुधार अपने

आप आएगा। इसीलिए जनता पार्टी की छठी पंच-वर्षीय योजना को छोड़कर शेष सभी योजनाओं में आर्थिक वृद्धि-विकास के कार्यक्रम थे, जिनमें रोजगार में वृद्धि का लक्ष्य निहित था। लेकिन इसने इस बात पर गौर नहीं किया कि जब तक तकनीक और प्रौद्योगिकी का चयन सही ढंग से नहीं किया जाएगा, निवेश में वृद्धि से रोजगार में वृद्धि अपने आप नहीं हो जाएगी। हमारे आर्थिक नियोजन में रोजगार को उच्च प्राथमिकता नहीं दी जाती। किसी भी योजना में प्रत्येक सेक्टर और अंचल के लिए पृथक रोजगार कार्यक्रम ढूढे नहीं मिलता, जिससे रोजगार और राष्ट्रीय आय दोनों में वृद्धि हो सके।

9.5.2 बढ़ती बेरोजगारी

भारत में बढ़ती बेरोजगारी का यही कारण है। जनता पार्टी की छठी पंच-वर्षीय योजना (1978-83) में योजना आयोग ने रोजगार को हालांकि सर्वोच्च प्राथमिकता दी थी मगर दूसरी छठी योजना जिसे अंतत: स्वीकार कर लागू किया गया था, में ध्यान मुख्यत: परंपरागत दृष्टिकोण की तरफ मोड़ दिया गया और यह मान लिया गया कि चुनी जाने वाली प्रौद्योगिकी और तकनीक भले ही कुछ भी हो निवेश में वृद्धि से रोजगार में भी स्वयं वृद्धि हो जाएगी।

क्या प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा में समान अवसर उपलब्ध है?
सौजन्य : सी.एस.आर., नई दिल्ली

भारत की आर्थिक योजनाएं सभी प्रतिगामी शक्तियों को परास्त करने का सचेतन प्रयास हैं। जैसे आमदनी में व्याप्त असमानताओं को कम करना और एक समाजवादी समाज की स्थापना जिससे ऐसी स्थितियां उत्पन्न हों, जिसमें प्रत्येक नागरिक को शिक्षा और रोजगार के समान अवसर मिलें। इसके अलावा आर्थिक शक्ति चंद हाथों में न सिमटे और एक व्यक्ति का शोषण दूसरे व्यक्ति के हाथों न हो सके।

योजना आयोग ने कई अन्य महत्वपूर्ण उपाय भी किए जैसे दलालों को हटाना, ग्रामीण क्षेत्रों में संपदा और आय में कमी लाने के लिए जोतों पर सीलिंग लगाना क्योंकि असमानता के इन दो कारकों की जड़ें पारंपरिक सामाजिक गठन में मौजूद हैं और इन उपायों से गांवों में उत्पादन के अर्धसामंती संबंध समाप्त हो सकेंगे।

शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में आमदनी में मौजूद विषमताओं को दूर करने के लिए योजना आयोग ने निम्न उपाय किए: कृषि उत्पादकता में वृद्धि, कृषि आधारित उद्योगों को विकास, किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य दिलाना।

9.5.3 संपदा और आमदनी का पुनर्वितरण

परंतु भारतीय आर्थिक नियोजन में संपदा और आय को पुनर्वितरित करने की स्पष्ट और सकारात्मक रणनीति की हमेशा कमी रही है। देश में आर्थिक नियोजन के प्रवर्तक जवाहरलाल नेहरू का भी मानना था कि असमानताएं सिर्फ पुनर्वितरण के जरिए दूर नहीं की जा सकतीं। चौथी पंच-वर्षीय योजना इस संदर्भ में कहती है: "एक समृद्ध देश में वित्तीय, मूल्य निर्धारण और अन्य नीतियों के जरिए आय के हस्तांतरण से वृहत्तर समानता कुछ हद तक हासिल की जा सकती है। मगर एक गरीब देश में इस तरह के उपायों से कोई सार्थक परिणाम प्राप्त नहीं किए जा सकते हैं।" (योजना आयोग, चौथी पंचवर्षीय योजना, पृ. 15)।

अंतत: पहली तीन पंच-वर्षीय योजनाओं ने "समाजवादी समाज" की स्थापना या "समाजवादी विचारधारा की तर्ज पर विकास" को अधिक महत्व दिया। चौथी योजना ने "स्कॉटलैंड जैसे आर्थिक लोकतंत्र" की स्थापना की बात की। मगर भारतीय योजनाकारों की "आर्थिक लोकतंत्र" की परिभाषा अन्यत्र से भिन्न रही है। समृद्ध अर्थव्यवस्थाओं में जहां कि धुर दरिद्रता को दूर कर दिया गया है वहां आर्थिक लोकतंत्र लगभग मुक्त बाजार अर्थ-व्यवस्था की तरह ही है। मगर हमारे देश में आर्थिक लोकतंत्र की व्यापक परिभाषा का तात्पर्य शिक्षा के अवसर, स्वास्थ्य सुविधाएं, पेयजल आपूर्ति, आवास इत्यादि जैसी सुविधाएं जनसंख्या के एक बड़े हिस्से को सुलभ होना है। भले ही वह धनी हो या निर्धन।

9.6 आर्थिक नियोजन के दीर्घ-कालिक उद्देश्य

नियोजन के सभी उद्देश्यों में सिर्फ द्रुत आर्थिक विकास के पहले उद्देश्य को ही सभी पंच-वर्षीय योजनाओं में वास्तविक महत्व दिया गया। शेष उद्देश्यों को अपेक्षतया अनदेखा कर दिया गया। रोजगार के उद्देश्य तक को अधिक महत्व नहीं दिया गया क्योंकि प्रति व्यक्ति बचत की दर को हर नागरिक को रोजगार उपलब्ध कराने के लिए आवश्यक निवेश की दर की तुलना में अपर्याप्त माना गया।

विचार करें 2

भारतीय योजनाकारों का हमेशा से यह मानना रहा है कि अगर देश तेजी से आर्थिक प्रगति कर ले और उत्पादन में वृद्धि हो जाए तो यह कालांतर में आय के बेहतर वितरण और जीवन स्तर को बेहतर बनाने में सहायक होगा। चौथी पंच-वर्षीय योजना दस्तावेज में कहा गया था: "किसी हद तक वित्तीय उपायों के जरिए हम आय संबंधी विषमताओं को कम कर सकते हैं जिनका लक्ष्य शीर्ष स्तर पर आमदनी को कम करना हो, मगर हमारे लिए यह जरूरी है कि हम सुनियोजित आर्थिक विकास

के माध्यम से गरीब लोगों की दशा में सुधार लाने वाले उपायों पर सबसे अधिक बल दें। एक समृद्ध देश में वित्तीय, मूल्य निर्धारण और अन्य नीतियों के जरिए आय के हस्तांतरण से कुछ वृहत्तर समानता कुछ हद तक हासिल की जा सकती है। मगर एक गरीब देश में ऐसे उपायों से कोई सार्थक परिणाम प्राप्त नहीं किए जा सकते हैं, जहां कि धनाढ्य वर्गों की उच्च आय से जो भी बेशी ससाधन जुटाए जा सकते हैं उन्हें अर्थव्यवस्था में निवेश करना जरूरी हो जाता है ताकि भविष्य में बड़े उपभोग के लिए एक आधार बन सके।"

इस तरह भारत की पंच-वर्षीय योजनाओं ने सदा आर्थिक संवृद्धि को ही उच्च प्राथमिकता दी है और जब कभी इसका अन्य उद्देश्यों से टकराव हुआ तो उन्हें त्याग दिया गया।

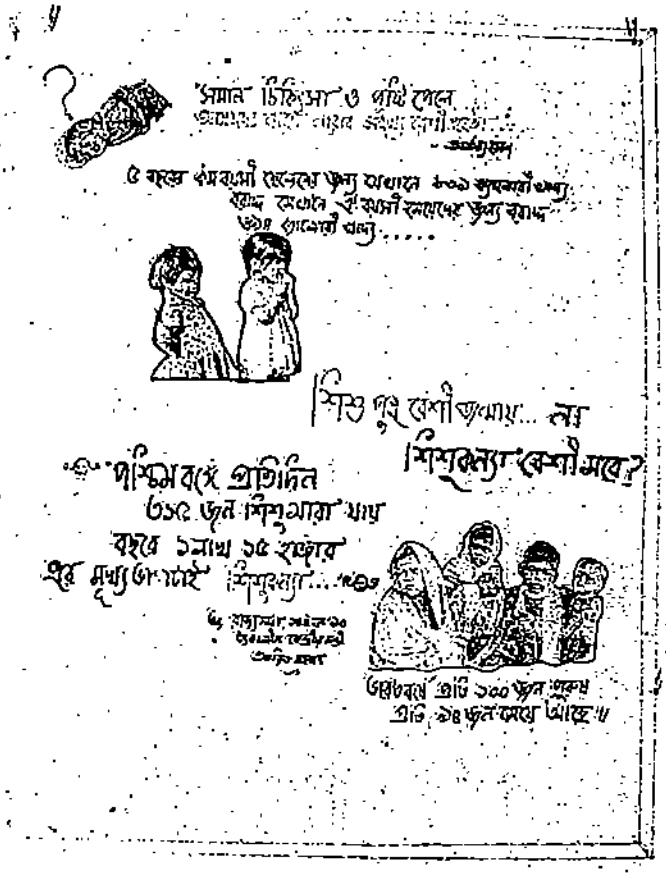

स्वास्थ्य देखभाल में लापरवाही : इसका कौन शिकार होता है?
सौजन्य : सी.डब्ल्यू.डी.एस., नई दिल्ली

9.7 सारांश

भारतीय योजनाकारों ने आर्थिक विकास की जिस कार्यनीति की पैरवी की वह रूसी विचारधारा से ली गई थी जिसका मतलब था भारी, आधारभूत और मशीन निर्माता उद्योगों में भारी पूंजी निवेश के जरिए त्वरित औद्योगिकीकरण। विशाल औद्योगिक इकाइयों की स्थापना और उनके विस्तार को जिस तरह से खुला समर्थन और प्रोत्साहन मिला उसका सीधा परिणाम यह रहा कि आर्थिक शक्ति या सत्ताधिकार चंद औद्योगिक घरानों के हाथों में सिमट गया। फलस्वरूप विकास की इस रणनीति ने भारत को विश्व में दसवें औद्योगिक राष्ट्र के स्थान पर पहुंचा तो दिया मगर वहीं 1992 में देश की प्रति व्यक्ति आय विश्व में सबसे कम थी।

आज विकास के एक नए रूप यानी आर्थिक उदारीकरण के बारे में कई तरह के संदेह उभरने लगे हैं जो लातिन अमेरिका, अफ्रीकी और पूर्व एशियाई देशों के अनुभवों से उपजे हैं। हमारे मस्तिष्क को यह प्रश्न बार-बार कुरेद रहा है कि क्या हम विकास के सही मार्ग पर चल रहे हैं?

9.8 शब्दावली

संतुलित संवृद्धि : अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में साथ-साथ होने वाला विकास

मॉडल : जमीनी वास्तविकता की कसौटी में परखी जाने वाली संकल्पनात्मक रचना

रणनीति : एक कार्य योजना विशेषकर आर्थिक नियोजन

9.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

योजना आयोग, पंच-वर्षीय योजनाएं (पहली से आठवीं तक), नई दिल्ली

सदर्भ

बनर्जी, निर्मला (1992) *पावर्टी, वर्क एंड जेंडर इन अरबन इंडिया*। कलकत्ता: सेंटर फार स्टडीज इन सोशल सांइसेज।

बेनरिया, एल (1982) वूमेन एंड डेवलपमेंट : *दि सेक्सुअल डिवीजन ऑफ लेबर इन रूरल सोसाइटीज, न्यूयार्क प्रएजार*

भागवत, विद्युत (1997) *'पेटरीआरकी इन दि कानटेक्स ऑफ चेंजिग नेचर ऑफ वूमेनज वर्क इनसाइड-आउटसाइड दि हाउसहोल्ड*, अनपब्लिशड आई सी एस एस आर रिपोर्ट।

गेने, बी, ग्रोस लिपेवांचे, डी.डम. (1988) *क्रोसिंग बोंड्रीज, फिमीनिज्म एंड दि क्रिटिक ऑफ नालेज*। पब्लिशड वाई अल्लेन एंड अनविन आस्ट्रेलिया प्राइवेट, लिमिटेड।

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

महिलाएँ और अर्थव्यवस्था

खंड

3

असंगठित क्षेत्र में महिलाएँ

खंड परिचय : असंगठित क्षेत्र में महिलाएँ 3

इकाई 10
स्वरोज़गार : कृषि और गैर-कृषि क्षेत्र 5

इकाई 11
मज़दूरी (वेतन) रोज़गार : कृषि एवं निर्माण 20

इकाई 12
कुटीर और घरेलू उद्योग में महिलाएँ 32

संदर्भ 42

खंड परिचय

खंड 3 : असंगठित क्षेत्र में महिलाएँ

इस से पहले आप उत्पादन संसाधन तथा उत्पादन संगठन से महिलाओं के संबंधों के बारे में अध्ययन कर चुके हैं। अगले दो खंड 3 और 4 में अर्थात असंगठित क्षेत्र में महिलाएँ (खंड-3) तथा संगठित क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी के संबंध में विशेष रूप से प्रकाश डाला जाएगा।

इस खंड में असंगठित क्षेत्र में महिलाएँ विषय पर चर्चा की जाएगी जिसमें असंगठित क्षेत्र में व्यापक रोज़गार के मुद्दे का विश्लेषण शामिल है। इस लिए, इकाई 10 में स्वरोजगार की प्रकृति और इसके आकार तथा स्वरोज़गार क्षेत्र में महिला कामगारों के सामने आने वाली समस्याओं को उजागार करते हुए विश्लेषण किया जाएगा। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में मौजूदा कार्य संरचनाओं की भिन्नताओं की परीक्षा की गई है। अध्ययन के बाद आप स्वयं महसूस करेंगे कि स्वरोजगार क्षेत्र में महिलाओं को शोषण से बचाने के लिए प्रभावी कानून बनाने की आवश्यकता है।

इकाई 11 में पुरुष और महिलाओं के लिए उपलब्ध विभिन्न प्रकार के वेतन (मजदूरी) के प्रकारों और मज़दूरी की संकल्पना को स्पष्ट किया गया है। इस इकाई में आपको भारत में मजदूरी रोजगार की परिदृश्य की प्रस्तावना से भी परिचय कराया जाएगा। इसके साथ ही वेतनमानों की असमानताओं को कम करने के लिए सरकार तथा अन्य संगठनों ने क्या कदम उठाएँ हैं उनके बारे में बताया जाएगा। कृषि तथा निर्माण कार्यों के क्षेत्र में मजदूरी भुगतान की असमानताओं को स्पष्ट करने के लिए प्रयास किया गया है।

उपर्युक्त उल्लेखित क्षेत्रों में मज़दूरी रोज़गार को स्पष्ट करने के साथ-साथ इकाई 12 में हाथ करघा और घरेलू उद्योगों में महिलाओं द्वारा किए जाने वाले कार्यकलापों की प्रकृति पर भी ध्यान आकर्षित किया गया है। यद्यपि महिलाओं की एक बड़ी संख्या इन उद्योगों में कार्य करती है किंतु उन्हें उनके कार्यों का वेतन नहीं दिया जाता है। इसके अलावा इस क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं की संख्या का आकलन भी करना बाकी है। इनके अधिकार कार्यों को घरेलू कार्य या परिवार के कार्यों में शामिल किया जाता है अथवा उसका हिस्सा माना जाता है। इस लिए वास्तविक संख्या के सही आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। इस लिए इकाई के अन्त में उपयुक्त कार्यनीतियों का सुझाव दिया गया है।

इकाई 10 स्वरोज़गार : कृषि और गैर कृषि क्षेत्र

रूपरेखा

10.0 लक्ष्य और उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 स्व-रोज़गार के आयाम
10.3 ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोज़गाररत महिलाएँ
  10.3.1 कृषि क्षेत्र में स्व-रोज़गाररत महिलाएँ
  10.3.2 ग्रामीण क्षेत्रों में गैर-कृषि कार्य
10.4 शहरी क्षेत्रों में स्वरोजगाररत महिलाएँ
10.5 स्व-रोज़गाररत महिलाओं को संगठित करना
  10.5.1 ग्रामीण स्व-रोज़गाररत महिलाएँ
  10.5.2 शहरी स्व-रोज़गाररत महिलाएँ
  10.5.3 सुरक्षात्मक उपायों की आवश्यकता
10.6 सारांश
10.7 शब्दावली
10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में हम असंगठित क्षेत्र में स्व-रोज़गार के विषय पर चर्चा करेंगे। कार्य जीवन का बहुत महत्त्वपूर्ण पक्ष है। मनुष्य को जीवित रहने के लिए तीन मूलभूत आवश्यकताओं की जरूरत होती है, वे हैं भोजन, वस्त्र तथा आवास जो कार्य करने के द्वारा ही पूरी की जा सकती हैं। हमारे समाज में अनेक प्रकार के कार्य हैं। जब हम कार्य के बारे में बात करते हैं तो क़मोबेश प्राय: हमारा अभिप्राय किसी न किसी प्रकार के रोज़गार से होता है जहाँ मज़दूरी प्राप्त की जाती है। फिर यदि हम रोज़गार के आंकड़े देखें तो पता लगेगा कि अधिकांश रोज़गार में लगे व्यक्ति मज़दूरी कमाने वाले नहीं होते। इन लोगों को स्व-रोज़गार (अपना कार्य करने) वाले व्यक्ति कहा जाता है।

इस इकाई में हमने अपने देश में महिलाओं में विभिन्न प्रकार के स्व-रोज़गार के बारे में चर्चा की है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- स्व-रोज़गार वाले कौन है और उनकी संख्या क्या है, जान सकेंगे;
- स्व-रोज़गार क्षेत्र में लगी महिला श्रमिकों की समस्याओं को समझ सकेंगे;
- गैर-कृषि क्षेत्र में स्व-रोज़गार में लिंग भेद की समस्याओं के विषय में जानकारी पा सकेंगे;
- शहरी क्षेत्र में स्व-रोज़गार की समस्याओं को समझ सकेंगे; और
- स्व-रोजगार में लगीं महिलाओं की स्थिति को यूनियन तथा/सहकारिता के माध्यम से सुधारने के उपायों से परिचित हो सकेंगे;

10.1 प्रस्तावना

हम आरंभ में असंगठित क्षेत्र की चर्चा करेंगे। इसके बाद हम स्व-रोज़गार के विभिन्न आयाम तथा

महिला श्रमिकों की स्थिति पर चर्चा करेंगे। हम स्व-रोज़गार में लगी महिलाओं की समस्याओं को उनको द्वारा किए जाने वाले अनेक प्रकार के कार्यों को देखकर नहीं समझ सकते। इसलिए हम स्व-रोज़गार में लगी महिलाओं की विभिन्न गतिविधियों से आपको अवगत कराएँगे। ये महिलाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में है तथा कृषि व अन्य कार्यों में लगी हैं। शहरों में भी इस क्षेत्र में काफी रोज़गार हैं। हम ग्रामीण क्षेत्रों और शहरी क्षेत्रों के कार्यों में अंतर तथा रोज़गार संस्था में वृद्धि के कारणों तथा महिला श्रमिकों के भविष्य पर पड़ने वाले महत्त्व की भी जाँच करेंगे। अंत में हम देखेंगे कि इन श्रमिकों को राहत पहुँचाने के लिए क्या उपाय किए जा सकते हैं। इसमें घरेलू कार्यों के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठनों की परंपरा, गैर सरकारी संस्थाओं तथा ट्रेड यूनियनों आदि के कार्य जिनमें स्व-रोज़गार की स्थितियों की सुधारने के लिए सरकारी योजनाओं की चर्चा शामिल है।

10.2 स्व-रोज़गार के आयाम

भारत में श्रमिक बल मुख्यत: दो क्षेत्रों संगठित क्षेत्र तथा असंगठित क्षेत्रों में विभाजित हैं। दोनों क्षेत्रों के बीच कुछ अंतर है लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण अंतर यह है कि असंगठित क्षेत्र में श्रमिकों को कोई वैधानिक संरक्षण या तो है नहीं या फिर बहुत कम है। जबकि संगठित क्षेत्र में अनेक कानून हैं जो रोज़गार की सुरक्षा और कार्य नियंत्रण प्रदान करते हैं। इसी कारण असंगठित क्षेत्र को असुरक्षित क्षेत्र के रूप में माना जाता है।

भारत में 1991 के आंकड़ों के अनुसार 315 मिलियन श्रमिक बल था। इसमें से केवल 26.8 मिलियन श्रमिक संगठित क्षेत्र में तथा शेष 290.2 मिलियन श्रमिक असंगठित क्षेत्र में कार्यरत थे। इस प्रकार कुल श्रमिक बल का 92 प्रतिशत श्रमिक असंगठित क्षेत्र में है।

देश में 1991 में कुल श्रमिकों में से 90.6 मिलियन महिलाएँ तथा 226.4 मिलियन पुरुष थे। महिलाएँ मुख्यत: असंगठित क्षेत्र में कार्यरत थीं। हम देखते हैं कि संगठित क्षेत्र में 26.8 मिलियन श्रमिकों में से केवल 3.8 मिलियन महिलाएँ थीं। यह संख्या देश में कुछ महिला श्रमिकों की 4.2 प्रतिशत ही है। शेष 86.8 मिलियन महिला श्रमिक असंगठित क्षेत्र में कार्यरत थीं। यह संख्या कुल संख्या का 95.85 प्रतिशत है। इस प्रकार संगठित क्षेत्र में प्रत्येक 6 पुरुष श्रमिकों की तुलना में एक महिला श्रमिक हैं जबकि असंगठित क्षेत्र में यह संख्या प्रत्येक 2 पुरुष श्रमिकों की तुलना में 1 महिला श्रमिक है।

असंगठित क्षेत्र में दो प्रकार के श्रमिक हैं : स्व-रोज़गार वाले श्रमिक तथा अनियमित श्रमिक। स्व-रोज़गार श्रमिकों की संख्या अनियमित श्रमिकों से कुछ अधिक है। असंगठित क्षेत्र में लगभग 56 प्रतिशत श्रमिक स्व-रोज़गार वाले हैं। अपनी आजीविका कमाने के लिए स्व-रोज़गार श्रमिक अनेक प्रकार के कार्य करते हैं। ये लोग ग्रामीण क्षेत्रों में किसान तथा शिल्पकार हैं जो स्थानीय उपभोग के लिए वस्तुएँ तैयार करते हैं। ये वस्त्र बनाते हैं तथा मिट्टी या धातु के बर्तन तथा चमड़े की वस्तुएँ आदि बनाते है। शहरी क्षेत्रों में स्व-रोज़गार वाले श्रमिक अनेक कार्यों जैसे दुकानदारी, फेरी, लगाना, गृह निर्माण कार्य तथा घरेलू नौकर आदि कार्यों में लगे हुए हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस समूह में अत्यधिक महिलाएँ हैं। अब हम ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के कार्यों की चर्चा करेंगे।

10.3 ग्रामीण क्षेत्रों में स्व-रोज़गाररत महिलाएँ

श्रमिक बल का महत्त्वपूर्ण हिस्सा अर्थात् महिलाएँ कृषि क्षेत्र में है। यद्यपि श्रमिक बल का बहुसंख्यक

हिस्सा पुरुष श्रमिक है तो भी कई दशकों से महिला श्रमिकों की संख्या में वृद्धि हो रही है। 1991 की जनसंख्या के आँकड़े दर्शाते हैं कि 34.2 प्रतिशत खेतिहर तथा 44.9 प्रतिशत कृषि श्रमिक महिलाएँ हैं। दूसरे शब्दों में खेतिहर में एक तिहाई से अधिक तथा कृषि श्रमिक में आधे से कुछ कम श्रमिक महिलाएँ हैं। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक गैर कृषि कार्यों में महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक है। महिलाएँ अपने पारंपरिक शिल्प का प्रयोग करते हुए शिल्पकार के रूप में कार्य करती हैं। इस तरह के कार्य महिलाएँ या तो स्वतंत्र रूप से या फिर अपने पति के ग्रामीण शिल्पकार वाले व्यवसाय में सहायक के रूप में कार्य करती हैं। इस इकाई के अन्य भाग में हम इस पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

10.3.1 कृषि क्षेत्र में स्व-रोज़गाररत महिलाएँ

स्व-रोज़गार में व्यक्ति के लिए सबसे प्रमुख कार्य है खेती करना। ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि देश में कुल खेतिहरों का 34.2 प्रतिशत महिलाएँ हैं। जो महिलाएँ खेती में लगी हुई हैं कमोबेश उनके पास या उनके परिवार के पास कुछ अपनी जमीन है। यह कार्य पारिवारिक श्रम के द्वारा किया जाता है। दूसरे शब्दों में परिवार के पुरुष और स्त्रियाँ कृषि से संबंधित विभिन्न कार्य करते हैं। घर से बाहर के कार्यों में महिलाओं का शामिल होना महिलाओं की स्थिति सुधारने के रूप में माना जाना चाहिए। फिर भी, यदि हम महिलाओं द्वारा किए जाने वाले कार्यों को देखें तो कृषि क्षेत्र में किए जाने वाले कार्य महिलाओं की स्थिति को बहुत बेहतर नहीं बनाते। आइए देखते हैं इसके क्या कारण हैं।

महिलाओं के दर्शित शारीरिक कृषि कार्यों को अर्थहीन क्यों किया जाता है?
सौजन्य : प्रो० कपील कुमार, इग्नु, नई दिल्ली

कृषि कार्य में अनेक प्रकार के कार्य होते हैं। इसमें भूमि को जोतना तथा बीज बोना, सिंचाई करना, खर पतवार निकालना, खाद डालना, फसल काटना, फसल को घर ले जाना और भूसे से अनाज निकालना तथा अंत में फसल को बाजार में बेचना शामिल है। इसके साथ-साथ इससे संबंधित अन्य अनेक कार्य हैं जैसे अनाज को भूसे से अलग करने के बाद प्राप्त भूसे से पशुओं का चारा बनाना, फसल

को पक्षियों से बचाना, गोबर से ईंधन या खाद बनाना और ऐसे ही अनेक कार्य। ये सभी कार्य परिवार के पुरुष और महिला दोनों सदस्यों द्वारा किए जाते हैं। यद्यपि एक ही समय में पुरुष और महिलाएँ कार्य करते हैं लेकिन दोनों एक ही प्रकार का कार्य नहीं करते। पुरुष के कार्यों में और महिलाओं के कार्यों में अंतर होता है। महिलाएँ केवल कुछ विशिष्ट कार्य करती हैं और उन्हें दूसरे प्रकार के कार्य नहीं करने दिए जाते उदाहरण के लिए, अधिकांश कृषि जातियों में महिलाओं से जमीन की जुताई ओर बुआई नहीं कराई जाती। पुरुष हल चलाने, बीज बोने, फसल काटने तथा फ़सल बेचने का कार्य करते हैं। महिलाएँ मुख्यत: खर पतवार निकालने, (धान के मामले में) पौध लगाने तथा फसल काटने में पुरूष की सहायता करने जैसे कार्य करती हैं। अनाज को भूसे से अलग करने तथा उसे साफ करने वाला कार्य मुख्यत: महिलाओं द्वारा ही किया जाता है।

यद्यपि देखने में लगता है कि कार्य मिलकर किए जाते हैं लेकिन वास्तव में कार्यों का विभाजन है। कुछ कार्य दूसरे कार्यों से श्रेष्ठ माने जाते हैं। ये वे कार्य हैं जो पुरुषों द्वारा किए जाते हैं। हल चलाना, बीज बोना, फसल काटना, तथा फ़सल को बेचने के लिए बाजार ले जाना जैसे कार्य पौध लगाने, खर पतवार निकालने तथा अनाज को भूसे से अलग करने जैसे कार्यों से श्रेष्ठ माने जाते हैं। दूसरे शब्दों में पुरुषों द्वारा किए जाने वाले कार्यों की मजदूरी महिलाओं द्वारा किए जाने वाले कार्यों की मज़दूरी से अधिक है।

नि:संदेह कार्य विभाजन का कोई वैज्ञानिक-आधार नहीं है। यह समाज में प्रचलित पूर्वाग्रह के आधार पर है जो महिलाओं को कमज़ोर मानता है कि वे कठिन कार्य नहीं कर सकती। यदि महिलाओं द्वारा किए जाने वाले कार्यों को देखें तो पता लगेगा कि उनमें पुरुषों द्वारा किए जाने वाले कार्यों से अधिक नहीं तो उतनी ही ताकत ही जरूरत होती है। वास्तव में पुरुष योज़ना बनाने व सोचने वाले कार्य करते हैं और नीरस तथा कठिन कार्य महिलाओं के लिए छोड़ दिए जाते हैं। फसल को बाजार में बेचने जैसा महत्वपूर्ण कार्य पुरुषों द्वारा किया जाता है। दूसरी तरफ़ महिलाओं का कार्य मुख्य कार्य के बाद पीछे का कार्य निपटाना, समय खपाने वाला होता है जिसको कोई महत्व नहीं मिलता।

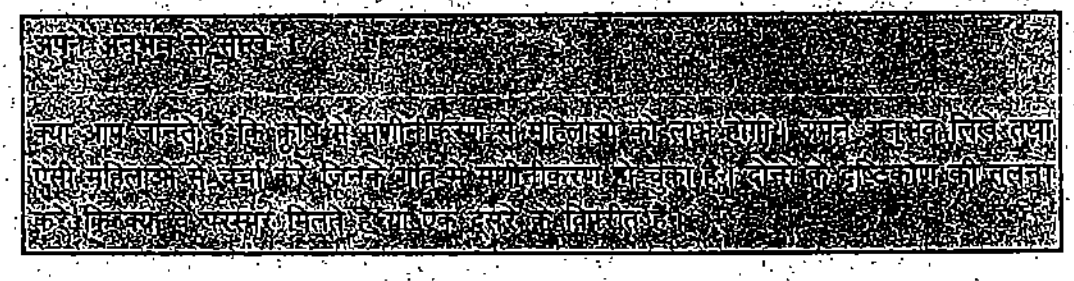

उपर्युक्त स्थिति से संबंधित एक अन्य समस्या है कृषि में मशीनीकरण। मशीनीकरण से कृषि कार्यों में शरीरिक श्रम में कमी हो जाती है। इसमें से अधिकांश श्रम महिलाओं द्वारा किया जाता है। फिर भी जब कभी महिलाओं के कार्य में मशीनीकरण हुआ है वह कार्य पुरुषों द्वारा हथिया लिया जाता है। उदाहरण के लिए अनाज को भूसे से अलग करने वाला कार्य जब हाथ से किया जाता था तो उसे महिलाएँ करती थीं जैसे ही इसमें मशीन का प्रयोग आरंभ हुआ यह पुरुषों द्वारा किए जाने लगा। इस प्रकार महिलाएँ अधिकांशत: नीरस तथा कठिन कार्य ही करती हैं। जबकि मशीन चलाने का जटिल दिखाई देने वाला कार्य वास्तव में कम कठिन है और वह पुरुषों द्वारा किया जाता है।

10.3.2 ग्रामीण क्षेत्रों में गैर कृषि कार्य

कृषि और खेतिहर का कार्य ग्रामीण आबादी के एक वर्ग द्वारा ही किया जाता है। ग्रामीण परिवेश में अन्य अनेक प्रकार के भी कार्य हैं जो रोज़गार प्रदान करते हैं। इनमें स्थानीय प्रयोग के हस्तशिल्प, पशु पालन

तथा डेरी आदि कार्य शामिल हैं। इन कार्यों में भी हम देखेंगे कि नीरस तथा थकाऊ कार्य महिलाओं द्वारा किए जाते हैं जबकि पुरुष जटिल लेकिन कम थकाऊ कार्य करते हैं। इनमें भी कार्य का विभाजन पुरुष के पक्ष में है। पुरुषों द्वारा किया जाने वाला कार्य महिलाओं के कार्य से श्रेष्ठ माना जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के अतिरिक्त भी अनेक पारंपरिक व्यवसाय हैं। इन व्यवसायों में बुनकर (टाटी या जुलाहों) प्रजाति (कुम्हार) लोहार, टोकरी बनाने वाले, कपड़े धोने वाले (धोबी), बाल काटने वाले (नाई) चमड़े का कार्य करने वाले (चर्मकार या चमार) सफाई करने वाले कूड़ा तथा मृत जानवर उठाने वाले आदि शामिल हैं। इस प्रकार के कार्य विभिन्न जाति समूहों द्वारा किए जाते हैं। इनमें से कुछ व्यवसाय घटिया माने जाते हैं लेकिन लगभग सभी जातियों द्वारा काफी शोषण किया जाता है। ये व्यक्ति निरपवाद रूप से गुजारे लायक स्तर पर ही जीवन निर्वाह करते हैं। इन परिवारों की महिलाओं को जाति, वर्ग और जीवन स्तर के आधार पर अनेक प्रकार के अत्याचारों को झेलना पड़ता है।

क्या आप जानते हैं? –1

बुनकर के कार्य में संपूर्ण परिवार रूई से सूत बनाने के पहले चरण से लेकर कपड़ा बनाने तक के कार्य में लगा रहता है। जिस प्रकार कृषि में पुरुष और महिलाओं का कार्य अलग-अलग होता है उसी प्रकार बुनकर कार्य में महिलाएं सूत बनाती हैं और पुरुष खड्डी चलाते हैं। इसी प्रकार कुम्हार के परिवार में महिलाएं मिट्टी तैयार करती हैं और पुरुष चाक चलाते हैं। इसी प्रकार हम देखेंगे कि इन प्रत्येक कामों में पुरुषों और महिलाओं के अलग-अलग कार्य हैं। हम यह भी देख सकते हैं कि पुरुषों की तुलना में महिलाओं के कार्य अधिक थकाऊ हैं। जब वस्तु शिल्पकारों द्वारा बनकर तैयार हो जाती है तो व्यापारियों से मूल्य की बातचीत पुरुष करते हैं। महिलाएँ भी बाजार में वस्तुएँ तो बेचती हैं लेकिन छिट-पुट रूप में। गांव में और एक कार्य है डेरी तथा पशुपालन। इसमें भी हम देखेंगे कि अधिकांश कार्य महिलाएँ करती हैं। पुरुष दिन में पशुओं को चराने के लिए बाहर ले जाते हैं लेकिन पशुओं को नहलाने उनके स्थान साफ करने तथा उनको दुहने जैसे जोर पड़ने वाले कार्य महिलाओं द्वारा किये जाते हैं। इसके बावजूद जब मुख्य रूप से पैसे के लेन-देन की बात आती है जैसे वस्तु को बेचना है तो पुरुष ही सौदा करता है और पैसे भी वही लेता है। डेरी के काम में भी अधिकांश कार्य महिलाओं द्वारा किया जाता है और श्रेय जाता है पुरुष को क्योंकि अधिकांश मामलों में पशु वे ही रखते हैं।

डेरी के कार्य में महिलाओं और पुरुषों के मध्य चौंकाने वाला अंतर दुग्ध सहकारी समितियों में देखा जा सकता है। उन्हें समितियों का सदस्य नहीं बनाया जाता क्योंकि पशुओं के मालिक पुरुष होते हैं। अत: पुरुष ही समितियों के सदस्य बन सकते हैं। यह सभी सहकारी संगठनों के लिए सत्य है जिसमें सबसे बड़े और शायद आर्थिक रूप से सफलतम दुग्ध सहकारी संगठन 'अमूल' भी शामिल है। चूंकि समितियों के सदस्य पुरुष होते हैं तो निर्णय लेने वाली सभाओं में उनका चयन होता है जैसे आरंभिक कार्यकारी समितियों से लेकर ऊपर के पदों तक। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में आधिपत्य तो महिलाओं का है लेकिन निर्णय लेने तथा नीति निर्धारण का कार्य पुरुष करते हैं। यह ठीक है कि ये सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों की आर्थिक स्थिति में सुधार करती हैं। लेकिन इनसे लिंग भेद की असमानताएं और मजबूत होती हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्व-रोज़गार के अन्य काम हैं कसीदाकारी (कटाई) औद दस्तकारी करना। ये कार्य उपर्युक्त कार्यों से भिन्न हैं क्योंकि इनमें से अधिकांश केवल महिलाओं द्वारा ही किए जाते हैं। इन वस्तुओं का बाजार शहरी क्षेत्र में विशेषत: संपन्न क्षेत्रों में होता है। विभिन्न वस्तुओं को तैयार करने

के लिए महिलाएँ सिलाई, तथा नमूने बनाने के अपने पारंपरिक शिल्प का प्रयोग करती हैं। ये शिल्प घर पर अपनी माताओं से ग्रहण किए जाते हैं तथा परिवार के लिए इनका प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण के लिए गुजरात और राजस्थान के उत्तरी जिलों में महिलाएँ चमकीले और तेज रंगों के वस्त्र पहनती हैं। इनमें से कुछ वस्त्रों में बहुत ही जटिल कढ़ाई की हुई होती है। इस प्रकार के वस्त्र मुख्यत: अपने लिये अथवा परिवार के दूसरे सदस्यों के लिये तैयार किये जाते हैं। गुजरात के बनासकांठा जिले में अहीर जाति की महिलाओं से अपनी बेटी के दहेज के रूप में वस्त्रों के छह सेट तैयार करने की उम्मीद की जाती है। इन चीज़ों को तैयार करने में अत्यधिक धैर्य, शिल्प और समय की आवश्यकता होती है। महिलाएँ ये कार्य अपने फ़ालतू समय में करती हैं। चूंकि इन वस्त्रों की कसीदाकारी में बहुत समय लगता है। अत: महिलाएँ प्राय: अपनी बेटी की शादी से कई साल पहले ही इनको बनाना आरंभ कर देती हैं।

महिलाओं के ये शिल्प बाजार के लिए वस्त्र तैयार करने के लिये भी प्रयोग किये जाते हैं। अधिकांश मामलों में उन्हें बाजार की आवश्यकताओं के अनुरूप अपने पारंपरिक शिल्प को बदलना पड़ता है। इन पारंपरिक शिल्पों का प्रयोग न केवल अपने परिवार के लिये वस्त्र और अन्य वस्तुएँ बनाने के लिये किया जाता है बल्कि जब इनका बाहर व्यापार किया जाता है तो परिवार के लिये एक आय का साधन भी बन सकते हैं। इस प्रकार हमने देखा कि ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं का बहुत बड़ा भाग अपने परिवार को बनाये रखने के लिये शिल्प कार्यों में लगा हुआ है।

10.4 शहरी क्षेत्रों में स्व-रोज़गारत महिलाएँ

ग्रामीण क्षेत्रों और शहरी क्षेत्रों में स्व-रोज़गार के कार्यों में बहुत अंतर होता है। शहरी क्षेत्रों में स्व-रोज़गार में महिलाओं की अत्यधिक संख्या है। अधिकाश महिलाएँ इसलिये कार्य करती हैं कि वे अपने परिवार को सहारा दे सकें या पारिवारिक आय में वृद्धि कर सकें। शहरी क्षेत्रों में स्व-रोज़गार में लगी महिलाओं का अपना कार्य होता है। कुछ कार्य घर पर आधारित हैं जहाँ छोटे बच्चे कार्य करने में उनकी सहायता करते हैं। दस्तकार और शिल्पकार के कुछ ऐसे परिवार हैं जैसे कुम्हार और मोची आदि जो स्व-रोज़गार में हैं और शहरों में भी अपना पारंपरिक काम करते हैं। इस क्षेत्र में काफी महिलाओं को नए प्रकार का कार्य करना पड़ता है जो विशेषत: शहरों में ही होता है। इस भाग में हम इस पर चर्चा करेंगे। इस क्षेत्र में महिलाओं द्वारा झेले जाने वाली समस्याओं की भी जाँच करेंगे। हम उन महिला उद्यमियों पर चर्चा नहीं करेंगे जो लघु उद्योग या व्यावसायिक स्थापनाएँ चलाती हैं क्योंकि इस पर इकाई 13 में प्रकाश डाला गया है। इस भाग में हम मुख्यत: स्व-रोज़गार वाले श्रमिकों के अपेक्षाकृत निर्धन वर्ग पर चर्चा करेंगे।

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है कि स्व-रोज़गार वाली महिलाओं द्वारा अनेक कार्य किए जाते हैं। राष्ट्रीय स्व-रोज़गार महिला आयोग (श्रमशक्ति) की रिपोर्ट के अनुसार स्व-रोज़गार वाली अधिकांश महिलाओं द्वारा किए जाने वाले कार्यक्षेत्र हैं – गृह निर्माण, वस्तुएँ बेचना तथा घरेलू नौकरियाँ। कुछ अन्य कार्य भी हैं जिनमें महिलाएँ लगी हुई हैं : गलियों से रद्दी कागज, प्लास्टिक और धातु की चीज़ें बीनना तथा कूड़ा करकट हटाना। ये महिलाएँ निर्धनों में सबसे अधिक निर्धन हैं। उनकी कार्य और जीवन यापन की स्थिति गरीबी की रेखा से काफी नीचे हैं। उनका कार्य प्रात: जल्दी आरंभ होकर देर रात तक चलता है। इसके बावजूद वे केवल जीवित रहने लायक ही आय कर पाती हैं। आइए, हम संक्षेप में उनके कार्यों का वर्णन करें।

क्या फेरीवाला या विक्रय के रू. में कार्य करने से महिलाओं को आत्मविश्वासी बना सकेगा?
सौजन्य : देवल सिंघराय, इग्नू, नई दिल्ली

विचार करें - 1

हिलाओं को भारी बोझ उठाने और पत्थर तोड़ने जैसे अत्यधिक शारीरिक श्रम और थकाने वाले
ार्य करने पड़ते हैं। ये अपने घरेलू कार्य करने के अलावा है। क्या आप सोचते हैं कि यह उनके
ति न्याय है? क्या आपके पास इसका कोई वैकल्पिक समाधान है? अपने उत्तर कापी में लिखने से
वं श्रमिक बल की किसी महिला से चर्चा करें।

निर्माण उद्योग में महिला श्रमिकों की संख्या कुल संख्या की आधी है। वे जो कार्य करती हैं वह
चले स्तर का है। उन्हें पत्थर तोड़ने पड़ते हैं। निर्माण स्थल पर उन्हें ईंटों पत्थरों और कंकरीट
भारी बोझ अपने सिर पर उठाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अपने कार्य के साथ-साथ उन्हें अपने
च्चों की देखभाल करनी पड़ती है तथा परिवार के लिए भोजन पकाना पड़ता है। इससे उन पर
ातिरिक्त दबाव पड़ता है। यदि हम महिलाओं की कुल कार्य गतिविधियों को देखें तो हम पाएँगे कि वे
ास्तव में पुरुषों से अधिक शारीरिक श्रम करती है। जब कभी निर्माण कार्य में मशीनों का प्रयोग किया
ाता है तो इससे भारी कार्य का बोझ कम हो जाता है। उदाहरण के लिए पत्थर तोड़ने वाली मशीन
ाथ द्वारा पत्थर तोड़ने का कार्य आसान हो सकता है तथा शेष शारीरिक श्रम वाले कार्य महिलाओं
लिए छोड़ दिए जाते हैं।

निर्माण कार्य जैसे कार्य स्थायी नहीं होते। अस्थायी होने के साथ-साथ इसमें श्रमिकों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पड़ता है। एक स्थल से कार्य समाप्त होने के बाद दूसरे कार्य के लिए श्रमिकों को अन्य कार्य स्थलों पर जाना पड़ता है। इसलिए महिलाओं को न्यूनतम घरेलू सुविधाओं के साथ खानाबदोश का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। अधिकांश ठेकेदार अपने श्रमिकों के लिए आवासीय सुविधा प्रदान नहीं करते। नहाने और पीने के पानी की कोई सुविधा नहीं होती और न ही बच्चों की देखभाल का कोई प्रबंध होता है। शिशुओं के लिए कोई बाल गृह नहीं होते। बच्चे कार्य समय में अपनी माताओं के साथ ही रहते हैं। इस प्रकार निर्माण स्थल पर धूल तथा गर्मी उन पर पड़ती रहती है। इन लोगों के पास स्थायी निवास नहीं होते अत: इन्हें राशन कार्ड नहीं मिलते और इनके बच्चों को स्कूल में प्रवेश नहीं दिया जाता। कुछ सुरक्षा कानून तो हैं लेकिन उनको कभी लागू नहीं किया जाता। महिलाएँ असहाय हैं तथा रोज़गार के लिए ठेकेदारो की दया पर निर्भर रहती हैं। वे अपने अधिकारों की कभी मांग नहीं करतीं क्योंकि ऐसा करने पर उन्हें अपने कार्य छूटने का डर होता है।

क्या आप जानते हैं? 2

सामान बेचना थोड़ा बेहतर व्यवसाय है क्योंकि इसमें आय थोड़ा अधिक होती है। महिलाएँ बाज़ारों में फल, सब्जियां, मछली आदि तथा गलियों में वस्त्र व अन्य वस्तुएं बेचती हैं। इस कार्य में भी काफी मेहनत होती है। विक्रेताओं को प्रात: जल्दी उठकर अपनी वस्तुएँ खरीदने के लिए थोक मंडी जाना पड़ता है। इसके बाद उन्हें वस्तुओं को साफ़ करना पड़ता है और बेचने के लिए बाजार जाना पड़ता है। इन महिलाओं को एक ही समय में कई कार्य करने पड़ते हैं। जिस वस्तु को वे बेचती हैं उन्हें उसके बारे में कुछ जानकारी होनी चाहिए नहीं तो थोक बाज़ारों में उन्हें ठगा जा सकता है। उन्हें हिसाब-किताब भी आना चाहिए क्योंकि वे पैसे का लेन-देन करती हैं। हमें इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि अधिकाश मामलो में ये महिलाएँ अनपढ होती हैं या उनके पास केवल आरंभिक शिक्षा ही होती है। कार्य करते-करते उन्हें कार्यों में कुशलता प्राप्त हो जाती है।

इन महिलाओं को मुख्य समस्या पुलिस या नगर-पालिका अधिकारियों से होती है। यद्यपि फेरी लगाकर माल बेचने की परंपरा काफी पुरानी है तो भी शहरी सरकारें इसे अवैध मानती हैं। इस प्रकार इन अधिकारियों द्वारा ऐसी महिलाओं को निरंतर तंग किया जाता है। उन्हें प्राय: अपने व्यवसाय स्थल से हटा दिया जाता है या उनका समान जब्त अथवा नष्ट कर दिया जाता है। तंग होने से बचने के लिए उन्हें रिश्वत भी देनी पड़ती है। इन सबसे उनकी आय काफी कम हो जाती है।

उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त महिलाओं को अपने बच्चों और दूसरे घरेलू कार्यों में भी काफी समय लगाना पड़ता है। इससे उनका जीवन और अधिक मुश्किल हो जाता है। पुरुष विक्रेताओं को घरेलू कार्य नहीं करने पड़ते। वे अपनी महिला संबंधी से उनके लिए ये सब करने की अपेक्षा रखते हैं।

महिलाओं के लिए स्व-रोज़गार का एक अन्य साधन है घरेलू नौकर होना। झुग्गियों में रहने वाली बहुत सी महिलाएँ संपन्न वर्ग के घरों में अतिरिक्त समय में कार्य करती हैं। वे घरेलू कार्य जैसे घर के बर्तन साफ करना, घर की सफाई करना, कपड़े धोना तथा खाना पकाना आदि कार्य करती हैं। वे अनेक घरों में कम मज़दूरी पर यह कार्य करती है। कुछ महिलाएँ सम्पन्न घरों में पूरे समय कार्य करती हैं और घर के मालिकों द्वारा उन्हें भोजन एवं रहने की सुविधा प्रदान की जाती है।

घरेलू श्रमिकों का भी अनेक प्रकार से शोषण किया जाता है। चूंकि वे अकेले अनियमित श्रमिक होते हैं अत: उन्हें केवल कार्य दिवसों का ही भुगतान किया जाता है। दूसरे शब्दों में उन्हें कोई छुट्टी नहीं

मिलती। उनकी मज़दूरी कम होती है और अतिरिक्त समय में कार्य करने वाले श्रमिकों को आय बढ़ाने के लिए कई घरों में कार्य करना पड़ता है। जो घरों में पूरे समय कार्य करती हैं उनको भी कोई छुट्टी नहीं मिलती क्योंकि जहाँ वे रहती हैं और कार्य करती हैं उस परिवार का उन्हें प्रतिदिन का कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार कम मज़दूरी, अत्यधिक कार्य अवधि के साथ अपने लिए कोई छुट्टी न होना उनके रोज़गार की मूलभूत विशेषताएँ हैं। बहुत बार इन महिलाओं का नियोक्ता परिवार के पुरुष सदस्यों द्वारा यौन शोषण भी किया जाता है।

इन श्रमिकों के लिए अपनी समस्याओं की शिकायत करने और उसके निवारण के लिए कोई उपाय नहीं हैं। उनके रोज़गार की सुरक्षा बहुत कम होती है। कार्य अवधि निश्चित नहीं होती तथा वेतन बहुत कम होता है। उनके हितों की सुरक्षा के लिए तथा उन्हें सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए कोई श्रमिक कानून नहीं है। ऐसी कोई ट्रेड यूनियन नहीं है जो उनके कल्याण के विषयों को उठाए। बंगलौर में 'महिलाओं की आवाज़' जैसी कुछेक यूनियनें हैं जो घरेलू नौकरों की समस्याओं में रुचि लेती हैं। कुल मिलाकर स्व-रोज़गार का यह वर्ग सरकार और यूनियनों दोनों द्वारा उपेक्षित है।

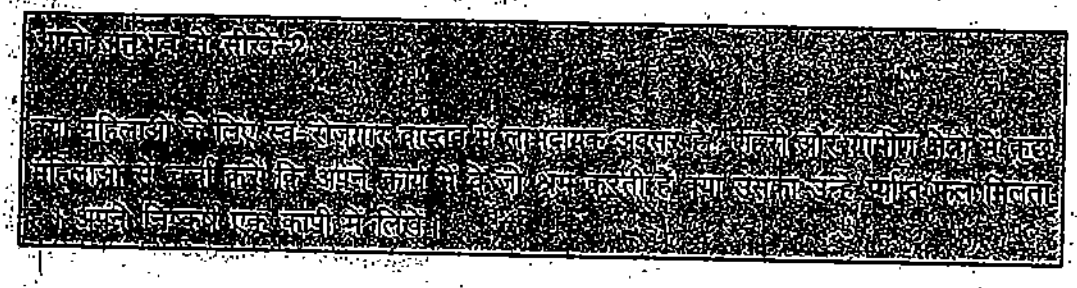

ऊपर वर्णित कार्यों के अतिरिक्त शहरी क्षेत्रों में स्व-रोज़गार वाली महिलाओं को अनेक प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं जिनमें अत्यधिक श्रम होता है। फिर भी ऐसे कार्यों से प्रतिलाभ बहुत कम मिलता है। स्व-रोज़गार महिलाओं की बहुत संख्या अपनी आजीविका दर पर कार्य करना जैसे बीड़ी बनाकर, वस्त्रों की सिलाई करके, कसीदाकारी आदि द्वारा कमाती है। ऐसे कार्य करने वाली अधिकांश महिलाएँ घर पर ही ये कार्य करती हैं और उन्हें घरेलू श्रमिक कहा जाता है। इस तथ्य से ऐसा आभास मिलता है कि ये स्वतंत्र श्रमिक हैं जो बाहर की अपेक्षा अपने घर पर कार्य करती हैं। यह सत्य नहीं है। यद्यपि ये महिलाएँ स्व-रोज़गार में लगी हैं लेकिन वे स्वतंत्र नहीं हैं। किए गए कार्य के लिए उन्हें दी गई दर बहुत कम होती है। इस प्रकार उन्हें अल्प मज़दूरी कमाने के लिए भी बहुत अधिक समय तक कार्य करना पड़ता है। वास्तव में उनकी स्व-रोज़गार की स्थिति उनके शोषण का कारण बन जाती है।

यदि उपर्युक्त श्रमिक किसी प्रतिष्ठान में नियमित कर्मचारी होती तो ये देय लाभ की भी हकदार होती तथा उन्हें नियमित कर्मचारियों वाली वैध मज़दूरी भी मिलती। उन्हें स्व-रोज़गार वाली बताकर निर्माता उनसे यथासंभव लाभ उठाते हैं और बदले में उन्हें किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा भी प्रदान नहीं करते तथा न ही उचित मज़दूरी देते हैं। इस प्रकार निर्माता स्व-रोजगाररत महिलाओं के शोषण के सहारे लाभ उठाते हैं।

एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए। ठेके पर कार्य करने से इन महिला श्रमिकों पर अत्यधिक दबाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त उन्हें अपने घर का भी सारा कार्य करना पड़ता है। इसका अर्थ है कि उनका दोहरा शोषण होता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि निर्धन महिलाओं में स्व-रोज़गार कई प्रकार से शोषण की व्यवस्था है।

10.5 स्व-रोज़गाररत महिलाओं को संगठित करना

ऊपर के अनुच्छेदों में हमने देखा कि स्व-रोज़गार वाली महिलाओं का अत्यधिक शोषण किया जाता है। उनका शोषण कई प्रकार से किया जाता है। प्रथम असंगठित क्षेत्र में श्रमिक के रूप में उन्हें बहुत कम मज़दूरी मिलती है। दूसरे कार्य देने वाले से उनके संबंध मुख्यत: मालिक और नौकर के होते हैं और उन्हें श्रमिक के कोई अधिकार भी नहीं मिलते। उनकी सेवाएँ मालिक की इच्छानुसार कभी भी समाप्त की जा सकती है और उन्हें कोई सामाजिक सुरक्षा भी प्राप्त नहीं होती। ये बहुत कम कानूनी सुरक्षा की हकदार होती हैं और वह भी कभी लागू नहीं होती। महिलाएँ या तो अपने अधिकारों से अनजान होती हैं अथवा जो थोड़ा बहुत मिलता है उसके समाप्त होने के डर से उनकी माँग नहीं करती। तीसरा कारण उनके अपने समुदाय में ही है वह है पुरुष आधिपत्य के माध्यम से महिलओं का शोषण। अजीविका कमाने के लिए एक तो इन महिलाओं को कार्य करना पड़ता है उसी समय उन्हें अपने बच्चों की देखभाल करने के साथ-साथ गृहकार्य भी करना पड़ता है। मुख्यत: महिला अपनी कार्यकुशलता को सुधारने के लिए संस्थागत सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए नहीं पहुँच पाती। इनमें से अधिकांश महिलाएँ बैंक ऋण नहीं ले सकतीं क्योंकि उनके पास गिरवी रखने को पर्याप्त संपत्ति नहीं होती। उन्हें साहूकारों पर निर्भर रहना पड़ता है जिनकी ब्याज दर काफी ऊंची होती है जिससे वे स्थाई रूप से ऋण में दबी रहती हैं। सरकार द्वारा प्रायोजित कुछ सुविधाएँ जैसे उनकी निपुणता को बढ़ाने तथा गरीबी कम करने के लिए कुछ प्रशिक्षण कार्यक्रम हैं लेकिन अधिकांशत: ये महिलाएँ प्राय: उनमें नहीं पहुँच पाती। इन महिलाओं को इन योजनाओं से कभी कोई लाभ नहीं हुआ क्योंकि उन्हें इनकी जानकारी नहीं होती तथा उनके पास इन कार्यक्रमों में पहुँचने के साधन नहीं हैं। अगले अनुच्छेदों में हम स्पष्ट करेंगे कि वे साधन क्या हैं जिनके बारे में हम महिलाओं को संगठित करने के संबंध में विस्तार से व्याख्या करेंगे।

स्वरोजगार के लिए संगठित : सशक्तिकरण के लिए क्या नया ज्ञान है?
सौजन्य : मनोज बिष्ट, पिथौरागढ़, यू. पी.

10.5.1 ग्रामीण स्व-रोज़गाररत महिलाएँ

सरकार द्वारा चलाई जाने वाली अनेक योजनाएँ हैं जिनका उद्देश्य ग्रामीण निर्धनों का आर्थिक उत्थान

करना है। इनमें समग्र ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई आर डी पी) जवाहर रोजगार योजना (जे आर वाई) तथा स्व-रोज़गार के लिए युवा का प्रशिक्षण (टी आर वाई एस ई एम) और इसी प्रकार की अन्य संस्थाएँ इसमें सम्मिलित हैं। यह योजना आई आर डी पी का ही एक भाग है जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों में दरिद्रता से नीचे रेखा में रहने वाले पुरुष और महिलाएँ रहती है। इस योजना का उद्देश्य इन महिलाओं को आर्थिक और संस्थागत लाभ पहुँचाना है ताकि वे स्व-रोज़गार के माध्यम से अपनी आय बढ़ा सकें। यह भी माना जाता है कि महिलाओं के उत्थान से बच्चों की देखभाल में सुधार होगा क्योंकि महिलाओं को ही बच्चों की देखभाल करनी होती है।

दूसरी योजनाएँ भी हैं जो गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा चलाई जाती हैं जैसे बचत समितियाँ सहकारी समितियाँ ग्रामीण शिल्प कलाओं में कार्य कुशलता को बढ़ाने के लिए महिलाओं की एसोसिएशन तथा उत्पादों को खरीदने-बेचने के लिए क्रय-विक्रय समितियाँ। हम इस प्रकार की गतिविधियों के कुछ मामलों को देखेंगे और पता लगाएंगे कि ये महिलाओं को अधिकार संपन्न बनाने मे कैसे सहायता करते हैं।

क्या आप जानते है? 3

डी डब्ल्यू ए सी आर ए (डवाकरा) कार्यक्रम महिलाओं को छोटे मोटे व्यवसाय या कृषि के लिए ऋण देकर उनके स्व-रोजगार को बढ़ावा देता है। महिलाएं इन ऋणों को छोटी किराने की दुकान खोलने के लिए, या ऋण को वस्त्रों की कटाई सिलाई आदि के लिए घरेलू उद्योग की पूंजी के रूप में अथवा बिक्री के लिए फल सब्जियां उगाने हेतु प्राप्त कर सकती है। इन योजनाओं में मुख्य समस्या यह है कि ये विभिन्न सरकारी संस्थाओं द्वारा चलाई जाती है। महिलाओं को व्यवसायी के रूप में आने वाली समस्याओं से निपटने के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। उदाहरणार्थ यदि वे छोटा व्यापार आरंभ करने के लिए ऋण लेती है तो उन्हें वस्तुएं खरीदने, हिसाब-किताब रखने, स्टॉक रजिस्टर रखने और लोगों की जरूरतें ज्ञात करने की जानकारी होनी चाहिए। अनेक मामलों में यह पाया गया है कि ये महिलाएं लाभ अर्जित नहीं कर पातीं तथा दिए गए ऋण को नहीं चुका पातीं। यह भी देखा जा सकता है कि महिलाओं के लिए कार्य करने वाले गैर-सरकारी संगठन तथा महिला संगठन सरकारी संगठनों से अधिक सफल है। ये संगठन महिलाओं की वास्तविक जरूरतों का मूल्यांकन करने में सक्षम हैं। वे इन महिलाओं को प्रशिक्षित करने का भी प्रयत्न करते हैं ताकि वे इन आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक और तरीका है महिलाओं को सहकारिताओं तथा महिला संगठनों में संगठित करना। इस तरीके से ये महिलाएं वैसी ही स्थिति वाली अन्य महिलाओं के सहारे अपना आत्मविश्वास प्राप्त कर सकती हैं।

1982 में आंध्र प्रदेश में एक गैर-सरकारी संगठन सहकारी विकास निधि (सी डी एफ) की स्थापना धान-किसानों की सहकारी समितियों द्वारा की गई। इस निष्कर्ष ने स्थानीय महिलाओं की अपनी बचत एवं ऋण सहकारी समितियाँ स्थापित करने में सहायता प्रदान की। इन महिलाओं ने बीस-बीस महिलाओं के समूह बनाए और समूह के प्रत्येक सदस्य को अपनी बचत के रूप में 10 रु. प्रति मास अंशदान देना होता था। समूह द्वारा एकत्रित राशि बैंक में जमा की जाती है। बाद में बचत में वृद्धि होने पर वे अपना छोटा व्यवसाय आरंभ करने, पशु खरीदने या घर का सामान खरीदने के लिए ऋण ले सकती हैं। सी डी एफ महिलाओं को प्रबंधात्मक तथा हिसाब-किताब रखने के कार्य में निपुणता तथा सहकारिताओं की कार्य प्रणाली के बारे में सूचनाएँ प्रदान करने में भी सहायता प्रदान करती है। अध्ययनों से पता लगता है कि इन महिला सदस्यों को ऋण लेकर छोटा व्यवसाय आरंभ करने से आर्थिक लाभ हुआ है। इससे उनकी आर्थिक स्वतंत्रता में वृद्धि हुई। इसके अतिरिक्त अपना व्यवसाय करने से उनमें निपुणता (कौशल) और आत्म विश्वास में भी वृद्धि हुई।

सी डी एफ की एक दिलचस्प विशेषता यह है कि जब इसके सदस्य सफलतापूर्वक अपनी योजना आरंभ कर लेते हैं तो यह धीरे-धीरे अपनी सहायता हटा लेती है। यह इसलिए किया जाता है ताकि महिला सदस्य अपने साधनों पर निर्भर रह सकें। इसका परिणाम यह हुआ कि इन संगठनों के सदस्य आर्थिक तथा प्रबंधात्मक दायित्वों को पूरा करने में अधिक आत्मनिर्भर होने लगे।

इस तरह का एक और रोचक उदाहरण गुजरात के बनासकांठा जिले में स्व-रोज़गार महिला एसोसिएशन (सेवा) है। यह जिला मुख्यत: राज्य के उत्तरी भाग में सूखा क्षेत्र है। इस क्षेत्र के लोग प्राकृतिक विपदाओं, निरंतर गरीबी, कम शिक्षा, अत्यधिक मृत्युदर से प्रभावित रहते हैं। इन्हें सूखे की अवधि में अच्छे रोज़गार की तलाश में दूसरे क्षेत्रों मे जाने की निरंतर आवश्यकता रहती है। सेवा ने यूनियन बनाकर महिलाओं को इस क्षेत्र में संगठित करने का प्रयत्न किया। फिर भी देखा गया कि ऐसे क्षेत्र में रोज़गार के काई अवसर नहीं हैं और स्व-रोज़गार के भी कोई अवसर नहीं हैं, ये योजनाएँ सफल नहीं होंगी। इसलिए सेवा ने महिलाओं का उत्पादक समूहों के रूप में संगठन बनाने की वैकल्पिक योजना बनाई जो वास्तव में औपचारिक रूप से उत्पादक सहकारी समितियाँ बन गई।

बनासकांठा महिला एसोसिएशन (बी डब्ल्यू ए) सेवा की सहायता से निर्मित ग्रामीण महिला उत्पादक समूहों का परिसंघ है। बी डब्ल्यू ए ऋण समूह (सी डी एफ द्वारा निर्मित सहकारिताओं जैसे) बनाकर महिलाओं की सहायता करती है। यह महिलाओं को इसलिए भी संगठित करती है ताकि सामूहिक कार्यों के माध्यम से डी डब्ल्यू ए सी आर कार्यक्रम का प्रभावी प्रयोग कर सके। उदाहरण के लिए 10 महिलाओं का समूह डवाकरा से अपने निजी ऋण के द्वारा खाली भूमि को उत्पादन के उद्देश्य से तैयार करता है। दूसरा समूह डवाकरा के ऋणों से पौधों की नर्सरियाँ बनाता है जिससे उन्हें रोज़गार और आमदनी होती है। इस प्रकार उत्पादक समूह विभिन्न रोज़गारों जैसे कढ़ाई, वस्त्र निर्माण, चर्म कार्य, नमक उत्पादन, जंगल उत्पाद एकत्रित करने आदि में भी बनाए गए। इसके अतिरिक्त बी डब्ल्यू ए ने दूध उत्पादन सहकारिताओं के पुनरुत्थान में भी सहायता की। ये सहकारी समितियां महिला सदस्यों के द्वारा पुन: आरंभ की गई।

महिलाओं के निर्धन वर्गो में ऊपर वर्णित प्रयत्नों को बढ़ावा देने के अतिरिक्त बी डब्ल्यू ए उनके उत्पादों के विपणन मे भी सहायता करती है। महिलाओं को उनके पारंपरिक शिल्पों के विकास के लिए नियमित प्रशिक्षण भी प्रदान करती है ताकि उनके उत्पाद बाजार में प्रतिस्पर्धा कर सकें। इन कार्यक्रमों से उनकी घरेलू आमदनी में वृद्धि हुई, उनके घरों उनकी जातियों में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ तथा रोज़गार के लिए दूसरे स्थानों पर जाने की आवश्यकताएँ कम हो गई।

ऊपर दिए उदाहरणों से हम देख सकते हैं कि हाशिये पर खड़ी महिलाओं को भी संगठित करने में सहायता प्रदान कर स्व-रोज़गार उत्पादकों के रूप में सक्षम बनाना संभव है। ऐसे ही अनेक उदाहरण देश के विभिन्न भागों से भी हैं। ये उदाहरण सिखाते हैं कि इन महिलाओं के सामूहिक कार्यों से उनकी अनेक समस्याएँ समाप्त हो सकती हैं।

10.5.2 शहरी और स्व-रोज़गाररत महिलाएँ

इस भाग में हम शहरी एवं स्व-रोज़गार संगठन के कुछ रूपों पर चर्चा करेंगे। तीन मुख्य रूप जिनके माध्यम से महिलाएँ अपने हितों की रक्षा के लिए संगठित होती हैं वे हैं : ट्रेड यूनियनें, सहकारी समितियाँ तथा महिला संगठन।

विचार करें - 2

ट्रेड यूनियनें श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए बनाई जाती है। वे ऐसा करने में कहां तक सक्षम हैं? किसी ट्रेड यूनियन की कुछ महिला कर्मचारियों से बात करें कि क्या उनके हितों का ट्रेड यूनियन के नेताओं और सदस्यों द्वारा ध्यान रखा जाता है या उनकी रक्षा की जाती है। आपने जो अनुभव किया उस पर विचार करें तथा उन्हें एक कापी में लिखें।

ट्रेड यूनियनें श्रमिकों द्वारा अपने हितों की रक्षा के लिए बनाई जाती हैं। असंगठित क्षेत्र और विशेषत: स्व-रोज़गार में ट्रेड यूनियनें बनाना आसान नहीं है। किसी ट्रेड यूनियन के बनने की मूलभूत आवश्यकता है किसी नियोक्ता का होना। स्व-रोज़गार की उनकी परिभाषा के अनुसार उनके नियोक्ता नहीं होते। फिर भी इन लोगों में भी यूनियनें हैं। अपेक्षाकृत बड़े शहरों में फेरीवाले तथा दुकानदार सरकारी अधिकारियों के शोषण से अपने बचाव के लिए यूनियनें बना लेते हैं। मुख्यत: नगरपालिका के अधिकारी एवं पुलिस वाले फेरीवालों को तंग करते हैं क्योंकि वे उनके व्यवसाय को अवैध मानते हैं। इसलिए इन लोगों को परेशान किया जाता है और इन्हें अपना व्यवसाय जारी रखने के लिए रिश्वत देनी पड़ती है। इस क्षेत्र में महिला श्रमिकों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण यूनियन है - स्व-रोज़गार महिला एसोसिएशन (सेवा)। मुख्यत: यह गुजरात में है लेकिन अन्य राज्यों में भी इसकी शाखाएँ हैं। वर्तमान में यह गुजरात में सबसे बड़ी ट्रेड यूनियन है जिसकी लगभग 2,00,000 महिला श्रमिक सदस्य है। सेवा ने पटड़ी लगाने वालों, बीड़ी बनाने वालों तथा वस्त्र बनाने वालों को संगठित किया है। इस यूनियन ने रद्दी उठाने वालों और कचरा एकत्रित करने वालों को भी संगठित किया है। पटड़ी वालों एवं कचरा उठाने वालों के संबंध में यूनियन का मुख्य संघर्ष नगरपालिका से है। इस संघर्ष के माध्यम से इस यूनियन ने शहर में बहुत से पटड़ी वालों का कार्य नियमित करवाया है। इसने नगरपालिका से फेरी वालों तथा पटड़ी वालों द्वारा अपने व्यवसाय करने के लिए स्थान स्वीकृत करवाया है। बीड़ी बनाने वालों और वस्त्र बनाने वालों के लिए भी इसने ठेकेदारों से मजदूरी तय करने का समझौता किया है। यह यूनियन स्व-रोज़गार वालों की सौदेबाजी करने की शक्ति बढ़ाने के लिए उन्हें संगठित करने के अलावा अन्य योजनाएँ भी चलाती हैं। इनमें अपने सदस्यों के लिए सहकारी समितियाँ बनाने, बचत सोसयटियाँ, स्वास्थ्य सेवाएँ तथा बीमा योजनाएँ चलाने जैसी योजनाएँ शामिल हैं इन योजनाओं से इसके सदस्यों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने में सहायता मिलती है।

स्वरोजगार की कला की शिक्षा - महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए कार्यनीति
सौजन्य : मनोज बिष्ट, पिथौरागढ़, यू. पी.

क्या आप जानते है? 4

मुंबई में ऐसी अनेक महिलाएँ हैं जिनकी आय का एक भाग अकेले रहने वाले पुरुषों के लिए भोजन तैयार करना है। यह कार्य शहर में श्रमिक वर्ग में आरंभ हुआ। अधिकांश औद्योगिक श्रमिकों के परिवार गाँवों में रहते हैं। इन महिलाओं में से अनेक औद्योगिक श्रमिकों की छंटनी के रूप में निकाली गई हैं और ये अब श्रमिकों के लिए भोजन बनाती हैं। ये यह कार्य अपने घरों पर करती हैं और श्रमिकों के लिए भोजन को डिब्बों या टिफिन में पैक करती हैं। इस कार्य में लाभ बहुत कम है और ये महिलाएँ किसी प्रकार अपनी आजीविका चला रही हैं। इन महिलाओं को सुबह बहुत जल्दी कार्य आरंभ करना पड़ता है ताकि सुबह जल्दी भोजन तैयार हो जाए। इसके बाद वे रात का भोजन बनाना आरंभ देती हैं। इन महिलाओं की मुख्य: समस्या है कच्चा माल उधार खरीदने की तथा हिसाब-किताब रखने की। चूंकि उन्हें संस्थागत ऋण नहीं मिलता अत: इन्हें साहूकारों या किराने वालों से ऊँची ब्याज दर पर ऋण लेने के लिए निर्भर रहना पड़ता है।

मुंबई में 1975 में एक महिला संगठन 'अन्नपूर्णा महिला मंडल' बनाया गया है जो इन महिलाओं की ऋण लेने में सहायता करता है। आरंभ में इसके केवल 12 सदस्य थे। कुछ समय में इसके और सदस्य बन गए और अब शहर में इसके 60,000 सदस्य हैं। संगठन ने अधिकांश निर्धन महिलाओं को सम्मिलित करने के लिए अपनी गतिविधियों में और वृद्धि की है। इसकी शुरुआत एक ऋण सोसायटी के रूप में आरंभ हुई थी ताकि वह इन महिलाओं को उधार व ब्याज दर पर ऋण प्रदान कर सके। इसके दादर तथा वाशी, नई मुंबई में दो प्रशिक्षण केंद्र भी है। इन केंद्रों पर पोषण, स्वच्छता तथा हिसाब-किताब आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है। इस संगठन द्वारा दरिद्र महिलाओं के लिए भी एक केंद्र चलाया जा रहा है जहाँ पर उनके बच्चों को शिक्षा भी दी जाती है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सामूहिक कार्यों से निर्धनतम महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में सुधार किया जा सकता है। ट्रेड यूनियने, सहकारी और महिला संगठन महिलाओं की आर्थिक स्थिति सुधारने तथा उन्हें सुरक्षा प्रदान करने के अरिरिक्त उनमें आत्म विश्वास बढ़ाने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये सफलताएँ बहुतम कम हैं और अधिक प्रयास करने की आवश्यकता हैं। असंख्य शहरी स्व-रोज़गाररत महिलाएँ असंगठित हैं। अत: यह सुनिश्चित करना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि इसी प्रकार के प्रयास स्व-रोज़गार के अन्य वर्गों में भी फैलें।

10.5.3 सुरक्षात्मक उपायों की आवश्यकता

स्व-रोज़गार में लगी महिलाओं को शोषण से बचाने के लिए प्रभावशाली कठोर कानूनों की आवश्यकता है। स्व-रोज़गार वालों में से कुछ कानूनी सुरक्षा प्राप्त एक वर्ग है बीड़ी श्रमिक। बीड़ी और सिगार श्रमिक अधिनियम इन श्रमिकों को कुछ सुरक्षा प्रदान करता है। यह अधिनियम निर्माताओं पर कुछ स्थानीय कर लगाता है जिसका उपयोग श्रमिकों के कल्याण के लिए किया जाता है। कुछ सामाजिक सुरक्षा की भी व्यवस्था है जैसे श्रमिकों के लिए भविष्य निधि। इसी प्रकार के कानून गृह निर्माण में लगे और असंगठित क्षेत्र के दूसरे श्रमिकों के लिए बनाए जा सकते हैं।

सुरक्षा प्रदान करने के प्रयत्नों में सबसे बड़ी बाधा यह है कि स्व-रोज़गार में लगी महिलाएँ अज्ञात रूप से अपने घरों में कार्य करती हैं। इसका अर्थ यह है कि उनकी कुल संख्या ज्ञात नहीं होती। इस विषय को ट्रेड यूनियनों के अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन (आई एल ओ) ने भी उठाया है। विश्व के अन्य भागों में जहाँ स्व-रोज़गार कार्य घरों में किया जाता हैं उनसे भारत की स्थिति में कोई अंतर नहीं है। आई

एल ओ ने गृह आधारित स्व-रोज़गार श्रमिकों के लिए अगस्त, 1996 में एक संविधान पारित किया। इस संविधान में सरकारों द्वारा कानून बनाने के लिए निम्नलिखित मार्गदर्शी सिद्धांत बनाए गए:

i) गृह आधारित स्व-रोज़गार श्रमिकों को दूसरे मज़दूरों के बराबर मानना, ट्रेड यूनियन बनाने तथा सामाजिक सुरक्षा को कानूनी व्यवस्था का अधिकार देना। उन्हें प्रशिक्षण तथा प्रसूति अवकाश तथा बीमा लाभ जैसी सुविधाएँ मिलनी चाहिए। ये सुविधाएँ या लाभ उनके नियोक्ताओं अथवा ठेकेदारों द्वारा दिए जाने चाहिए।
ii) गृह आधारित श्रमिकों को मूल श्रमिकों के आंकड़ों में शामिल करना।
iii) बिचौलियों पर नियंत्रण करना।
iv) यदि कोई व्यवस्था लागू की जाती है तो जाँच के लिए निरीक्षण की व्यवस्था करना।

स्व-रोज़गार वाली महिला श्रमिकों की स्थिति को सुधारने के लिए आई एल ओ की सिफारिशों को ध्यान में रखकर अनेक कानून बनाने की तत्काल आवश्यकता है। इन कानूनों को लागू करने का सबसे प्रभावशाली तरीका है स्वंय श्रमिकों द्वारा सामूहिक प्रयत्न करना। इसलिए यह आवश्यक है कि ये महिला श्रमिक ट्रेड यूनियनें बनाएं।

10.6 सारांश

इस इकाई में हमने स्व-रोज़गार से संबंधित अनेक समस्याओं को शामिल करने का प्रयास किया है। हमने ग्रामीण और शहरी स्व-रोज़गार में भिन्नताएँ भी देखी हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में स्व-रोज़गाररत महिलाएँ पारंपरिक श्रम का ही एक हिस्सा होती हैं और परिवार में लिंग भेद उनके कार्यों में भी आता है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्व-रोज़गार कृषि और गैर कृषि दोनों कार्यों में होता है। इसके अतिरिक्त शहरी क्षेत्रों में भी अत्यधिक महिला श्रमिक स्व-रोज़गार में लगी हुई हैं। हमने इन क्षेत्रों में स्व-रोज़गार श्रमिकों द्वारा किए जाने वाले विभिन्न प्रकार के कार्यों की जाँच की है। बाद के भाग में हमने महिलाओं के हितों की रक्षा और उनकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए स्व-रोज़गार वाली महिला श्रमिकों को संगठित करने की संभावनाओं का भी पता लगाया है।

10.7 शब्दावली

रोजगाररत, रोजगारशुदा (Employed) : मजदूरी (वेतन) देने वाला कार्य और उससे जुड़े लाभ

शोषण (exploitation) : कानूनों, नियमों और यूनियनों के न होने की स्थिति में अनुचित लाभ उठाना

स्वरोजगारत, स्वरोजगारशुदा (selfemployed) : नियमित रोजगार अथवा वेतन आदि के बिना काम करना

असंगठित क्षेत्र (Unorganised sector) : किसी नियमित कानूनों अथवा नियमों के बिना स्वरोजगार अथवा रोजगार पर लगे लोग

10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

वाजपेयी, आशा (संपा), 1996 *वूमेन राइट्स एट दॅ वर्क प्लेस : इमर्जिंग चैलेंजेज़ एंड लीगल इंटरवेंशन्स*, टाटा इंस्टीट्यूट आफ सोशल साइंसेज़, मुंबई

इकाई 11 मज़दूरी (वेतन) रोज़गार : कृषि एवं निर्माण

रूपरेखा

11.0 लक्ष्य और उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 मज़दूरी एवं मज़दूरी संबंधी रोज़गार
  11.2.1 मज़दूरी के प्रकार
  11.2.2 मज़दूरी (वेतन) विभेद की जानकारी
11.3 मज़दूरी रोज़गार
  11.3.1 महिला रोज़गार संरचना : विस्तृत श्रेणियाँ
  11.3.2 महिला रोज़गार के संबध में भारतीय परिदृश्य
  11.3.3 कृषि
  11.3.4 निर्माण
11.4 सारांश
11.5 शब्दावली
11.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में हमने मज़दूरी की सकंल्पना, मज़दूरी के प्रकार और मज़दूरी में विभेद व अन्तर के विषय में विस्तार से चर्चा की है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- मज़दूरी की संकल्पना तथा मज़दूरी के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट कर सकेंगे;
- मज़दूरी के विभेदों तथा मज़दूरी विभेद के जिम्मेदार कारणों की व्याख्या कर सकेंगे;
- किस तरह से मज़दूरी विभेदों को कम या न्यूनतम किया जाये, इसे जान सकेंगें, और
- कृषि और निर्माण के क्षेत्रों से संबंधित मज़दूरी नियोजन को विस्तार से स्पष्ट कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आपका मज़दूरी की संकल्पना तथा मज़दूरी के विभिन्न प्रकारों, मज़दूरी में विभेद एवं कृषि और निर्माण में मज़दूरी नियोजन के संबंध में विस्तार से परिचय कराया गया है। इस में भारत में मौजूद मज़दूरी नियोज़न परिदृश्य का विस्तार से विश्लेषण किया जाएगा। लोग अपनी सेवाओं को किसी संगठन को समर्पित करते हैं या देते हैं उसके बदले में वह संगठन इस सेवा के एवज में उन लोगों की क्षतिपूर्ति करता है इसे यूँ कह सकते हैं कि संगठन सेवा के बदले में वेतन देकर उसका मूल्य चुकाता है यह क्षतिपूर्ति रुपया - पैसा (मुद्रा) अथवा वस्तु या फिर प्रशंसा व संगठन के रूप में हो सकती है। मानव की मूल प्रकृति होती है कि वह जो कुछ कार्यकलाप करता है उसके बदले में कुछ प्राप्त करने की इच्छा रखता है अथवा उसे कार्य के बदले कुछ न कुछ दिया जाता है। लोग संगठन को अपनी सेवायें शरीरिक श्रम या मानसिक श्रम के रूप में प्रस्तुत करते हैं और संगठन उनको इसके बदले में कुछ लाभ देकर श्रम की क्षतिपूर्ति करता है यानी संगठन श्रम के बदले में जो मुद्रा देता है यह राशि श्रम देने वाले की क्षति पूर्ति के रूप में होती है जिसे उसने संगठन को दी है। इस लिये दोनो पक्ष कुछ न कुछ प्राप्त

करते हैं। संगठन पक्ष श्रम प्राप्त करके लाभ कमाता हैं तो दूसरा पक्ष अपना श्रम बेच कर उसके बदले में मज़दूरी या वेतन प्राप्त करता है। अतः यह दोनो पक्षों का लेन देन होता है।

11.2 मज़दूरी एवं मज़दूरी के रूप में रोज़गार

मज़दूरी कमाई का नाम है तथा उत्पादन में किए गए काम के बदले का मूल्य है जिसे श्रम कहते है। किसी संगठन को व्यक्तिगत दी गई सेवाओं के बदले में भुगतान किया गया होता है। यह भुगतान जब किसी संगठन द्वारा व्यक्ति को दिया जाता है तब इसें मज़दूरी अथवा वेतन के नाम से जाना जाता है। यह क्षतिपूर्ति या मज़दूरी का भुगतान सामान्यतः नकद होता है। इसके अतिरिक्त इस भुगतान में पेंशन, अच्छे काम के लिए बोनस तथा कुल लाभ में हिस्सा भी दिया जाता है। इस क्षतिपूर्ति के बदले में पदोन्नति अथवा शाब्दिक प्रशंसा भी की जा सकती है। साथ ही कर्मचारी के बहुत अच्छा काम करने पर व्यक्तिगत संतुष्टि के लिए कुछ धनराशि भी मिल सकती है। वेतन या मज़दूरी के अतिरिक्त कार्य प्रतिपूर्ति के कुछ अन्य पक्ष भी हैं जिन्हें कर्मचारी प्राप्त करना चाहता है जैसे कि काम की संतुष्टि, काम की प्रकृति, ज़िम्मेदारियाँ और उस काम में कितना सर्जनात्मक अंश है इत्यादि शामिल होता है।

क्या आप जानते है? - 1

एक ठोस प्रतिपूर्ति या भुगतान में वेतन की पर्याप्तता, सामाजिक संतुलन, निष्पक्ष साम्य समान काम के लिए समान वेतन जैसे घटकों को भी शामिल किया जाना चाहिए। पर्याप्तता की संकल्पना में आन्तरिक एवं बाहरी तरह के घटक होते हैं। आन्तरिक घटक को संतोषजनक वेतन संकल्पना के अंतर्गत रखा गया है जिसका अर्थ है कि काम के बदले इतना अच्छा नकद वेतन मिले जिससे व्यक्ति अच्छे स्तर का जीवनयापन कर सके जिससे कि आवास, भोजन, यातायात, चिकित्सा देखभाल, बच्चों की शिक्षा जैसी मूल आवश्यकताएँ पूरी हो जाएँ और आपात स्थिति से निपटने के लिए कुछ धन बचाया जा सके आदि को सम्मिलित किया गया है। बाहरी पर्याप्तता का संबंध अन्य उद्योगों में एक जैसे काम और उसके लिए समान कौशल एवं तकनीक की आवश्यकता के आधार पर वेतन निर्धारण की संकल्पना होती है। इसमें विशिष्ट काम के लिए निर्धारित वेतन से कम नहीं मिलना चाहिए अर्थात एक जैसे काम के लिए एक जैसा वेतन मिलना चाहिए।

परंतु अतिरिक्त श्रम अर्थव्यवस्था में यह संभावनाएँ बनी रहेगी कि कामगार मज़बूरी में कम दर या कम वेतन पर भी काम करने को तैयार हो सकता है। फिर भी दी गई माँग और उसकी पूर्ति को ध्यान में रखते हुए नियोक्ता की नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि वह अपने कर्मचारियों को नीतिपरक एवं संतोषजनक वेतन का भुगतान करें। यह न्यायसंगत की संकल्पना नियोक्ता तथा कर्मचारी क्षेत्रों को ही स्वीकार करनी चाहिए जहाँ पर समान काम के लिए जब समान वेतन की माँग की जाती है उसके साथ ही नियोक्ता भी चाहेगा कि कर्मचारी अन्य उद्योगों के उत्पादन की तरह ही उसका उत्पाद भी तैयार करें यानि कि उत्पादित वस्तु की उपयुक्तता, कोटि के स्तर में गिरावट नहीं आनी चाहिए।

काम के भुगतान व्यवस्था की परिकल्पना तथा उसको लागू करने के लिए कार्य विश्लेषण तथा विकास की समुचित व्यवस्था की आवश्यकता है जो आंतरिक तथा ब्राह्य कार्यों की समरूप समानता स्थापित करती है ताकि किसी संगठन में एक जैसा कार्य करने पर कर्मचारियों को समान वेतन मिल सके। वेतन में समानता स्थापित करते समय कार्य की जटिलताएँ कौशल की आवश्यकताएँ एवं कार्य मानकों की व्यवस्था के उद्देश्यों जैसे कारकों को ध्यान में रखने की आवश्यकता होगी।

भारत में वेतन और इसके साथ जुड़े हुए मामलों का संचालन करने के लिए राज्य कुछ कानून बनाता है। यहाँ पर कामगारों से संबंधित उनके रोज़गार की सेवा शर्तों पर अनेक अधिनियम बने हुए हैं परंतु हम यहाँ पर उन्हीं अधिनियमों के बारे में चर्चा करेंगे जो वेतन या मज़दूरी से संबंधित हैं और उनके आधार पर कामगारों के वेतन पक्ष को निर्धारित किया जाता है।

11.2.1 मज़दूरी के प्रकार

मज़दूरी अथवा वेतन की दरें विभिन्न प्रकार की होती हैं जिन्हें विषय-वस्तु के आधार पर परिकलन के सिद्धांत से निर्धारित किया जाता हैं। उनकी सूची निम्न प्रकार है :

1) सामान्य वेतन (नाम मात्र) का संबंध नकद मज़दूरी से होता है।

2) वास्तविक वेतन का अर्थ है काम के साथ मिलने वाले वास्तविक लाभ। वेतन भोगी कर्मचारी का जीवन स्तर उसी तरह के वास्तविक वेतन पर निर्भर करता है। इसलिए विभिन्न व्यवसायों में उपार्जन के मूल्य की तुलना करते समय वास्तविक वेतन के बारे में चर्चा कर लेना आवश्यक है। वास्तविक वेतन अनेक कारकों पर निर्भर करता है। इन कारकों में नकद मज़दूरी शामिल नहीं है। ये कारक निम्नलिखित हैं :

   i) वेतन राशि की क्रय शक्ति
   ii) अतिरिक्त भत्ते और भुगतान के रूप
   iii) कार्य की प्रकृति से संबंधी अतिरिक्त उपार्जन
   iv) कार्य की नियमितता और सेवा शर्तें
   v) भविष्य प्रभावी आजीविका और कार्य की सुरक्षा
   vi) पर्यावरण एवं स्वास्थ्य संबंधी पक्ष

3) कार्य-दर वेतन काम करने के आधार पर निर्धारित होता है अर्थात जितना काम करोगें उसके हिसाब से भुगतान किया जाएगा। उदाहरण के लिए रेडीमेड वस्त्र उद्योग को लिया जा सकता है। इसमें कामगारों को भुगतान उनके किए गए काम के अनुसार किया जाता है अर्थात तैयार वस्त्रों की संख्या के अनुसार किया जाता है। इसी तरह का भुगतान बीड़ी उद्योग में भी किया जाता है।

4) समय दर अथवा 'दिहाड़ी' के बारे में सभी जानते हैं कि इसकी मज़दूरी किए गए काम के घंटों पर आधारित होती है। इस तरह की मज़दूरी का भुगतान प्रायः निर्माण क्षेत्रों एवं कृषि क्षेत्रों में व्यापक रूप से प्रचलित है।

11.2.2 वेतन विभेद की जानकारी

आजीविका व रोज़गार के मध्य

वेतन विभेद अथवा वेतन अंतर का अर्थ है विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए विभिन्न वेतनमान निर्धारित किए गए हैं। इस वेतन विभेद का आधार काम, क्षेत्र अथवा लिंग हो सकता है।

विभिन्न प्रकार के कारणों से वेतन में विभेद मौजूद हैं। वे कारण निम्न प्रकार से हैं :

i) **प्रयोजन प्रोत्साहन :** विभिन्न कार्य/व्यवसाय के लिए विभिन्न वेतन दिया जाता है जिसमें कामगार को विशिष्ट कार्य करने के लिए प्रयोजन के अनुसार प्रोत्साहन या वेतन दिया जाता है। उदाहरण के लिए एक दुकान में काम करने वाले कर्मचारी को प्रबंधक से बहुत कम वेतन मिलता है जबकि एक कामगार प्रबंधक से अधिक शारीरिक श्रम करता है। परंतु यहाँ पर प्रबंधक को इसलिए अधिक वेतन दिया जाता है क्योंकि वह उच्च शिक्षा प्राप्त होता है। साथ ही उसके मानसिक कार्य का अधिक महत्व है। इसी तरह का दूसरा उदाहरण यह है कि वरिष्ठ कर्मचारी और कनिष्ठ कर्मचारी के अंतर को ध्यान में रखते हुए भी किसी भी संगठन में वेतन का अंतर रखा जाता है। किसी भी वरिष्ठ कर्मचारी के उच्च वेतन का यह अर्थ भी लगाया जाता है कि कनिष्ठ कर्मचारी और अधिक परिश्रम करने का प्रयास करें ताकि वे भी अपने वरिष्ठ कर्मचारी की तरह ही उच्च स्तर का वेतन प्राप्त करने में समर्थ हों। इस तरह से एक कनिष्ठ व्यक्ति के बेहतर काम करके उच्च वेतन पाने के लिए उसे प्रोत्साहित भी किया जाता है।

अपने अनुभव से सीखें-1

कुछ कामगारों से मिलिए और उनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों एवं वेतन की जानकारी प्राप्त करें। साथ ही वेतन विभेद या अंतर के कारणों को अपनी नोट बुक में लिखें।

ii) **विशिष्टि कौशल और ज्ञान की कमी :** विभिन्न उद्योगों में वेतन विभेद का कारण यह भी है कि कुछ विशिष्ट श्रम के प्रकारों से संबंधित कामगारों का उपलब्ध न होना या सक्ष्म कामगारों का न मिलना भी है। उदाहरण के लिए वायुयान उद्योग में एक पायलेट तथा डाक्टर। (उदाहरण के लिए बाल श्रमिक, वायु यातायात उद्योग में पायलेट तथा डाक्टर (बाल विशेषज्ञ चिकित्सक) को एक अध्यापक से अधिक वेतन मिलता है। इसका कारण स्पष्ट है कि माँग के अनुसार विशिष्ट श्रम के जानने वालों की कमी। इसलिए विभिन्न व्यवसायों या उद्योगों में श्रम की पूर्ति में कमी होती है जिनके अनेक कारक होते हैं इनमें से कुछ नीचे दिए जा रहे हैं :

क) कुछ व्यवसायों/ पेशों में प्रवेश के लिए बाधाएँ
ख) कुछ व्यवसायों में प्रारम्भिक प्रशिक्षण की लागत तथा अवधि
ग) भौगोलिक क्षेत्रों में गतिशीलता की कमी तथा प्रशिक्षण की कमी के कारण या अन्य कारणों से एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में जाने में रुकावट।
घ) कुछ क्षेत्रों या व्यवसायों में गैर-मौद्रिक लाभों का अत्यधिक आकर्षण ।
ङ) जोखिम में अंतर, अरुचिकर अथवा भाषाओं की सांस्कृतिक वरीयता की अभिरुचि, रीति रिवाज़ इत्यादि जो श्रम की गतिशीलता में रुकावट या बाधाएँ डालती हैं।

iii) **लिंग :** लिंग के आधार पर भी वेतन में अंतर किया जाता है। प्राय: नियोक्ता पुरुषों की तुलना में महिला कामगारों को कम वेतन देते हैं। कभी कभी तो ऐसा भी होता है कि पुरुष और महिलाएँ एक जैसा काम कर रहे हैं फिर भी महिलाओं को कम वेतन या मज़दूरी दी जाती है। इस तरह की स्थितियाँ संभवत: इसलिए भी हैं क्योंकि महिलाएँ प्राय: संगठित नहीं होती हैं तथा वे कभी भी इस भेदभाव के विरुद्ध अपनी आवाज नहीं उठाती है और न ही इसका विरोध करती हैं। इसके अतिरिक्त महिलाएँ अपने अधिकारों के बारे में भी अनभिज्ञ होती हैं। यही कारण है कि नियोक्ता समान कार्य का भिन्न विवरण देकर भेदभाव करने के अनेक तरीके निकाल लेते हैं जैसे कि पुरुषों के लिए कल्याण अधिकारी का पद निर्मित कर देते हैं और महिलाओं के लिए इसी पद का नाम सहायक कल्याण अधिकारी रख देते हैं जबकि दोनों पदों का एक समान काम होता है किंतु

महिलाओं को कम वेतन देने के लिए नाम बदलने जैसे उपक्रम करते रहते हैं। दोनों पदों में समान कौशल एवं श्रम की आवश्यकता पड़ती है किंतु काम का रूप बदल कर अथवा उसका नाम बदल देने से नियोक्ता उन्हें निश्चित रूप से कम वेतन देगा।

iv) क्षेत्र : वेतन विभेद के लिए अन्य कारण क्षेत्र आधारित हो सकते हैं। उदाहरण के लिए टेलीकाम उद्योग का एक प्रबंधक जिसकी नियुक्ति महानगर में है वह अधिक वेतन लेगा जबकि उसी उद्योग के प्रबंधक जिनकी नियुक्ति मुरादाबाद या अलीगढ़ में हैं वे निश्चित रूप से कम वेतन प्राप्त करेंगे। इस का कारण यह है कि जो लोग महानगरों में रहते है उन्हें अतिरिक्त भत्ते दिए जाएंगे जिसे नगर प्रतिपूर्ति या क्षतिपूर्ति भत्ता कहा जाता है। यह भत्ता छोटे नगरों की तुलना में महानगरों में अधिक होता है।

v) वेतन (मज़दूरी) विभेद को न्यूनतम करना : वेतन विभेद को पूरी तरह से समाप्त नहीं किया जा सकता है फिर भी लिंग आधारित जो विभेद किया जाता है उसे कम से कम किया जा सकता है। यह निम्नलिखित से संभव हो सकता है :
   क) जागरुकता
   ख) कानून

क) जागरूकता : महिला कामगारों को कानूनी एवं नागरिक दोनों मामलों में संबंधित अधिकारों के बारे में जागरूक बनाया जाना चाहिए। उन्हें यह भी जानना चाहिए कि कार्यस्थल के वातावरण को अच्छा बनाने के लिए सरकार ने संसद व विधान सभा में कौन कौन से कानून पास किए हैं। जब इन महिलाओं को अपने अधिकारों के बारे में जानकारी होगी ये स्वयं अपने अधिकारों की माँग करने लगेगी। इसके साथ ही मज़दूरी में समान भुगतान और कार्यस्थल के संबंध में अपने अधिकारों को लेने के लिए नियोक्ता पर दबाव बनाने लगेंगी।

ख) कानून : कानून की जानकारी केवल निचले स्तर पर ही नहीं होनी चाहिए अपितु सरकार के स्तर तक हो ताकि अपनी प्रतिक्रिया को ऊपर तक व्यक्त कर सकें। इसके साथ ही शासकों पर इतना दबाव बनाया जाए कि वे लिंग आधारित वेतन विभेद को न्यूनतम करने के लिए कानून बनाएं और फिर उन कानूनों को सही ढंग से लागू करने के लिए उपयुक्त निर्देश दें।

11.3 मज़दूरी रोज़गार

तीसरी दुनिया के देशों में रहने वाली अधिकतर महिलाओं को उनकी रुचि अथवा स्वयं की इच्छा से काम नहीं मिलता है। उन्हें दूसरों की इच्छा के अनुसार श्रम करना पड़ता है। महिलाओं की आर्थिक भूमिका बदल चुकी है तथा उनकी जिम्मेदारियों में परिवर्तन आया है। यह स्थिति विशेषकर गरीब लोगों के समक्ष आई है अब उन्हें जीने के लिए श्रम करना ही पड़ेगा। श्रमिक महिलाएँ प्राय: अत्यधिक गरीब परिवारों से आती हैं जिनमें अधिकतर एक महिला और उसके बच्चे होते हैं। इन श्रमिक महिलाओं में बहुत ही गरीब परिवारों में ब्याही हुई, वृद्ध, तलाकशुदा और विधवाएँ होती हैं जिनके पास मज़दूरी के अतिरिक्त आय का कोई साधन नहीं होता है।

आर्थिक एवं जनसांख्यिकी दोनों के परिवर्तन के कारण विकास की प्रक्रिया में विशेष बदलाव आया है जिससे गरीबों की स्थिति भयंकर तथा बदतर हो गई है। जनसंख्या में वृद्धि और शहरीकरण में अत्यधिक वृद्धि के साथ वृहत पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में वेतन श्रमिकों व श्रम का विशेष वर्ग पैदा हो गया है जिसके

कारण आर्थिक अवसरों पर रोक लग गई है। बेरोज़गारी में तीव्र वृद्धि एवं पुरुष प्रवर्जन मज़दूरों की संख्या में अत्यधिक बढ़ोतरी, स्व: रोजगार आरंभ करने के लिए आवश्यक उत्पादन परिसम्पत्तियों की बेहद कमी तथा वेतन मज़दूरों की सीमित संख्या के प्रमुख कारणों से पुरुष प्रवर्जन में वृद्धि हुई है। इस तरह के आर्थिक दबावों के कारण परिवारों की परम्परागत संरक्षण कल्याण व्यवस्था चरमरा गई है। अब यह व्यवस्था अपना काम नहीं कर पा रही है जिसके अंतर्गत महिलाओं को आर्थिक संरक्षण उपलब्ध कराया जाता था। यह संरक्षण कल्याण व्यवस्था तलाकशुदा महिलाओं और एकल माताओं को उपलब्ध कराई जाती थी जो अब नितांत समाप्त जैसी हो गई है। इसके परिणामस्वरूप अनेक परिवारों का जन्म हो गया जिसमें महिलाएँ भी प्राथमिक स्तर पर आ गई अर्थात इसे यूँ कहा जा सकता है कि एकल महिला को अपने परिवार का मुखिया बन कर उस परिवार का भार उठाने को मज़बूर होना पड़ा है जिसे कहीं से भी किसी तरह की सहायता उपलब्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त पुरुषों के श्रम में बेरोजगारी और कम आय होने के कारण विवाहित महिला कामगारों की संख्या में विशेष वृद्धि हुई है। सहायता प्राप्त अर्थव्यवस्था कम वेतन या मज़दूरी विवाहित महिलाओं पर दुगनी जिम्मेदारी डालती है जिससे परिवार की आय को बढ़ाने में सहायता की आवश्यकता पड़ती है और इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए अतिरिक्त घरेलू उत्पादन तथा घर से बाहर मज़दूरी तलाशनी पड़ती है ताकि परिवार का पालन पोषण करने में कुछ सहायता प्राप्त हो जाए या कुछ आर्थिक सहयोग मिल जाए। इन सब कारणों से महिलाओं पर मज़दूरी करने का भारी दबाव पड़ा है।

11.3.1 महिला रोज़गार संरचना : विस्तृत श्रेणियाँ

रोज़गार क्षेत्र में रोज़गार प्राप्त महिलाओं का व्यावसायिक वितरण महिला कामगारों के वास्तविक स्तर का महत्वपूर्ण सूचक होता है। सर्वेक्षण से प्राप्त सूचनाएँ दर्शाती है कि शहरी अनौपचारिक क्षेत्र में महिलाएं व्यवसाय तीन विस्तृत श्रेणियें में विभक्त हैं। ये श्रेणियां निम्न प्रकार हैं :

1) वेतन मज़दूर
2) स्व-रोज़गार प्राप्त
3) गैर-भुगतान मज़दूर

कार्य की परिभाषा किसी व्यक्ति और परिवार द्वारा किए गए कार्यकलाप या अपने हाथ में काम करने के अधिकार पर दी जाती है। महिलाएं कामगार के रूप में विभिन्न स्थानों पर लगी होती है जिनमें प्रमुख हैं : खेत, गलियां, सड़कें तथा घर।

विचार करें 1

क्या मज़दूरी रोज़गार केवल महिलाएं ही कर सकती हैं? घर पर आधारित प्रतिदिन का श्रम क्या है? क्या आप सोचते हैं कि यह भी इस प्रकार का कार्य है? अपने विचारों को लिखिए।

"स्व रोज़गार" शब्द का अर्थ नकदी फसल, गैर-नकदी फसल, कृषि संबंधी कार्य जैसे कि ग्रामीण उद्योग, व्यापार तथा वाणिज्य, यातायात परिवहन तथा परिवार या बाज़ार के सदस्यों द्वारा उपभोग की जाने वाली सेवाओं में भागीदारी करना है।

"गैर-भुगतान परिवार श्रमिक" का अर्थ है वे महिलाएँ जो बिना भुगतान के आर्थिक कार्यों में अपने पति/पुरुष परिवार सदस्यों के आर्थिक कार्यों में सहयोग करती है और उनके साथ काम करती हैं।

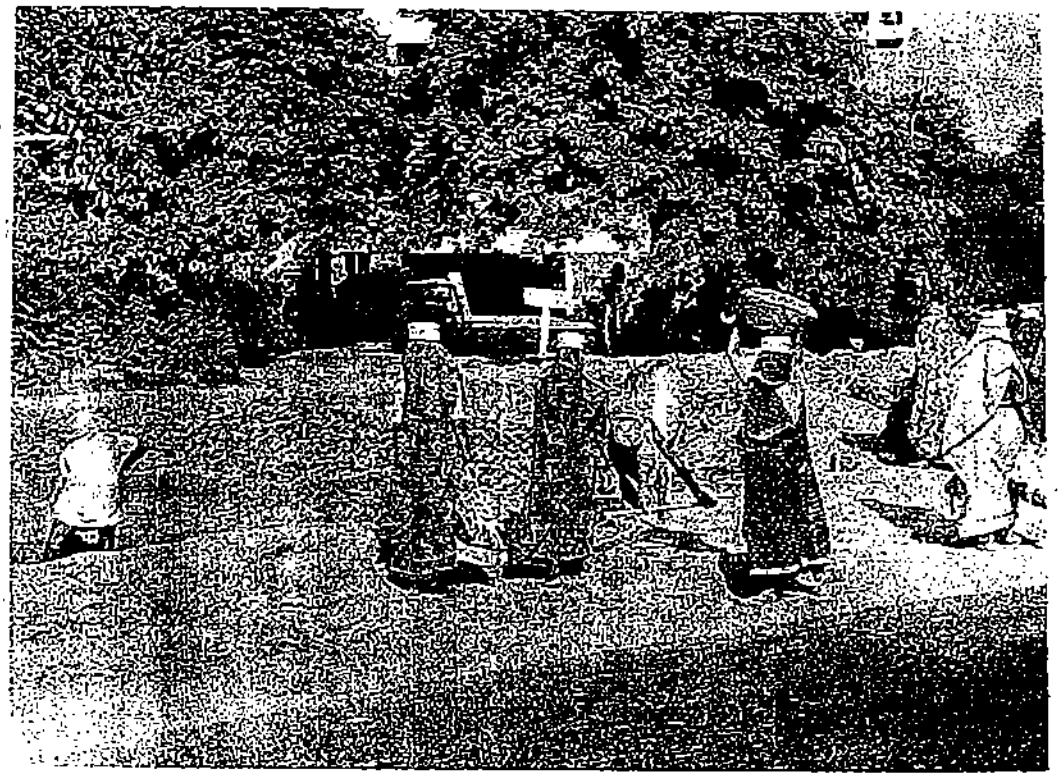

"मज़दूरी रोज़गार" शब्द आमतौर पर काम के बदले नकद/या वस्तु के रूप में मज़दूरी भुगतान को कहते हैं।
सौजन्य : अतुल यादव, नई दिल्ली

इस इकाई में हम कृषि और निर्माण क्षेत्रों में लगी हुई मज़दूर महिलाओं की श्रेणी के बारे में चर्चा करेंगे।

11.3.2 महिला रोज़गार के संबंध में भारतीय परिदृश्य

1971 की जनगणना के अनुसार महिला जनसंख्या का कुल श्रमिक दबाव 17.35% आँका गया है । यद्यपि ये आँकड़े पिछले वर्षों में गिरे है। इन आँकड़ों में जो परिवार खेती बाड़ी के कार्यों में लगे हैं और इन कृषि कार्यों में महिलाओं के सहयोग का उच्च अनुपात मौजूद है जो पुरुषों के साथ बराबर से उत्पादन में सहयोगी हैं। ऐसी महिलाओं को आँकड़ों में केवल घरेलू महिलाएँ दर्शाया गया है जिससे महिलाओं के संगठित क्षेत्रों में महिलाओं और पुरुषों का कुल रोज़गार में दोनों का 10% से कम रोज़गार की भागीदारी है। केवल 6% महिलाएँ ही संगठित क्षेत्रों में कामगार के रूप में काम कर रही है, जहां पर सैद्धांतिक रूप से श्रमिक कानूनों के माध्यम से उनके अधिकारों का संरक्षण होता है। आधे से अधिक ग्रामीण महिला कामगार भूमिहीन हैं और वे कृषि श्रमिक के रूप में कार्य करती हैं। 33% कृषि उद्योगों में स्वरोज़गार में लगी हुई हैं तथा 4% घरेलू उद्योगों में जैसे कि कातना, बुनना, तेल-पेराई, धान कूटना आदि में सम्मिलित हैं। स्वतंत्रता के बाद से महिलाओं का इन क्षेत्रों में अनुपात गिरा है तथा इनका अनुपात केवल बागवानी में उसी तरह से भुगतान बना रहा जैसे पहले था। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि इस बागवानी क्षेत्र में महिलाओं का विशेष कौशल एवं सिद्धहस्त कार्य होता है।

संपूर्ण भारत में ग़रीब महिलाएँ खेतों में मज़दूरी करती हैं। उत्तर भारत में महिलाएँ चाहे कृषि कार्यों में संलग्न ही क्यों न हो वे उन्हें घर में कार्य करने के लिए विशेष जोर नहीं देते हैं। ये महिलाएँ अधिकतर घर के आँगन में ही फसल को संसाधित करती हैं। दक्षिण में धान की खेती में महिलाओं का

विशेष अधिपात्य या यूँ कहें उनका विशेष काम होता है खासकर धान कूटने, धान की बुआई, निलाई एवं सिंचाई आदि में उनका ही अधिकार होता है।

11.3.3 कृषि

भारत में महिलाएँ कृषि क्षेत्र में प्रमुखता से संलग्न हैं। इस क्षेत्र में महिलाओं को नौकरी नहीं दी जाती है। इसलिए शायद इन्हें किसी प्रकार का वेतन भी नहीं दिया जाता है फिर भी ये खेतों में विशेषरूप से अपना सहयोग व श्रम प्रदान करती हैं। महिलाओं का उत्पादन में विशेष सहयोग होता है फिर भी जनगणना सर्वेक्षण में इन्हें घरेलू महिलाएं ही दिखाया जाता है। यह वास्तव में सच है कि जिन परिवारों के पास कृषि भूमि होती है वहाँ पर ये घरेलू महिलाएँ अपना विशेष योगदान देती है। इन मामलों में महिलाओं द्वारा खेतों में किया गया काम मौद्रिक दृष्टि से नहीं आँका जाता और न ही उन्हें इस काम के बदले कुछ क्षतिपूर्ति ही दी जाती है। इस परिघटना को कुछ विद्वानों ने "अदृश्य हाथों" की संज्ञा दी है जहां पर महिलाएँ खेती-बाड़ी के काम धंधों में पूरा काम करती हैं किंतु उनके काम को कहीं भी आँका नहीं जाता है और न ही उन्हें किसी गिनती में लिया जाता है यहाँ तक की उस पर विशेष "ध्यान" भी नहीं दिया जाता है।

अपने अनुभव से सीखें-2

कृषि मज़दूरी में लगी कुछ महिला श्रमिकों से बातचीत कीजिए। उनसे पूछिए कि क्या यह काम उनका मनपसंद काम है? क्या उनके लिए कुछ विकल्प है? क्या उनसे प्राप्त जानकारी एवं सूचनाओं को अपनी नोट बुक में लिखिए।

दूसरी ओर कृषि मज़दूरी रोज़गार में महिलाएँ अत्यधिक मज़दूरी करती हैं। 1981 की जनगणना की रिपोर्ट के अनुसार कुल जनसंख्या 25.12% का हिस्सा कृषि श्रम में लगा हुआ है जिसमें 19.5% पुरुषों की हिस्सेदारी और 46.34% महिलाओं की भागीदारी रही। इसी तरह की प्रवृत्ति 1991 की जनगणना रिपोर्ट में देखी जा सकती हैं। जहाँ पर कृषि श्रमिकों के कुल 26.44% हिस्सा में लगभग पुरुषों का 21.05% और महिलाओं की 44.93% भागेदारी थी। इन दोनों जनगणना रिपोर्टों मे महिला कामगारों का प्रतिशत ऊँचा दिखाया गया है किंतु यह और भी ऊँचा हो सकता था यदि विद्धानों के अनुसार उन 'अदृश्य हाथों" की परिघटना को हम सही रूप से आँकते और अपने आँकड़ों में ठीक रिर्पोट पेश करते।

क्या आप जानते हैं ?

तालिका

भारत में कृषि क्षेत्र में लिंग के आधार पर कामगारों का प्रतिशत् वितरण (कुल, ग्रामीण, शहरी) 1981 एवं 1991

वर्ष	कुल	पुरुष	महिलाएँ
		कुल	
1981	25.12	19.57	46.34
1991	26.44	21.05	44.93

		ग्रामीण	
1981	50.09	24.00	50.36
1991	32.17	26.35	-
		शहरी	
1981	6.08	4.66	16.65
1991	6.75	5.42	15.61

उपर्युक्त दी गई तालिका से स्पष्ट होता है कि कृषि क्षेत्र में ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों में पुरुष कामगारों से महिला कामगारों की लगभग दुगनी से भी अधिक संख्या आँकड़ों में दी गई है।

महिला कार्य बल में महिलाओं की अधिक संख्या होने के निम्नलिखित कारण हैं :

1) सस्ती दरों पर महिला श्रमिकों का उपलब्ध होना तथा
2) मुख्य कारण है कि कुछ काम महिला श्रमिकों के लिए सबसे उपयुक्त हैं।

बालिकाएँ तथा महिला श्रमिक – सस्तेश्रेय के लिए आरक्षित! यह कब तक चलेगा?
सौजन्य : प्रो० कपिल कुमार, इग्नू, नई दिल्ली

आइए अब विस्तार से जानकारी प्राप्त करें

1) महिला कामगार सस्ती दर पर उपलब्ध हो जाती हैं। नियोक्ता प्राय: कम मज़दूरी या वेतन पर महिलाओं को काम पर रखता है। वे भेदभाव के कारण काम छोड़ कर चली जाती है। किंतु महिला कामगार इस अत्याचार का विरोध प्रकट नहीं करती हैं। इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि वे अपने अधिकारों से परिचित नहीं है, इसीलिए उनके विरुद्ध शोषण होने पर भी नियोक्ता के

विरुद्ध कोई आवाज़ नहीं उठाई जाती हैं और न ही कोई कार्रवाई की जाती हैं। नियोक्ता अपने काम पर पुरुष कामगारों को भी भिन्न कार्य देकर नियुक्ति करते हैं और जब उसी काम पर महिला कामगारों की नियुक्ति करते है तो उस समय कार्य विवरण का नाम बदल देते हैं। इसके अतिरिक्त महिलाओं में निरक्षरता की ऊँची दर होने के कारण भी नियोक्ता को इस तरह के भेदभव व शोषण करने का अवसर मिलता है। अशिक्षित होना नियोक्ता के लिए लाभदायक सिद्ध होता है।

2) दूसरा कारण है कृषि क्षेत्र में महिला कामगारों की ऊँची दर क्योंकि इस क्षेत्र में कुछ इस प्रकार के काम हैं जो केवल महिलाओं के लिए ही उपयुक्त हैं अथवा यूँ कह सकते हैं कि उन कार्यों को महिलाएँ ही भलिभांति कर सकती हैं। इन कामों में जैसे कि कपास के फूल तोड़ना, या चाय बागानों में चाय की पत्तियाँ चुनना अथवा पेड़ों से पके हुए फलों को तोड़ना इत्यादि कार्यों के लिए कोमल नर्म फुर्तीली अंगुलियों की आवश्यकता पड़ती है ताकि उत्पादन इस प्रक्रिया में नष्ट न हो जाए या उसको किसी प्रकार की हानि न हो।

इस क्षेत्र में मज़दूरी का आकलन या निर्धारण करने के लिए दो तरीके अपनाएँ जाते हैं : (1) काम (नग) दर तथा (2) समय दर।

1) काम (नग) दर मज़दूरी का अर्थ है जितना काम पूरा किया गया उसी के हिसाब से भुगतान किया जाता है। उदाहरण के लिए बीड़ी उद्योग में निश्चित होता है कि मज़दूर जितनी बीड़ी बनाएगा उसी हिसाब से या यूँ कहें कि गिनती के आधार पर भुगतान किया जाता है। एक खास संख्या पर निर्धारित दर होती है।

2) दूसरी तरह की मज़दूरी समय दर के हिसाब से होती है अर्थात मज़दूरी भुगतान श्रमिक द्वारा काम के स्थान या खेत में कितना समय लगाया है उसी के आधार पर मज़दूरी भुगतान किया जाता है। इसे 'दिहाड़ी' के नाम से भी जाना जाता है जिसका अर्थ है एक दिन में काम करने की मज़दूरी।

11.3.4 निर्माण

निर्माण कार्यों में महिलाओं का एक बड़ा अनुपात लगा हुआ है। निर्माण क्षेत्र में इन्हें अधिकता से नियुक्त किया जाता है। 1981 की जनगणना के अनुसार लगभग 1.66% कुल हिस्सा निर्माण क्षेत्र में मज़दूरी कर रहा था इसमें से 1.87% पुरुष और 0.87% महिलाएं थी। 1991 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या 1.95% निर्माण क्षेत्र में कार्यरत थी जिसमें से 2.32% पुरुष एवं 0.66% महिला कामगार थे।

क्या आप जानते हैं?

तालिका

भारत में निर्माण क्षेत्र में लगे कामगारों का लिंगवार प्रतिशत वितरण (कुल, ग्रामीण एवं शहरी)
1981 एवं 1991 की जनगणना रिपोर्ट

वर्ष	कुल	पुरुष कुल	महिलाएँ
1981	1.66	1.87	0.87
1991	1.95	2.32	0.66

	ग्रामीण	
1981	1.02	1.17	0.56
1991	1.04	1.30	0.27
	शहरी	
1981	4.12	4.26	3.10
1991	5.06	5.32	3.30

उपर्युक्त तालिका से यह तो स्पष्ट होता है कि निर्माण क्षेत्र में महिला कामगारों का अनुपात पुरुष कामगारों से कम है किंतु दी गई संख्या भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। यहाँ पर महिलाओं की इतनी संख्या में भागीदारी या कामगारों की ऊँची संख्या सिद्ध करती है कि महिला कामगार सस्ती दरों पर उपलब्ध हो जाती हैं। इसका दूसरा कारण है कि महिला कामगार नियोक्ताओं के समक्ष किसी तरह की समस्याएँ पैदा नहीं करती हैं।

विचार करें 2

महिला कामगारों को नियोक्ता आसानी से क्यों नियुक्त कर लेते हैं एवं उनसे काम लेते हैं? क्या लिंग के आधार पर किसी तरह की दरणनीति अपनाई जाती है? यदि ऐसा होता है तो इसके क्या कारण है?

अपने विचारों को नोट बुक में लिखिए।

i) महिला कामगार प्रायः कम मज़दूरी पर काम करने को तैयार हो जाती हैं। इसके दो प्रमुख कारण है:

   क) महिला कामगार प्रायः अपने अधिकारों से अनभिज्ञ होती हैं इसलिए वे अपने परिश्रम के अनुसार उसकी मजदूरी अथवा काम के प्रकार के आधार पर जिसे वे करती हैं माँग नहीं करती है और न काम की शर्तें रख पाती है।

   ख) श्रमिकों की पूर्ति यानि श्रमिकों की संख्या अधिक है और गरीबी की दर का स्तर बहुत ऊँचा है। इसलिए महिला कामगार नियोक्ता के साथ किसी प्रकार की सौदेबाजी करने में असमर्थ होती है। वे बिना किसी शर्त के काम करने को तैयार हो जाती है। उन्हें जो भी काम और मजदूरी दी जाती है उसे मजबूरी में स्वीकार कर लेती हैं।

ii) महिला कामगार नियोक्ता के समक्ष किसी प्रकार की कोई समस्या पैदा नहीं करती हैं। महिला कामगार यूनियन के रूप में संगठित नहीं हैं। जब ये कामगार संगठित नहीं है फिर इनकी समस्याओं को नियोक्ता के समक्ष कौन रखेगा? इसलिए नियोक्ता को इन लोगों द्वारा हड़ताल, भूख हड़ताल या धरने पर बैठने जैसी स्थिति से निपटना नहीं पड़ता है। नियोक्ता को इन कामगारों से किसी प्रकार की चुनौती का भी भय नहीं होता है। इसलिए नियोक्ता उत्पादन दर को कम बनाए रखने के लिए पुरुषों की तुलना में महिला कामगारों को अधिक पसंद करते हैं और उन्हें अधिक नियुक्त करते हैं।

11.4 सारांश

इस इकाई में हमने मज़दूरी (वेतन) की अवधारणा और मज़दूरी के प्रकारों पर विस्तार से चर्चा की है। इसके बाद हमने मज़दूरी विभेद (अंतर) विशेषकर महिला कामगारों के रोज़गार के संदर्भ में भेदभाव को समझने का प्रयास किया है। इसी वर्ग के लिए हमने इनके मज़दूरी भुगतान के अंतर को कम करने या उसे न्यूनतम करने के लिए मार्ग दर्शाए हैं और उनके समाधान का सुझाव प्रस्तुत किया है। इस इकाई में कृषि क्षेत्रों एवं निर्माण क्षेत्रों में मज़दूरी रोज़गार के संपूर्ण परिदृश्य को भी आपके समक्ष स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया गया है।

11.5 शब्दावली

वेतन या मज़दूरी : यह आजीविका होती है और उत्पादन घटक का मूल्य होता है जिसे श्रमिक का श्रम कहते हैं।

मज़दूरी (वेतन) विभेद : इसे मज़दूरी भुगतान का अंतर कहते हैं इसका कारण क्षेत्र, काम का प्रकार, लिंग और शिक्षा का स्तर होता है। महिला कामगारों को कम वेतन दिया जाता है जो भेदभावपूर्ण है।

मज़दूरी रोज़गार : इसका अर्थ है किए गए काम के बदले में नकद मौद्रिक भुगतान किया जाता है।

11.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

ह्यूमन रिर्सोस मैनेज़मैंट : फिसर स्कोनफिल्डर तथा साव।

इंट्रोडक्शन टु इकॉनामिक थीयोरी।

पर्सनल मैनेजमैंट : अरुण मोनाप्पा तथा मिर्ज़ा एस. सियाइन

वूमेन एंड वर्क इन इंडियन सोसाइटी : टी.एम.डाक

लिमिटेड आप्शन्स, वूमेन वर्कस इन रूरल इंडिया : ए.वी.जोश

इकाई 12 कुटीर और घरेलू उद्योग में महिलाएं

रूपरेखा

12.0 लक्ष्य और उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 घरेलू और कुटीर उद्योगों में मुद्दे
12.3 तम्बाकू व बीड़ी मज़दूर
12.4 खाद्य प्रसंस्करण में महिलाएं
12.5 हथकरघा उद्योग
12.6 व्यवसाय में स्वास्थ्य संबंधी खतरे
12.7 स्वनियोजित महिलाओं का संघ (सेवा) लखनऊ — एक सफल कहानी (प्रयास)
12.8 सारांश
12.9 शब्दावली
12.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.0 लक्ष्य ओर उद्देश्य

यह इकाई कुटीर और घरेलू उद्योग में काम करने वाली महिलाओं से संबद्ध है। इसमें हम आपको निम्नलिखित के विषय में जानकारी प्रदान करेंगे :

- उद्योग में महिलाओं द्वारा की जाने वाली गतिविधियों का स्वरूप;
- महिलाओं के समक्ष आने वाली समस्याएं;
- प्रारंभ किए गए या प्रारंभ किए जा सकने वाले हस्तक्षेप; और
- भावी हस्तक्षेप के लिए सिफारिश के रूप में उपयुक्त कार्यनीतियां।

इस इकाई का उद्देश्य यह बतलाना है कि इस क्षेत्र में महिलाओं को शक्ति संपन्न करने की आवश्यकता है।

12.1 प्रस्तावना

भारत की जनगणना 1991 में घरेलू उद्योग को इस प्रकार परिभाषित किया गया है : स्वयं परिवार के मुखिया और/या परिवार के सदस्यों द्वारा घर पर या ग्रामीण क्षेत्रों में गांव के अंदर संचालित उद्योग और जहां परिवार शहरी क्षेत्रों में रहता है वहां केवल घर की सीमा में ही संचालित होने वाले उद्योग। घरेलू उद्योग एक ऐसा उद्योग है जो माल के उत्पादन, संसाधन, सर्विसिंग (आपूर्ति), मरम्मत या बनाने और बेचने (लेकिन मात्र बेचना नहीं) का काम करता है। इसकी तुलना बड़े पैमाने पर विनिर्माण करने वाले उद्योग से नहीं करनी चाहिए। 1991 की जनगणना में आगे कुछ ऐसे उत्पादों की सूची दी गई है जो घरेलू उद्योग की श्रेणी के अधीन स्वीकार्य हो सकते हैं।

- खाद्य पदार्थ (उदाहरणतया पापड़ बनाना, मसाला पीसना, धान कूटना इत्यादि)
- पेय पदार्थ (उदाहरणतया चाय, काफी, बोतल बंद फलों का रस इत्यादि)
- तम्बाकू उत्पाद (उदाहरणतया बीड़ी बनाना)

- सूती वस्त्रोद्योग (उदाहरणतया चरखी, सूत की कताई, बुनाई इत्यादि)
- जूट (पटसन) वस्त्रोद्योग, ऊन, रेशम,
- अन्य वस्त्रोद्योग (दरियां बनाना, कढ़ाई इत्यादि)
- लकड़ी और लकड़ी उत्पादों का विनिर्माण
- कागज और कागज उत्पाद
- प्रिंटिंग और पब्लिशिंग (मुद्रण एवं प्रकाशन)
- चर्म और चर्म उत्पाद
- रबड़, पैट्रोलियम और कोयला उत्पाद
- रसायन और रासायनिक उत्पाद
- अधात्विक खनिज उत्पाद (उदाहरणार्थ ईंट, मिट्टी के बर्तन)
- मूल धातुएं और मशीनरी और परिवहन उपकरण के अतिरिक्त उनके उत्पाद (उदाहरणतया बर्तन, कृषि उपकरण इत्यादि)

विचार करें 1

घरेलू तथा कुटीर उद्योग में बहुत अधिक संख्या में महिलाएं काम कर रही है। फिर भी ऐसा क्यों है कि इन उद्योगों में उन्हें उनका श्रेय नहीं मिलपाता?

मुख्य महिला मज़दूरों में 2.05% पुरुषों की तुलना में 3.50% महिलाएं घरेलू उद्योग में कार्यरत हैं। जबकि यह सही है कि अधिकांश मुख्य महिला श्रमिक, खेतिहर और कृषि मज़दूरों (क्रमशः 34.57% और 44.24%) के रूप में काम कर रही हैं। यह भी सच है कि घरेलू उद्योग में मुख्य मज़दूरों का अनुपात सही तस्वीर नहीं प्रस्तुत करता। पहली बात तो यह है कि, घरेलू उद्योग में शामिल कई महिलाएं अन्य काम के साथ अंश-कालिक काम भी करती हैं। दूसरे, इस क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं को प्रायः नज़र अंदाज किया जाता है उनके काम की गिनती ही नहीं होती। इस क्षेत्र में उनके काम को प्रायः घरेलू या परिवार के काम के एक हिस्से के रूप में माना जाता है (उदाहरणतः बुनाई) और इस काम को अलग से महत्व नहीं दिया जाता और न ही उसका अलग से उल्लेख किया जाता है। परिणामस्परूप, कुटीर और घरेलू उद्योग में काम करने वाली महिलाओं से संबंधित सही आंकड़े नहीं उपलब्ध हो पाते।

12.2 घरेलू और कुटीर उद्योगों में मुद्दे

इस क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं को ठेकेदारों द्वारा उजायती दर (piece rate) काम दिया जाता है। गृह-आधारित मज़दूर होने के कारण वे असंगठित होती हैं अतः ठेकेदार और बिचौलिए (मध्यस्थ) उनका शोषण करते हैं। यद्यपि इन महिलाओं के लिए विधायी प्रावधान विद्यमान है परंतु महिलाओं को इनका लाभ नहीं मिल पाता। उन्हें बहुत ही कम मज़दूरी–न्यूनतम मज़दूरी दर से भी काफी कम, मिलती है। काम अनियमित और छिटपुट (विरल) होता है। कामों में कई स्वास्थ्य संबंधी खतरे होते हैं जिनके लिए समुचित चिकित्सा सुविधाएँ भी नहीं मिल पाती।

कुछ रिकार्ड किए गए केस अध्ययन, कुटीर और घरेलू उद्योग में महिलाओं द्वारा किए जाने वाले काम की प्रकृति और काम करने की परिस्थितियों पर प्रकाश डालने और स्पष्ट करने में सहायक हो सकते हैं।

अपने अनुभव से सीखें-1

किसी भी घरेलू या कुटीर उद्योग जैसे चमड़े का सामान, मुद्रण, कपड़ा उद्योग इत्यादि में काम करने वाले किसी मज़दूर से संपर्क करें। वेतन और स्वास्थ्य संबंधी स्थितियों पर उनके विचारों का पता लगाइए। अपने निष्कर्षों को एक पुस्तिका में नोट कीजिए।

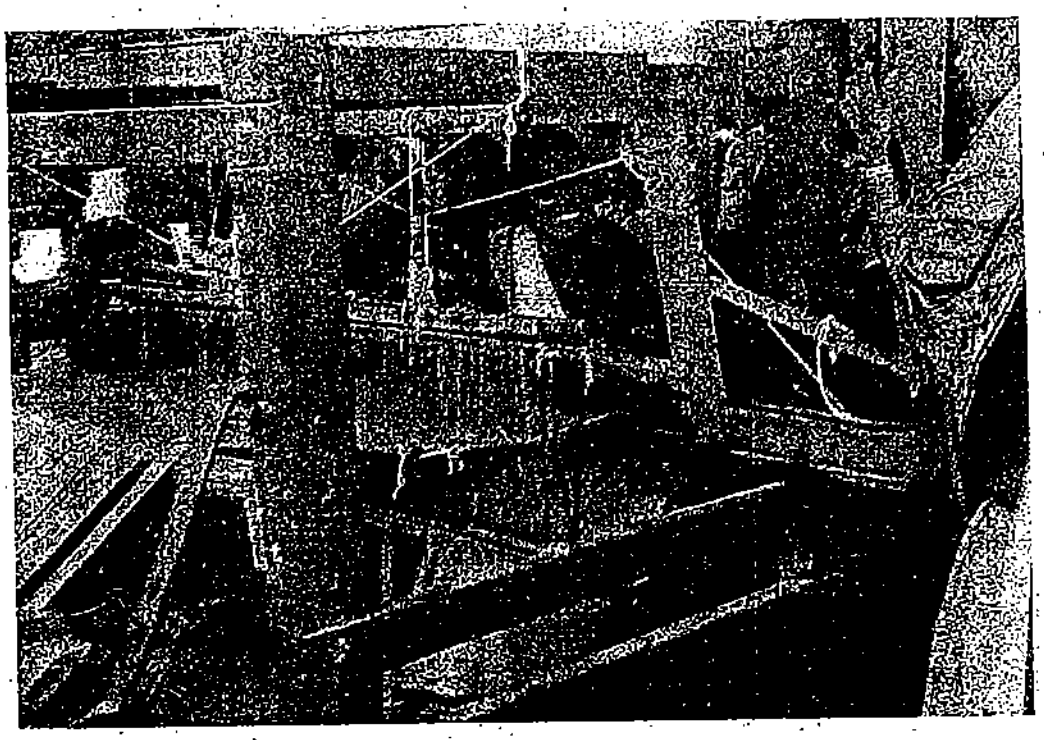

घरेलू उद्योग में महिलाएँ – क्या इनकी मर्जी है या जीने के लिए आवश्यक साधन
सौजन्य : सी.डब्ल्यू.डी.एस., नई दिल्ली

12.3 तम्बाकू और बीड़ी मज़दूर

कृषि के पश्चात, देश में बीड़ी और तम्बाकू संसाधन वह सेक्टर हैं जिसमें सबसे अधिक संख्या में महिला श्रमिक नियुक्त हैं। इनमें से अधिकांश गृह-आधारित मज़दूर हैं जो बीड़ी लपेटने का काम करती हैं। उनके काम में सामग्रियां अर्जित करना, तेंदू पत्तों को काटना, उनमें तम्बाकू भरना, उनके किनारों को मोड़ना, उन्हें धागे से कस कर बांधना, निर्धारित आकार के बंडलों में बांधना शामिल है। कुछ स्थानों पर अंतिम प्रक्रिया – बीड़ी को पैक करना और उन पर लेबल लगाना भी महिलाओं द्वारा ही किया जाता है।

बीड़ी और तम्बाकू एक ऐसा सेक्टर है जहां महिला श्रमिकों को सुरक्षा प्रदान करने वाले व्यापक विधान मौजूद हैं। इन कानूनों के अनुसार, मज़दूरों को न्यूनतम मज़दूरी देना, शिशुगृह और चिकित्सा सुविधाएं प्रदान करना, प्रसूति लाभ (सुविधा) देना, और भविष्य-निधि और छात्रवृत्ति लाभों के लिए मज़दूर का नाम पंजीकृत करना, प्रधान नियोक्ता की ज़िम्मेदारी है। गृह-आधारित श्रमिक भी इन लाभों के पात्र हैं। हालांकि विधान और उसके कार्यान्वयन में काफी अंतर होता है।

क्या आप जानते हैं?-1

अधिकांश स्थानों पर बीड़ी उत्पादन के विनिर्माताओं ने संविदा पद्धति (ठेका पद्धति) को अपनाया है। कोई भी विनिर्माता दो से लेकर 600 ठेकेदारों तक को नियोजित करता है। तत्पश्चात् बड़े ठेकेदार उप-ठेकेदारों को भाड़े पर रखते हैं। प्रत्येक राज्य में नियत सांविधिक न्यूनतम मज़दूरी के बावजूद, ठेकेदार अपनी अपेक्षाकृत कम मज़दूरी दर तय कर लेते हैं। शोषण यहीं समाप्त नहीं होता। उनके द्वारा श्रमिकों को दिए जाने वाले कच्चे माल का वज़न भी सदैव कम होता है। कम पड़ने वाली बीड़ियों का भुगतान महिलाओं को अपनी मज़दूरी में से करना पड़ता है जो प्रायः उनकी मज़दूरी का 10% से 30% होता है। ठेकेदार जानबूझ कर श्रमिकों द्वारा तैयार बीड़ियों के 5% से 20% तक को खराब कह कर अस्वीकार कर देते हैं और उन अस्वीकृत बीड़ियों का भुगतान भी नहीं करते और सारी बीड़ियां भी रख लेते हैं।

संघों/संगठित विरोध के अभाव, ठेकेदारों द्वारा काम देना बंद कर देने के भय और सरकार द्वारा इस ओर से आंखें मूंद लेने के कारण इस क्षेत्र की महिलाएं निरंतर अत्यधिक शोषण का सामना कर रही हैं।

विचार करें-2

बीड़ी और तम्बाकू संसाधन क्षेत्र में इतनी बड़ी संख्या में महिलाएं क्यों नियोजित हैं? इसके कारण जानने के लिए कुछ बीड़ी श्रमिकों से बातचीत कीजिए और अपनी पुस्तिका में उन्हें सूचीबद्ध कीजिए।

12.4 खाद्य प्रसंस्करण में महिलाएं

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग उन प्राचीनतम गृह-आधारित उद्योगों में से एक है जहां अधिकतर काम गरीब महिलाएं करती हैं। इस उद्योग के अंतर्गत सब्जियों, फलों, अचारों, चटनियों, पापड़, चिप्स का प्रसंस्करण, मसाले, शीघ्रनाशी खाद्य पदार्थ जैसी विविध प्रकार की वस्तुएं आती है। यद्यपि खाद्य प्रसंस्करण का काम विविध स्तरों जैसे गृह-आधारित स्तर, दुकान के स्तर, कैंटीन स्तर, कारखाने के स्तर और फैक्टरी स्तर, पर कार्यान्वित किया जाता है लेकिन महिलाएं अधिकांश गृह-आधारित स्तर में ही शामिल है।

यह काम प्रायः सामयिक होता है और उत्पादों की मांग घटती बढ़ती रहती है। इस उद्योग में लगभग 40% से 50% मज़दूरों को नियमित रूप से काम नहीं मिलता और यदि उन्हें काम मिलता है तो उनके काम के घंटे लंबे होते है, काम के लिए शारीरिक रूप से काफी मेहनत करनी पड़ती है और उसके बदले में मेहनताना अपेक्षाकृत अत्यधिक कम मिलता है।

खाद्य प्रसंस्करण के अंतर्गत पापड़ बेलने के काम में सबसे ज्यादा संख्या में महिलाएं काम कर रही है। बीड़ी लपेटने की ही भांति इस के लिए भी कुछ न्यूनतम मज़दूरी और सुरक्षात्मक विधान है। लेकिन बीड़ी की ही तरह, इसके लिए लगभग उजायती दर दी जाती है, इस तरह मज़दूरों के प्रति कानूनी उत्तरदायित्वों का अपवंचन करते हैं अर्थात टाल-मटोल करते हैं। पापड़ बनाने वाली महिला 6-7 घंटे की कड़ी मेहनत के पश्चात मुश्किल से प्रतिदिन 5-7 रु कमा पाती है।

यंत्रीकरण भी इन महिलाओं के विनाश का कारण है। यंत्रीकरण में अकसर महिलाओं के स्थान पर

पुरुषों को रख लिया जाता है। लघु मशीनीकरण तक में महिलाओं को रोज़गार से बाहर कर दिया जाता है और उनका काम पुरुषों द्वारा किया जाता है। यहां तक कि पंद्रह वर्षों से काम कर रही इन महिला मज़दूरों के कार्य-अनुभव को कोई महत्व नहीं दिया जाता है और उनकी मज़दूरी और स्तर में कोई खास परिवर्तन नहीं नजर आता।

12.5 हथकरघा उद्योग

कृषि के बाद, महिलाओं को सबसे अधिक संख्या में काम देने में हथकरघा बीड़ी लपेटने वाले इस उद्योग का प्रतिद्वंद्वी है। परिवार श्रम के एक हिस्से के रूप में, ये महिलाएं अधिकांशत बुनाई पूर्व गतिविधियों में कार्यरत हैं। हालांकि महिलाएं करघे पर काम करने में समर्थ होती है, तथापि बुनाई - जिससे बेहतर मेहनताना मिलता है, का काम पुरुषों द्वारा किया जाता है।

महिलाएं सभी प्रारंभिक कार्य - सुताई (सरेस लगाना, आकार देना), ताना बनाने, करघे का तीर (तुर) तैयार करने, कताई का काम, करती हैं। बुनाई पूर्व सामग्री की तैयारियों में काफी समय लगता है और यह अच्छी गुणवत्ता के उत्पाद तैयार करने का एक अनिवार्य हिस्सा है। हालांकि कौशल के रूप में ये अभी भी अमान्यता प्राप्त (उपेक्षित) हैं और इन बुनाई-पूर्व के कामों के लिए महिलाओं को अत्यधिक कम मेहनताना मिलता है। उदाहरण के लिए, कांचीपुरम के तमिलनाडू जिले में महिलाएं वास्तविक बुनाई प्रक्रिया की सभी महत्वपूर्ण तैयारियां करती है। यदि एक कर्मचारी के रूप में काम करने पर पुरुष बुनकरों को 10 रु. प्रतिदिन मिलता है तो महिलाओं को 2 रु. प्रतिदिन के मिलते हैं। महिलाओं के काम में चरखी पर लपेटना, ताना बनाना, आकार देना, रंगाई, करघे का तीर नियत करना शामिल हैं। जिस काम में काफी ज्यादा ज़री का काम शामिल होता है। इस तथ्य के बावजूद कि वे डिज़ाइन तैयार करने में बुनकर की सहायता करती हैं और बुनकर के साथ करघे पर भी बैठती है, उसके लिए पुरुष को तो 20 रु. मिलते है और महिला को वही 2 रु. दिए जाते हैं।

12.6 व्यवसाय में स्वास्थ्य संबंधी खतरे

इस क्षेत्र में काम करने वाली महिलाएं व्यवसाय के कारण स्वास्थ्य संबंधी खतरे के प्रति अतिसंवेदनशील होती है। ये अधिकांश निम्नलिखित से संबंधित होती है :

- कार्य स्थल पर गुहा
- खतरनाक सामग्री के संपर्क में अना रहना
- खराब कार्य पर्यावरण (काम करने का खराब परिवेश, इसमें बिजली, वायु-संचार, स्थान, स्वास्थ्य स्थितियों का अभाव)
- काम से संबंधी आवृत्तीय कार्य की प्रकृति
- वज़न उठाना
- काम के लंबे घंटे
- अनुपयुक्त प्रौद्योगिकी/उपकरण
- मानसिक तनाव

आगे कुछ विशिष्ट कौशलों से संबंधित कई स्वास्थ्य खतरों की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है।

व्यवसाय और कुछ कारणात्मक कारक	स्वास्थ्य समस्याएं	सुझाव
i) बीड़ी मजूदर (मुद्रा संबंधी समस्याएं, तम्बाकू, धूल और निकोटिन के संपर्क में रहना; चोट के कारण त्वचा का कट जाना; आवर्त्ती गतिविधियां; अंगुलियों पर निरंतर रगड़)	गर्दन और पीठ के निचले हिस्से में दर्द; हाथों और अंगुलियों में दर्द; पेट में दर्द; गले में जलन; खांसी; चिरकालिक श्वसन नली शोथ; दमा; धड़कन; शरीर में दर्द (आंख की समस्याएं; प्रजनन संबंधी प्रकार्यों पर निकोटिन का प्रभाव; ऋतु रोध (स्त्रियों को मासिक धर्म बंद होना); श्वेतप्रदर; थकान; रक्तहीनता	1) मज़दूरी-दरों को नियमित रूप से नियत करके कार्यभार को कम करना 2) धूल-स्तरों में कमी 3) मुद्रा संबंधी समस्याओं से बचने के लिए उपयुक्त उपकरणों का विकास 4) नियमित मैडिकल जांच और उपचार
ii) चरखा कातने वाले मज़दूर (धागा खींचने के लिए निरंतर कंधों, बाहों और अंगुलियों का प्रयोग; मुद्रा संबंधी समस्याएं; छाती, कंधों, टांगों और हाथों में दर्द)	कंधों और दाईं भुजा के ऊपरी हिस्से मे दर्द; अंगुलियों में दर्द; श्वसन संबंधी समस्याएं	1) दुर्गंधपूर्ण धूल और रेशों के स्तरों को मॉनीटर किए जाने की आवश्यकता है 2) निर्वाह-मज़दूरी की गारंटी, रोज़गार की सुरक्षा और कार्यस्थल पर सुविधाओं जैसे घर के माध्यम से कार्यभार को कम करना चाहिए।
iii) चिकन मज़दूर (मुद्रा संबंधी समस्याएं, एलर्जी; निम्न पोषणात्मक स्तर; आंखों पर निरतंर जोर और खराब रोशनी और वायु संचार वाले परिवेश में काम करना)	पीठ में दर्द; स्पांडिलाइटिस; थकान; नज़र का कम होना; टी.बी. फेफड़े संबंधी विकार; विटामिन बी की कमी; गलगंड	1) मुद्रा संबंधी समस्याओं से बचने के लिए उपयुक्त उपकरणों का विकास 2) आंखों की नियमित जांच और मुफ्त चश्मों का प्रावधान 3) आयोडीनयुक्त नमक और विटामिन डी प्रदान करना 4) निर्वाह-मज़दूरी का प्रावधान 5) विकल्पी रोज़गार का प्रावधान
iv) पापड़ मजूदर (अत्यधिक कार्यभार; मुद्रा संबंधी समस्याएं; घर पर सुविधाओं का अभाव)	छाती; कंधों, टांगों और हाथों में दर्द	1) बढ़ायी गई और नियमित मज़दूरी के माध्यम से कार्यभार में कमी 2) कार्य के दौरान आवधिक विश्राम अंतराल

v) पीतल के बर्तनों का काम करने वाले मज़दूर (गर्म परिवेश; दुर्घटना संभावित कार्य)	श्वसन संबंधी रोग; आंख की समस्याएं; दुर्घटनाएं	1) 120 के दिशा-निर्देशों पर काम को विनियमित करना 2) श्वसन संबंधी समस्याओं के लिए नियमित जांच और उपचार

इन महिलाओं के व्यवसास में स्वास्थ्य संबंधी खतरों के प्रति अतिसंवेदनशीलता इस तथ्य से भी जुड़ी हुई है कि ये असंगठित क्षेत्र का हिस्सा है। इन महिलाओं के लिए खराब स्वास्थ्य का अर्थ है काम गंवाना और इसके फलस्वरूप मज़दूरी गंवाना। अत: ऐसी अधिकांश महिलाएं, बीमारी के बावजूद भी निरंतर काम करती रहती है जिससे उनकी समस्या बढ़ जाती है। और चूंकि इनमें से ज्यादा तरह महिलाएं अपनी आय के भीतर ही निर्वाह करने का प्रयास करती है अत: चिकित्सा उपचार उनकी सामर्थ्य से बाहर होता है।

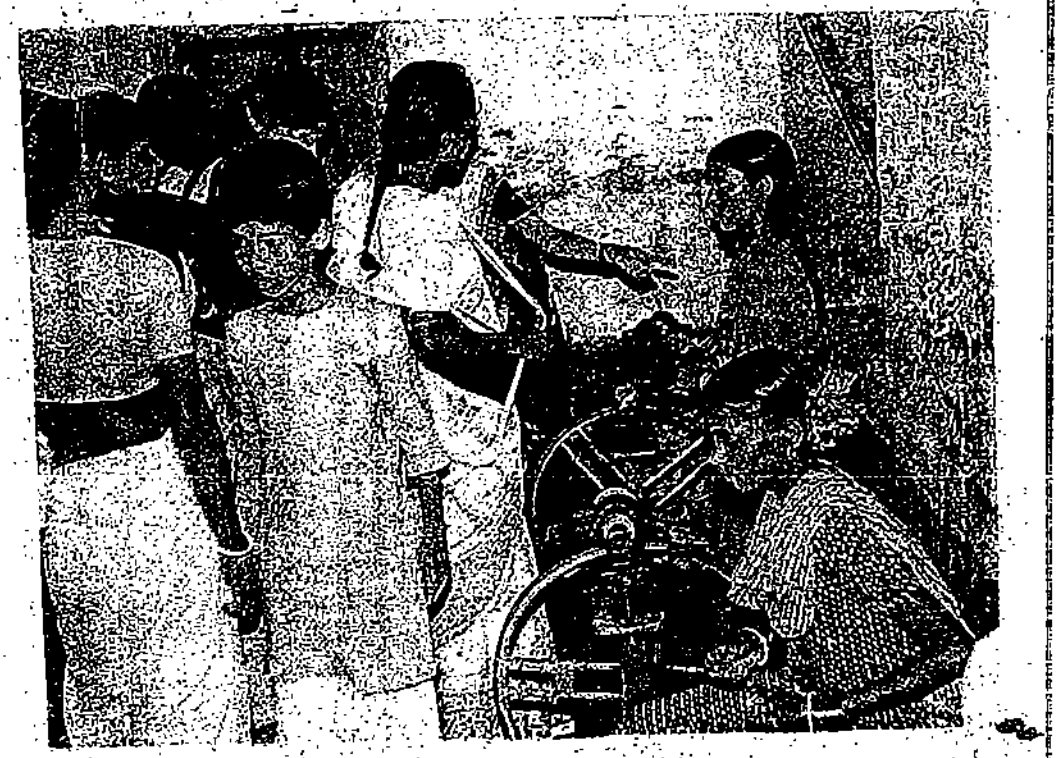

हाथकर्घा और घरेलू उद्योग के कार्य – क्या वे न्याय पा सकती हैं?
सौजन्य : सी.डब्ल्यू.डी.एस., नई दिल्ली

अपने अनुभव से सीखें–2

घरेलू और कुटीर उद्योग में व्यवसाय से स्वास्थ्य को कौन से खतरे होते हैं? स्थिति का प्रत्यक्ष रूप से पता लगाने के लिए कुछ घरेलू और कुटीर उद्योग में काम करने वाले कुछ मजदूरों से बातचीत कीजिए। अपने निष्कर्षों को पुस्तिका में नोट कीजिए।

12.7 सेवा (स्वानियोजित महिलाओं का संघ) लखनऊ : एक सफल कहानी

स्वनियोजित महिलाओं का संघ (एस.ई.डब्ल्यू.ए.) - सेवा, चिकनकारी श्रमिकों का स्वायत्त संघ, सुश्री

रूना बैनर्जी के प्रयासों के माध्यम से फ़रवरी 1984 में पंजीकृत हुआ। 1979 में यूनिसेफ और साक्षरता हाउस लखनऊ द्वारा किए गए अध्ययन दर्शाते हैं कि चिकन उद्योग में काम करने वाली महिलाओं और बच्चों का असंगठित क्षेत्र के किसी अन्य दस्तकार उद्योग की तुलना में कहीं ज़्यादा निर्ममता (निर्दयता) से शोषण होता है। बिचौलियों की गहरी पकड़ से निकलने के लिए उन्हें ऐसी जीवनतम और प्रोत्साहन योग्य उत्पादन प्रणाली की आवश्यकता थी जिसमें सुलभ बाज़ार (ready market) तक उनकी सीधी पहुंच हो। सेवा लखनऊ, दस्तकार महिलाओं का स्वयंसेवी संघ है जो इस ज़रूरत की अनुक्रिया के परिणामस्वरूप एक साथ मिलकर सामने आई हैं। सेवा के लक्ष्य इस प्रकार हैं :

- यह सुनिश्चित करना कि चिकन कारीगर महिलाओं को उपयुक्त मज़दूरी पर पर्याप्त काम मिले जिसमें बिचौलियों का हस्तक्षेप न हो।
- चिकन उत्पादों के लिए आशाजनक नए बाजारों की पहचान की जाए व उन्हें विकसित किया जाए।
- चिकन मज़दूरों में विश्वास, नेतृत्व, सामर्थ्य और सुरक्षा की भावना विकसित करके उन्हें संगठित करना।
- सदस्यों को खरीद, उत्पादन, प्रबंधन, विपणन और लेखा-विधि में प्रशिक्षित करना।
- सदस्यों के काम की गुणवत्ता और विस्तार को सुधारने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से कारीगरों के कौशलों को उन्नत करना।
- पारंपरिक शिल्प की समीक्षा करना व उसे पुनर्जीवित करना और उसे परिष्कृति के मूल स्तर तक ले जाना।
- ऐसा सुदृढ़ मंच प्रदान करना जिससे कारीगर उच्च मज़दूरी के लिए व्यापारियों और बिचौलियों से मोल-भाव कर सकें।

क्या आप जानते हैं? – 2

सेवा की सदस्यता तीस सदस्यों से प्रारंभ हुई थी जो अब 3500 के अंक को पार कर चुकी है। प्रत्येक सदस्य पाँच रु. सदस्यता शुल्क और अपने पहचान-पत्र के लिए प्रति वर्ष 25 रु. शुल्क देता है। सेवा में पूर्णकालिक नव प्रशिक्षित कसीदा काढ़ने वाले को 800 रु. प्रतिमाह दिए जाते हैं जबकि थोड़े ज़्यादा कुशल महिला कारीगरों को 1800 रु. प्रतिमाह मिलते हैं। अपने कारीगर सदस्यों के साथ उनके परिवारों व उन कारीगरों की अपनी जीवन शैली और सामाजिक आर्थिक स्तर को बेहतर बनाने के लिए सेवा ने कई अन्य कार्यक्रम प्रारंभ किए हैं। इनमें निम्नलिखित शामिल हैं:

1) एक बचत व जमा योजना
2) अनौपचारिक शिक्षा
3) चार विशेषज्ञ डाक्टरों — नेत्र विज्ञानी, स्त्रीरोग विज्ञानी, सामान्य आयुर्विज्ञान और बाल चिकित्सक द्वारा साप्ताहिक चिकित्सा सेवाओं सहित स्वास्थ्य सेवा
4) सदस्यों के बच्चों के लिए शैक्षिक और व्यावसायिक प्रशिक्षण

सेवा के प्रयासों से चिकन कारीगरों के जीवन में सुनिश्चित व ठोस परिवर्तन आए हैं और अन्यत्र इसी तरह के प्रयोगों के लिए सेवा ने दृष्टांत प्रस्तुत किया है।

12.8 सारांश

ऊपर की गई चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि कुटीर और घरेलू उद्योग में काम करने वाली महिलाएं कम मज़दूरी, शोषण, ज्यादा काम, काम करने की खराब स्थितियों और खराब स्वास्थ्य के प्रति विशेष रूप से अतिसंवेदनशील है। उनकी स्थितियों को सुधारने के लिए तात्कालिक प्रभाव वाले कुछ ठोस कदम उठाए जाने चाहिए।

- इस क्षेत्र की महिलाओं की समस्याओं को दूर करने का संभवत: एकमात्र रास्ता है उन्हें सहकारी समितियों/स्व सहायता समूहों/संघों इत्यादि में संगठित करना। सेवा-लखनऊ का प्रयोग इसका प्रमाण है। सुरक्षात्मक विधानों को प्रभावी ढंग से कार्यान्वित करने के लिए महिलाओं को संगठित होकर आगे बढ़ने में सहायता प्रदान करने के लिए सरकार को स्थानीय गैर-सरकारी संगठनों या महिला मंडलों में शामिल हो कर काम करना चाहिए।

- इन महिलाओं के लिए ऋण सहायता भी सुनिश्चित करनी चाहिए। इन महिलाओं को राष्ट्रीय महिला कोष जैसी सरकारी ऋण योजनाओं का लाभ मिलना चाहिए।

- महिला मंडल, गैर सरकारी संगठन और पंचायतें सरकारी योजनाओं, विधायी अधिकारों और ऋण संबंधी सूचना का भी माध्यम बन सकती हैं।

- उपयुक्त प्रौद्योगिकी को विकसित करके, और व्यवसाय में होने वाली स्वास्थ्य समस्याओं में कमी लाकर इन महिलाओं को मदद करनी चाहिए।

- सरकार को नियमित अध्ययनों और प्रतिपुष्टि प्रणालियों के माध्यम से इस क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं से संबंधित अपने डाटा-बेस (आंकड़ा संचय) को सुधारना चाहिए।

- ऐसे चरणों का कार्यान्वयन कुटीर और घरेलू उद्योग में काम करने वाली महिलाओं को बिचौलियों के शिकंजे और शोषण से बचा सकता है।

12.9 शब्दावली

कुटीर और घरेलू उद्योग : एक छोटे पैमाने वाला गृह-आधारित उद्यम जैसे बीड़ी लपेटना, पापड़ बनाना इत्यादि।

शोषण : कर्मचारी को अपर्याप्त या असंतोषजनक वेतन या मज़दूरी देना; सामाजिक-मनोवैज्ञानिक से भी संबंधित है तथा किसी व्यक्ति का विशेषरूप से महिलाओं का (जो अधिक संवेदनशील होती हैं) उत्पीड़न (छेड़छाड़)

12.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

इक्तरा, 1994, *सिचुएशनल एनालाइसिस ऑफ वूमेन वर्कर्स इन दी चिकन इंडस्ट्री एण्ड इम्पैक्ट ऑफ आरगेनाइज्ड इन्टरवेंशन।* यह अध्ययन महिला व बाल विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली द्वारा समर्थित है।

भारत सरकार, 1974, *टूवार्डस इक्वेलिटी: रिपोर्ट ऑफ दी कमेटी ऑन दी स्टेट्स ऑफ वूमेन इन इंडिया।* समाज कल्याण विभाग, शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली।

1984, *आक्यूपेशनल एंड एन्वायरमेंटल हैल्थ प्रोब्लम्स,* विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली

1988, *श्रमशक्ति : रिपोर्ट ऑफ दी नेशनल कमीशन ऑन सैल्फ इम्प्लोएड वूमेन इन दी इन्फॉर्मल सेक्टर,* नई दिल्ली, भारत सरकार।

संदर्भ

गुप्ता, एमत्रसीत्र एंड वीत्रपीत्र 1987, *लेबर लॉज़ एंड विमेन वर्कर्स*, एन.सी.एस.ई.डब्ल्यू., नई दिल्ली द्वारा किया गया अध्ययन।

जैन देवकी, 1984, *दी सिच्यूशेन ऑफ वूमेन इन दी हैंडलूम एंड दी कंसट्रक्शन सेक्टरस*, श्रम मंत्रालय, नई दिल्ली के लिए अध्ययन।

मोहनदास, एम. 1980, "*बीड़ी वर्कर्स इन केरल*", आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक पत्रिका खंड XV(36)।

ओ.आर.जी.आई., 1991, *प्राइमरी सेंसस एबसट्रिक्ट खंड* 11, सेंसर ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

वर्ल्ड बैंक. 1991, *जेंडर एंड पावर्टी इन इंडिया*, वर्ल्ड बैंक, वाशिंगटन डी.सी.

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

CWED-04

महिलाएँ और अर्थव्यवस्था

खंड

4

संगठित क्षेत्र में महिलाएँ

खंड परिचय : संगठित क्षेत्र में महिलाएँ	3
इकाई 13 महिला उद्यमी	5
इकाई 14 औद्योगिक श्रमिक	21
इकाई 15 रोपन कार्य में रत महिला श्रमिक	35
इकाई 16 सेवा क्षेत्र और रोज़गार के नए अवसर	48
संदर्भ	58

खंड परिचय

खंड 4 : संगठित क्षेत्र में महिलाएँ

इस पत्र का यह अंतिम खंड है जो पिछले खंड का मात्र विस्तार है जिसमें हमने असंगठित क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति के बारे में अध्ययन किया है। इस खंड में संगठित क्षेत्र के बारे में अध्ययन किया है। इकाई 13 महिला उद्यमियों के संबंध में है जिसमें उद्यमी शब्द को स्पष्ट किया है। साथ ही उसके विभिन्न संबंधों एवं आर्थिक तथा मानवविज्ञानी परिप्रेक्ष्य दोनों में विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उद्यमीता की गतिविधि का स्तर पर निर्भरता, उद्यमता के विभिन्न प्रकारों के संबंधों पर प्रकाश डाला गया है। आप अनुभव करेंगे व स्वीकार करेंगे कि प्रचलित रीति रिवाजों, विश्वासों तथा मूल्यों को भारत में महिला उद्यमियों की नई भूमिका स्वीकार करने के लिए पूरी तैयारी नहीं की गई है जिसके कारण उन्हें असंख्य समस्याओं का सामना करना पड़ता है इन सब मुद्दों के संबंध में इस इकाई में ध्यान आकर्षित करते हुए उन पर चर्चा की है।

इकाई 14 औद्योगिक श्रमिकों पर आधारित है जिसमें हमने सबसे पहले कारखाने में महिला कामगारों के बारे में मिथ और अवधारणाओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है वहीं पर संगठित क्षेत्र में महिला कामगारो के विभिन्न काम के प्रकारों पर चर्चा की है। आधुनिकीकरण तथा प्रौद्योगिकी के विकास के बाद भी वे कौन से कारण है जिनके चलते हुए महिलाओं को बराबर का रोजगार देने में आना कानी की जाती है अथवा उन्हें नकारा जाता है। आपको अध्ययन से पता लगेगा कि महिलाओं को उनके रोज़गार से अलग करने का प्रमुख कारण प्रबन्ध तन्त्र है। इसके अतिरिक्त इकाई के अन्त में हमने अनेक संरक्षात्मक कानूनों पर ध्यान केंद्रित किया है जिनके लागू करने से महिला कामगारों की कार्य स्थितियों पर प्रभावों का विश्लेषण भी किया है।

इकाई 15 मुख्य रूप से बगानों में काम करने वाली महिला कामगारों के मुद्दों पर चर्चा की है। इसमें हमने सबसे पहले भारत में बगान के पक्ष तथा बागानों में काम करने वाले कामगारों की समस्याओं को स्पष्ट किया गया है। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि बागानों में महिला कामगारों की कुल कामगार शक्ति का आधा भाग लगा हुआ है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आपको पता लगेगा कि क्यों इस उद्योग में सबसे अधिक महिलाएँ कार्य करती हैं और किस प्रकार से ये लोग समाज के अन्य भागों से अलग है। इस इकाई में श्रेणीकरण या सोपानों के विभिन्न प्रकारों जिनको बागान व्यवस्था में पालन किया जाता है उनकी चर्चा की गई है तथा लिंगीय भेद भावों के कारण महिलाओं के शोषण पर चर्चा की गई। कानूनी प्रावधानों तथा उनके कार्यन्वयन को स्पष्ट करते हुए भारत में महिला कामगारो की वर्तमान स्थिति पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है।

इस खंड की अंतिम इकाई में एक तरफ हमने रोजगार के नए क्षेत्रों के विस्तार को दर्शाया है वहीं पर दूसरी ओर हमने महिलाओं के रोजगार को बदलती हुई प्रवृत्तियों को प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त महिलाओं के रोजगारो का व्यापक क्षेत्र मौजूद होते हुए भी वे अन्य अवसरों का लाभ न उठा कर केवल अध्यापन, सचिवालयी कार्य, नर्सिंग जैसे कार्यों में ही केंद्रित हो गई हैं। इसका मुख्य कारण यह भी है कि उनको बहुत सारी बाधाओं को सामना करना पड़ता है। रोज़गार की प्रवृत्ति में बदलाव के साथ साथ अवधारणाओं और व्यवहारों में भी परिवर्तन लाने की अत्यन्त आवश्यकता है। हमने इन सब मुद्दों को उठाते हुए उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है।

इकाई 13 महिला उद्यमी

रूपरेखा

13.0 लक्ष्य और उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 शुमपीटर का आर्थिक परिप्रेक्ष्य
  13.2.1 जोखिम उठाना और उद्यमशीलता
  13.2.2 मैक्स वेबर के विचार
13.3 उद्यमशीलता के प्रकार
  13.3.1 उपलब्धि की प्रेरणा
  13.3.2 उद्यमशीलता को बढ़ावा देने वाले कारक
  13.3.3 सफल उद्यमी की विशेषताएँ
13.4 परियोजना की रूपरेखा बनाना
  13.4.1 सामाजिक-सांस्कृतिक कारक
  13.4.2 सहायक व्यवस्था
13.5 भारत में महिला उद्यमशीलता
  13.5.1 उद्यममूलक क्षमताएं अर्जित करने में आने वाली कठिनाइयाँ
  13.5.2 भारत में महिला उद्यमी
  13.5.3 महिला उद्यमियों की समस्याएँ
  13.5.4 महिला उद्यमियों की अनुभवजन्य वास्तविकताएँ
  13.5.5 वित्तीय सहायता
13.6 सफलता और असफलता की दर
13.7 सारांश
13.8 शब्दावली
13.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.0 लक्ष्य और उद्देश्य

उद्यमी शब्द के कई अर्थ हैं। इसके अर्थ बदलती सामाजिक-आर्थिक वास्तविकता के साथ-साथ बदल जाते हैं। इसका यहां आर्थिक और नृवैज्ञानिक नजरिए से विश्लेषण किया गया है। इस इकाई को पढने के बाद आप:

- उद्यमशीलता के प्रति विभिन्न दृष्टिकोणों के बारे में जान सकेंगे;
- उद्यमशीलता के प्रकार जान पाएंगे;
- उद्यमशीलता को प्रोत्साहित करने वाले कारकों की भूमिका के बारे में जान पाएंगे;
- महिला उद्यमशीलता विकास की प्रेरणा, सफलता और विफलता जैसी बातों के बारे में जानकार बनेंगे;
- उद्यमशीलता में सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों की भूमिका के बारे में जान सकेंगे;
- भारत में महिला उद्यमशीलता के बारे में जान सकेंगे; और
- महिला उद्यमियों के सामने आने वाली कठिनाइयों के बारे में जान सकेंगे।

5

13.1 प्रस्तावना

उद्यमी शब्द का प्रयोग सबसे पहले सत्राहवीं सदी में रिचर्ड कैन्टिलॉन ने किया था। आयरिश मूल के कैन्टिलॉन जो उस समय फ्रांस में रह रहे थे, ने तब सेना के नेताओं के लिए यह शब्द प्रयोग किया था, जो सैन्य अभियानों की कमान संभालते थे। व्यापार में इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग अठारहवीं सदी में हुआ। यह शब्द एक ऐसे डीलर को नाम देने के लिए किया गया था जो एक निश्चित दाम लगाकर सामान और सेवाएं खरीदता है और मुनाफा कमाने के लिए उन्हें कुछ समय बाद अपने जोखिम पर अनिश्चित दाम पर बेचता है। फिर 1803 में जीन वाप्तिस्ते से ने 'उद्यमी' शब्द को एक व्यापक रूप में परिभाषित किया जिसके अनुसार उद्यमी वह व्यक्ति है जो उत्पादन के सभी कारकों को जुटाता है, उनका प्रबंध करता है और उस उद्यम में निहित जोखिम को सहन करता है। दूसरे शब्दों में, उद्यमी वह व्यक्ति है जो आर्थिक संसाधनों को उच्च उत्पादकता और अधिक प्राप्ति के क्षेत्र में परिवर्तित करता है (ड्रकर् 1985)।

13.2 शुमपीटर का आर्थिक परिप्रेक्ष्य

कुछ वर्षों से, उद्यमशीलता के विकास की प्रक्रिया का विश्लेषण करने और उसकी संकल्पना के लिए शुमपीटर को व्यापक रूप से उद्धृत किया जा रहा है। शुमपीटर के अनुसार उद्यमी परिवर्तन का एक शक्तिशाली वाहक है जो भौतिक, प्राकृतिक और मानव संसाधनों को उनके अनुरूप उत्पाद संभावनाओं में अधिक से अधिक रूपांतरित करने में उत्प्रेरक का काम करता है। उनके अनुसार उद्यमी आर्थिक विकास के सिद्धांत की धुरी और आर्थिक परिवर्तन का साधन है। शुमपीटर का आर्थिक विकास का सिद्धांत नए संयोजन पर आधारित है: दूसरे शब्दों में, इसका मतलब है नए सामान या सामान की गुणवत्ता का चलन शुरू करना; उत्पादन की नई विधि का चलन शुरू करना; नए बाजार के द्वार खोलना; कच्चे माल या अर्ध-निर्मित सामान की आपूर्ति के स्रोत पर नियंत्रण कायम करना; उद्योग में नया संगठन बनाना–जैसे एकाधिकार स्थापित करना या उसे तोड़ना (शुमपीटर, 1961 पृ. 66)। शुमपीटर की उद्यमी की संकल्पना नवीन संकल्पना है जो उत्पादन में नए संयोजन बनाता है और गतिशील असंतुलन उत्पन्न करता है। यही आर्थिक विकास का सार है। शुमपीटर के अनुसार 'उद्यमशीलता' को नौकरी या व्यवसाय, किसी विशिष्ट गुट या वर्ग की सदस्यता के सूचकांक के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। बल्कि यह व्यक्ति विशेष के आर्थिक जीवन में एक संक्रमणकालिक क्षण है हालांकि यह उसे एक निश्चित वर्ग की स्थिति में पहुंचा सकती है। उद्यमशीलता का क्षण निकल जाने के बाद आर्थिक क्रिया-कलाप 'नित्यचर्या' बन जाता है। यदि उपक्रम सफल होता है तो उद्यमी एक साधारण पूंजीवादी उद्यम का प्रबंधक या कर्ताधर्ता बन जाता है। उद्यमी एक प्रबंधक है जो परिवर्तन के बोध के बिना ही अपने पुराने अनुभव के आधार पर उत्पादन प्रक्रिया की देख-रेख करता है रोजाना के कार्यों, क्रिया-कलापों का संचालन करता है। इसके साथ ही साथ वह व्यक्ति है जो अनिश्चितता का जोखिम उठाता है और ऐसे क्रिया-कलापों को संचालित करता है जो किसी ने पहले कभी नहीं किए हों। शुमपीटर के अनुसार एक उद्यमी का सबसे महत्वपूर्ण कार्य "नूतनता" है–यानी प्रौद्योगिकी और अर्थव्यवस्था में माँग के ढांचे में परिवर्तन लाना है।

13.2.1 जोखिम उठाना और उद्यमशीलता

जोखिम उठाना उद्यमशीलता का सार है। हर्बर्ट और लिंक ने उद्यमशीलता की मुख्य ऐतिहासिक धारणाओं जैसे जोखिम, अनिश्चितता, नूतनता, प्रत्यक्ष ज्ञान और परिवर्तन को समाविष्ट करते हुए उद्यमी की परिभाषा देने का प्रयास किया। उनके अनुसार उद्यमी वह व्यक्ति है जो "ऐसे विवेकपूर्ण

निर्णय करने का उत्तरदायित्व निबाहने में विशेषज्ञ होता है जो निर्णय सामान, संसाधन या संस्थानों की स्थिति, स्वरूप और उनके उपयोग को प्रभावित करें।" (हर्बर्ट और लिंक, 1989 पृ. 47)।

थॉमस केचरान के मतानुसार उद्यमियों को विपथगामी व्यक्तित्वों या अतिसामान्य व्यक्तियों के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। बल्कि वे ऐसे व्यक्ति हैं जो समाज के "आदर्श व्यक्तित्व" का प्रतिनिधित्व करते हैं।

ज़रा सोचिए - 1

आपके विचार में जोखिम उठाना उद्यमशीलता का पहलू क्यों है? किसी उद्यमी से इसका पता लगाने के लिए बातचीत कीजिए और आपको इससे जो भी जानकारी मिलती है उसे नोट कीजिए।

किसी व्यक्ति की विशेषताएं, उसके गुण-दोष उस सामाजिक स्थिति से अलग नहीं किए जा सकते जिसमें वह रह रहा हो। क्षेत्रीय भिन्नताओं, पारिवारिक पृष्ठभूमि, व्यापार से संबंधित गंभीर पूर्वनिरीक्षण इत्यादि का विश्लेषण करने के लिए वे सफल उद्यमियों के जीवन का अध्ययन करना प्रारंभ कर देते हैं। उद्यमशीलता के उद्भव पर किए जाने वाले अध्ययनों का पुनरावर्ती मूल विषय है घनिष्ठ और विश्वसनीय सहयोगियों का यह नेटवर्क जो फाइनेंसर, खरीददार और सप्लायर तैयार करता है। इसका उद्यम संस्कृति की प्रधान विशेषता के रूप में बारंबार प्रयोग किया जाता रहा है।

13.2.2 मैक्स वेबर के विचार

मैक्स वेबर का मत था कि धार्मिक विश्वास या प्रोटेस्टैंट कार्य नैतिकता उद्यमशीलता के लिए प्रेरक कारक थे। नैतिक मूल्यों या सामाजिक आदर्शों के कारण ही विवेकपूर्ण आर्थिक नजरिए का जन्म हुआ क्योंकि इन मूल्यों ने फिजूलखर्ची, अवांछित उपभोग और अकर्मण्यता पर अंकुश लगाकर उद्यमशीलता के विकास में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उद्यमशीलता समाज और प्रोटेस्टैंट कार्य नैतिकता की उपज होने के कारण उच्च उत्पादकता, अधिक बचत और निवेश की ओर ले जाती है जो उसके आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य हैं। वेबर के मतानुसार उद्यमी औसत-दर्जे से ऊपर की क्षमताओं वाला एक "चमत्कारिक व्यक्ति" है। लीबेनस्टीन ने भी यही तर्क दिया कि उद्यमशीलता एक ऐसा गुण है जो समाज के कुछ सदस्यों में पाया जाता है और इसमे निवेश के अवसर खोजने की योग्यता, संसाधनों तक पहुंच बनाने, ऐसे लोगों में अपने आगे बढ़ाने की प्रचार करने की क्षमता - जो उसमें पूंजी लगा कर उद्यम को आरंभ करने और उसे चलाने की क्षमता रखते हो - शामिल है।

उद्यमी पैदा नहीं होते हैं, उन्हें तैयार किया जाता है। उद्यमी बनने के लिए महिलाओं की शिक्षण प्रक्रिय
सौजन्य : परवा देबत, आई.आर.ई.डी.ए., नई दिल्ली

13.3 उद्यमशीलता के प्रकार

उद्यमशीलता से संबंधित सक्रियता की सीमा, के आधार पर उद्यमशीलता को कई प्रकार से बांटा सकता है।

i) **प्रशासनिक उद्यमशीलता** : इसमें नए उत्पादों, प्रक्रियाओं और तकनीकों का विकास या मौ उत्पादों, प्रक्रियाओं और तकनीकों में सुधार को उच्च प्राथमिकता मिलती है और प्रयास किया उ है कि वैज्ञानिक तकनीकी कार्मिक और प्रबंधक/प्रशासक एक संयुक्त उपक्रम के रूप में काम क प्रबंध का दायित्व इसमें संसाधन और सुविधाएं मुहैया कराना है और तकनीशियनों को नए विच को मूर्तरूप देने के लिए पुरस्कृत किया जाता है। यह संस्कृति नौकरशाही स्तर के बजाए नूतन को अधिक महत्व देती है। इस तरह के नूतन परिवर्तनों में तब प्रशासन आस्था व्यक्त करत और उनके लिए संस्तुति, समर्थन प्रदान करता है और उसमें भागीदारी करता है।

ii) **अवसरवादी उद्यमशीलता**: इसमें आंतरिक और बाहरी दोनों तरह के नवीन प्रौद्योगिकी विकास सूक्ष्म परीक्षा और निगरानी पर विशेष बल दिया जाता है। इसमें एक "उत्पाद विशेषज्ञ"

> **अपने अनुभव से सीखें 1**
>
> किसी सफल कारखाने का दौरा कीजिए। उसके प्रबंध मंडल से पता लगाइए कि वह उद्यम किस तरह प्रारंभ किया गया था। इसके बाद यह पता लगाइए कि उसमें किस प्रकार की उद्यमशीलता आवश्यक है। अपनी जानकारी को नोटबुक में लिखिए।

iii) **अर्जनशील उद्यमशीलता:** इस उद्यमशीलता में सहयोग, अनुबंध और परामर्श (कनसल्टेंसी) के माध्यम से अन्य कंपनियों की तकनीकी क्षमताओं को अर्जित किया जाता है, जिससे नूतन प्रौद्योगिक विकास सुलभ हो सकें।

iv) **उद्भवनकारी उद्यमशीलता:** नए उद्यमों, उपक्रमों के बारे में विचार करने, उन्हें आरंभ कर उन्हें विकसित करने के लिए मौजूदा उद्यम के अंदर अर्धस्वायत्त इकाइयों की सृष्टि करनी पड़ती है. नवीन परिवर्तनकारी उच्च जोखिम वाले उपक्रमों के लिए एक इंक्यूबेटर की तरह सृजन का काम करने वाली ये अर्ध-स्वायत्त इकाइयां आंतरिक उद्यमशीलता को मजबूत बनाती हैं।

v) **अनुकारी उद्यमशीलता :** इसमें नूतनता या नवीन परिवर्तन अनुकरण या नकल और साधारण रूपांतरण तक सीमित रहते हैं जैसे पैकेजिंग, डिजाइन इत्यादि में।

13.3.1 उपलब्धि की प्रेरणा

एक अन्य मत उपलब्धि की प्रेरणा की आवश्यकता पर बल देता है। मैकक्लीलेंड (1969) के अनुसार "मनोवैज्ञानिक कारक जैसे उपलब्धि की प्रेरणा, आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है।" मैकक्लीलेंड ने विभिन्न सम्प्रदायों और समाजों में उद्यमशीलता के विकास का विश्लेषण साहित्य, कला, इतिहास और धर्म में प्रतिबिंबित होने वाली विचारधाराओं के संदर्भ में उद्यमशीलता की व्याख्या करके प्रस्तुत किया। इसके बाद उन्होंने उन समाजों का वर्गीकरण किया जिन्होंने उच्च दर्जे की उपलब्धि व प्रेरणा का निर्माण किया और उद्यम उद्भव के विकास को सुगम बनाया था। इसी प्रकार भारत में भी उद्यमशीलता के विश्लेषण के लिए कई अध्ययन और शोधकार्य हुए हैं। त्रिपाठी और के.एन. शर्मा के अनुसार "नए विचारों और मूल्यों का उदय उद्यमशीलता के लिए अनिवार्य है।" त्रिपाठी के अनुसार इसके लिए औपचारिक शिक्षा जरूरी है क्योंकि शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसके माध्यम से उद्यमशीलता के विचारों और मूल्यों का आविर्भाव होगा। दूसरी ओर शर्मा के अनुसार धर्म उद्यमशीलता के विचार और मूल्यों के उदय के लिए अधिक महत्वपूर्ण प्रेरणा स्रोत हो सकता है।

13.3.2 उद्यमशीलता को बढ़ावा देने वाले कारक

अब यह प्रश्न उठता है कि आखिर किसी समाज में उद्यमशीलता को कौन से कारक बढ़ावा देते हैं? पहले दी गई विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर हम उद्यमशीलता के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों के निम्न चार सेट निर्धारित कर सकते हैं:

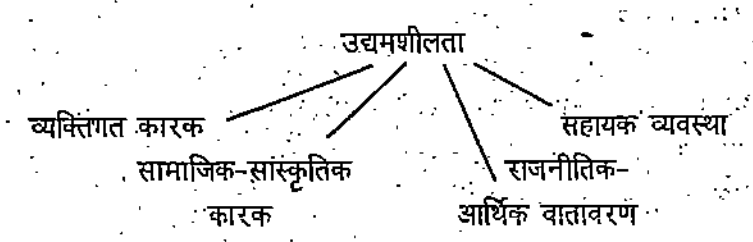

i) व्यक्तिगत कारक: व्यक्ति एक उद्यम का मुख्य केन्द्र बिंदु या धुरी होता है क्योंकि व्यक्ति ह से हटकर चलने का, नया परिवर्तन करने, पूंजी लगाकर जोखिम उठाने और एक उद्य करने का निर्णय करता है। इसलिए उन कारकों पर चर्चा करना अनिवार्य है जो व्यि प्रभावित करते हैं।

व्यक्ति के आचरण को तीन मुख्य कारक प्रभावित करते हैं, जो इस प्रकार हैं:

- उसको प्रेरणा देने वाले कारक
- उद्यमी की विभिन्न दक्षताएं
- अनेक प्रासंगिक पहलुओं पर उद्यमशीलता का ज्ञान

क) प्रेरणा

प्रेरणा से हमारा अभिप्राय व्यक्ति की कुछ नया और अनूठा कर गुजरने की अंत: प्रेरणा उद्यमशीलता के लिए यह सबसे महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। प्रेरणादायक कारक के तीन मुख्य हैं: क) उद्यमशीलता की प्रेरणा, ख) निजी सामर्थ्य और ग) सामना करने की क्षमता।

ख) उद्यमशीलता की प्रेरणा

इस कारक पर अलग.अलग अनुसंधानकर्ताओं ने काफी अध्ययनकार्य किया है। मैकक्लीलेंड और के अनुसार सबसे महत्वपूर्ण प्रेरणा है उपलब्धि हासिल करने की प्रेरणा। इसे हम दक्षता मूलक भी कह सकते हैं। दक्षता मूलक प्रेरणा का तात्पर्य उद्यमी की दूसरों या स्वयं के कार्य.निष्पा मानदंडों से स्पर्धा करने की क्षमता और कुछ नया और अनूठा करने या उपलब्ध संसाध अधिकतम उपयोग करने की ललक से है।

13.3.3 सफल उद्यमी की विशेषताएं

कई विशेषज्ञों ने सफल उद्यमियों में आम तौर पर पाई जाने वाली विशेषताओं और व्यक्तित्व संबंध को सूचीबद्ध करने का प्रयास किया है ये विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

- उपलब्धि हासिल करने की आवश्यकता
- दूसरों को प्रभावित करने की आवश्यकता
- दक्षता का बोध
- जोखिम उठाना
- फीड.बैक जानकारी के प्रति उदारता
- स्वतंत्राता की आवश्यकता
- सफलता की आशा
- वातावरण को बदलने में विश्वास रखना
- व्यावहारिक समर्थ ज्ञान

- विस्तार के प्रति सजग
- श्रम की महत्ता को माने, उद्यम के विकास के लिए बचत करने और उसमें निवेश करने की इच्छा रखता हो।

इन विशेषताओं को महत्वपूर्ण समझा जाता है लेकिन यह जरूरी भी नहीं है कि एक सफल उद्यमी में उपर्युक्त सभी गुण मौजूद हों। परंतु इन गुणों की उपस्थिति उद्यमी में सफलता की संभावना को बढ़ाते हैं। प्रेरणामूलक प्रशिक्षण प्रक्रियाओं के माध्यम से उद्यमशीलता विकास कार्यक्रम उद्यमियों में इन गुणों के विकास में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्रेरणा के अलावा, उद्यमी को अन्य दक्षताओं की भी आवश्यकता पड़ती है, जो मुख्य प्रकार्यों में उसकी कार्यकुशलता को प्रभावित करती हैं। इन्हें मोटे तौर पर निम्न तीन समूहों में बांटा जा सकता है:

i) परियोजना (प्रोजेक्ट) के संदर्भ में आर्थिक अवसर को भांप लेने की योग्यता
ii) परियोजना के इसी ज्ञान पर आधारित एक उद्यम को स्थापित करने की योग्यता
iii) दक्षता से उद्यम को चलाने की योग्यता

इन तमाम प्रकार्यों को करने के लिए उद्यमी को कुछ विशेष दक्षताओं की आवश्यकता पड़ती है:

- परियोजना की रूपरेखा बनाने के कौशल
- उद्यम को बनाने के कौशल और
- उद्यम के प्रबंधन के कौशल

क्या समाज उन्हें उद्यमीता के कौशल प्राप्त करने में आवश्य माहौल उपलब्ध कराएगा
सौजन्य : सी.एस.आर., नई दिल्ली

13.4 परियोजना की रूपरेखा बनाना

परियोजना की रूपरेखा बनाने की योग्यता का तात्पर्य उद्यमी की प्रस्तावित उद्यम को परियोजना के रूप में और जिन-जिन चरणों में वह इसे स्थापित करेगा उनकी संकल्पना करने की क्षमता से है। अपने पैकेज में परियोजना नियोजन को शामिल करके प्रशिक्षण संस्थान क्षमतावान् उद्यमियों को इसमें प्रशिक्षण देते हैं और उद्यमशीलता का विकास करते हैं।

विचार करें – 2

क्या आप के विचार में उद्यमशीलता के लिए भारी नियोजन की आवश्यकता पड़ती है? इस पर विचार करने से पहले इकाई के इस भाग को ध्यान से पढ़िए। अपने विचार नोटबुक में लिख लीजिए।

उद्यमी को उन सभी क्षेत्रों का ज्ञान होना जरूरी है जो उद्यम आरंभ करते समय आवश्यक हैं। इन्हें मोटे तौर पर तीन समूहों में बांटा गया है: वातावरण, उद्योग और प्रौद्योगिकी (टेक्नोलॉजी)। राजनीतिक और आर्थिक वातावरण की समझ इस वर्ग में आते हैं। राजनीतिक-आर्थिक वातावरण, सरकारी नीतियों, वित्तीय और वाणिज्य संस्थानों, छूटों और प्रोत्साहनों, आयात-निर्यात नीति, कर नीतियों, कच्चे माल की सुलभता और ढांचागत सुविधाओं के बारे में काफी कुछ जानकारी प्रशिक्षण से मिल सकती है। उद्यमशीलता विकास प्रशिक्षण से सिर्फ सैद्धांतिक जानकारी ही नहीं मिलती, बल्कि इससे उद्यमी को विभिन्न सहायक-व्यवस्थाओं द्वारा लागू की जाने वाली तरह-तरह की योजनाओं, प्रक्रिया संबंधी आवश्यकताओं और अन्य औपचारिकताओं पर व्यावहारिक प्रशिक्षण भी मिलता है।

13.4.1 सामाजिक-सांस्कृतिक कारक

व्यक्ति का निजी स्वभाव, उसके मूल्य, रवैया और आचरण संबंधी उसके तौर-तरीके सामाजिक-सांस्कृति परिवेश द्वारा निर्धारित होते हैं। वह अपने परिवार की अपेक्षाओं, आकांक्षाओं के दबाव में कार्य करता है। फिर उसका आचरण, और पहल करने, जोखिम उठाने, आत्म-निर्भरता, श्रम की महत्ता इन सबके के प्रति उसका नजरिया परिवार, स्कूल और समाज में उसके समाजीकरण की प्रक्रिया से तय होते हैं। उद्यमी के व्यक्तित्व के विकास में समाजीकरण की प्रक्रिया की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसलिए, व्यक्ति के सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण को प्रभावित करना अनिवार्य है। यह कई तरह से किया जा सकता है जैसे सामान्य शिक्षा और विशिष्ट प्रशिक्षण कार्यक्रम। ये सभी विधियां नूतन परिवर्तनों के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में कारगर हो सकते हैं।

13.4.2 सहायक व्यवस्था

सहायक व्यवस्था से हमारा तात्पर्य लघु उद्यमियों के विकास के लिए विभिन्न संस्थानों द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं से है। उद्यमशीलता के विकास में सहायक व्यवस्थाओं के दक्ष और प्रभावी संचालन की महत्वपूर्ण भूमिका है। इन संस्थानों को उद्यमियों को जोखिम उठाने और नवीन परिवर्तनों से जुड़ी अन्य गतिविधियों के लिए पर्याप्त समर्थन और सहायता प्रदान करनी चाहिए।

13.5 भारत में महिला उद्यमशीलता

भारत में परंपरागत सांस्कृतिक रूढ़ियों ने महिलाओं को समाज में निचला दर्जा दिया है। प्रचलित रीति-

रिवाज, विश्वास और मूल्य महिलाओं को सौंपी गई उद्यमियों की नई भूमिका में स्वीकार करने को तैयार नहीं है। इसलिए महिलाओं के लिए इन पारंपरिक अवरोधों को तोड़ना अनिवार्य है।

हमारे समाज के औपचारिक ढांचे, उसकी संस्थाएं महिलाओं के प्रति सामाजिक-लिंग पूर्वाग्रहों से संचालित होते हैं। सरकारी अधिकारी, वित्तीय संस्थान, कल्याण एजेंसियां भी इन पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं हैं। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि महिलाओं के व्यवहार का स्वीकार्य पैटर्न विनम्रता है इस विनम्रता, संकोच और उनके अपने विचारों को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त न कर पाने के कारण अधिकारी उन्हें अक्सर अक्षम और व्यावसायिकता से हीन समझते हैं। फिर समाज में महिलाओं की स्थिति को सही ढंग से समझने का प्रयास भी नहीं किया जाता है। इसके अतिरिक्त पुरुष जब भी महिलाओं से बातचीत या व्यवहार करते हैं तो अक्सर उसमें लंपटता का पुट भरा रहता है, जिससे संकोची महिलाएं उद्यमी बनने का प्रयास छोड़ देती हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि महिलाओं को व्यवसायी न मान कर उन्हें सिर्फ महिला ही समझा जाता है। (अय्यर, एल. 1991 पृ.7)

अपने अनुभव से सीखें - 2

कुछ महिला उद्यमियों से मिलें। उनसे मालूम करिए की जोखिम उठाने की प्रेरणा उन्हें कहां से कैसे मिली? उन्होंने जो भी उपलब्धि हासिल की है क्या उससे वे संतुष्ट हैं? अपनी जानकारी को नोटबुक में लिखिए।

सामाजिक-लिंग भूमिका संबंधी अपेक्षाएं और परंपरागत धारणाएं महिलाओं की उद्यमशीलता में बाधक हैं। पुरुषों को परंपरागत रूप से परिवार का अर्जक अर्थात् पालनकर्ता या रोजी-रोटी कमाने वाला और महिलाओं को सहायक के रूप में समझा जाता रहा है। उन्हें आज भी गृहिणियों के रूप में ही देखा जाता है और इसीलिए उनके ऐसे प्रयासों/कार्यों को गंभीरता से नहीं लिया जाता। 'उनके प्रयास को उद्यमशीलता का एक स्वतंत्र उपक्रम मानने के बजाए ज्यादा से ज्यादा स्वरोजगार या अपने पति, पिता या पुरुष संबंधी की सहायता के लिए किया जाना वाला प्रयास समझा जाता है'।

अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन और सी आई डी ए द्वारा हाल ही में किए गए एक संयुक्त अध्ययन के अनुसार एक उद्यम लगाने के लिए महिलाओं को भी पुरुषों की तरह उन्हीं चरणों से गुजरना पड़ता है और वैसी ही चुनौतियों, कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है; महिला होने के कारण उन्हें विशेष कारकों का सामना करना पड़ता है जो उद्यमियों के रूप में पहले उनके प्रवेश और फिर सफल महिला उद्यमी या व्यवसायी के रूप में अपना अस्तित्व बनाए रखने में बाधक बनते हैं।

13.5.1 उद्यममूलक क्षमताएं अर्जित करने में आनेवाली कठिनाइयां

एक उद्यमी के रूप में उभरने में महिलाओं को प्राय: अनेक बाधाओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

- महिलाओं की उद्यमशीलता संबंधी क्षमताओं को उनके परिवार से स्वीकृति, प्रोत्साहन नहीं मिलता;
- महिलाओं पर अत्यधिक कार्यभार होता है। उन्हें घरेलू कामकाज, बच्चों की देखभाल के साथ-साथ आजीविका अर्जन जैसे बोझ ढोने पड़ते हैं;
- उन्हें संसाधन, कच्चा माल, नई प्रौद्योगिकी और बाजार सुलभ नहीं हो पाते;

- अपने पुरुष प्रतिस्पर्धियों की तुलना में वे कम ज्ञान और प्रशिक्षण लेकर स्पर्धा में प्रवेश
  हैं;
- संस्थागत ऋण सुविधा उन्हें बहुत कम मिल पाती है क्योंकि ज्यादातर बैंक और अन्य वि
  संस्थान उन्हें ऋण के योग्य नहीं समझते;
- उन्हें अक्सर ऐसे व्यवसाय अपनाने पड़ते हैं जिनमें पहले से ही अधिक स्पर्धा मौजूद हो
  जिससे उनके पास विकल्प सीमित रहते हैं;
- उन्हें संस्थागत उदासीनता का सामना करना पड़ता है क्योंकि सरकारी विभाग और अधि
  उनके आवेदनों और प्रयासों को प्राथमिकता नहीं देते।
- वे पुरुषों द्वारा बनाई और लागू की जाने वाली असंतुलित नीतियों का शिकार हैं;
- विकास और सहायक संस्थाएं भी एक विशिष्ट ग्राहक समूह के रूप में महिला उद्यमियों को
  प्राथमिकता देते हैं।

13.5.2 भारत में महिला उद्यमी

हाल के वर्षों में एक ओर औद्योगिक, शहरीकरण, जनसंचार नेटवर्क और शिक्षा का प्रसार हुआ
दूसरी ओर अर्थव्यवस्था के भूमंडलीकरण और आवश्यक सरकारी पहलों के चलते हमारे समा
उद्यमशीलता विकास की संभावनाएं काफी बढ़ गई हैं। सरकार भी लघु उद्योग क्षेत्र में उद्यमशीलत
विकास को बढ़ावा देने पर बल दे रही है क्योंकि लघु उद्योगों में रोजगार पैदा करने की संभावना
गई हैं और फिर इनका आसानी से अनुकरण भी किया जा सकता है।

क्या आप जानते हैं?

स्वरोजगार को बढ़ावा देने के लिए ट्राइसेम (TRYSEM), सीयू (SEEYU), प्रधानम
रोजगार योजना जैसी कई योजनाएं शुरू की गई हैं। विभिन्न व्यावसायिक और विकास बैंक
उद्यमशीलता विकास कार्यक्रम के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने में पहल कर रहे हैं। भारत
उद्यमशीलता के विकास के लिए भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया और
उद्योग विकास बैंक काम कर रहे हैं महिलाओं के लिए भी विशेष पहले की गई हैं जिससे देश
महिला उद्यमशीलता का विकास हो रहा है।

अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन और 'सीडा' द्वारा किए गए अध्ययन के अनुसार:

- महिला उद्यमियों का प्रतिशत बढ़ गया है। अस्सी के दशक के आरंभ में उनकी संख्या 8
  प्रतिशत थी जो नब्बे के दशक में बढ़कर 9.25 प्रतिशत हो गई। यह प्रतिशत 1990-9
  दौरान बढ़कर 11.29 हो गया था। महिला उद्यमियों के प्रतिशत में 1993-94 में 25 प्रति
  की उल्लेखनीय वृद्धि हुई जो 1994-95 में बनी रही। बहरहाल महिला उद्यमियों की स
  लगभग 13 प्रतिशत है।
- महिला उद्यमियों की संख्या में वृद्धि का आधार उद्यम प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेने
  महिलाएं या उन महिला उद्यमियों की संख्या है जिन्होंने उद्यम स्थापित कर लिए हैं।

चुके हैं। इस क्षेत्र में अध्ययन कर रहे विद्वानों ने महिला उद्यमियों के सामने आने वाली कुछ विशेष कठिनाइयों पर प्रकाश डाला है, जो निम्नलिखित है :

- पूर्व अनुभव की कमी
- परिवार से सहायता की कमी
- प्रेरणा की कमी
- आत्म-विश्वास का अभाव
- हीन आत्म छवि
- सूचना का न मिल पाना
- प्रशिक्षण की कमी
- पुरुषों से संघर्ष
- गतिशीलता का अभाव
- बाधाजनक पारिवारिक और सामाजिक मानक,
- ऋण में भेदभाव
- जोखिम उठाने की क्षमता में कमी
- सहवर्ती जमानत की कमी
- विपणन की समस्याएं
- अधिकारियों से सहयोग न मिलना
- लम्बी और जटिल औपचारिकताएँ
- ढांचागत कमियां
- पुरुष कर्मचारियों से काम लेने में आने वाली कठिनाइयां
- विस्तार से संकोच
- प्रशासनिक समस्याएं
- आधुनिक प्रौद्योगिकी सुलभ न हो पाना
- उद्यम लगाने के लिए अनिवार्य दक्षताओं के ज्ञान का अभाव।

(अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन और सीडा, 1996, 32)

13.5.4 महिला उद्यमियों की अनुभवजन्य वास्तविकताएं

कुछ ही समय पहले ओखला औद्योगिक क्षेत्रा की सात महिला उद्यमियों के बारे में एक अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में महिला उद्यमियों का केस अध्ययन किया जिसमें उद्यमशीलता में उनकी भागीदारी की प्रकृति और प्रतिमानों, उनके सामने आने वाली समस्याओं और उनका समाधान और सफलता और वेफलता में समानताओं और भिन्नताओं के कुछ महत्वपूर्ण रुझान देखने को मिले। इन महिला उद्यमियों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि और अन्य कारकों का संक्षिप्त विवरण चार्ट-एक में दिया गया है:

हमें केवल कौशल प्राप्त करने के अवसरों की आवश्यकता है और उद्यमी के रूप में हम अपनी योग्यता सिद्ध कर सकते हैं
सौजन्य : सी.एस.आर., नई दिल्ली

इस अध्ययन से यह महत्वपूर्ण बात नजर आई कि ये सातों महिला उद्यमी जाति क्रम-परंपरा में उच्च स्तर से थीं–सातों महिला उद्यमियों में तीन बनिया जाति की थीं, व्यापार जिनका परंपरागत व्यवसाय है। दो कायस्थ और एक-एक ब्राह्मण और राजपूत जाति की थीं। मगर पारंपरिक जातिगत पृष्ठभूमि उद्यमशीलता में भागीदारी तय करने वाला कारक नहीं है। यह इन महिला-उद्यमियों की उद्यममूलक क्षमताओं, सफलता और विफलता की दर और उद्यममूलक उपक्रम में उनके प्रवेश से अच्छी तरह से स्पष्ट हो जाता है। इस अध्ययन में एक रोचक बात यह पाई गई कि इन सात महिला उद्यमियों में पांच व्यापारिक और शेष दो नौकरी-पेशे वाली पृष्ठभूमि की थीं। इस अध्ययन में यह बात भी पता चली कि शिक्षा महिलाओं को उद्यमी बनने में सहायक होती है। इन सात महिला उद्यमियों में एक स्नातकोत्तर (पोस्ट ग्रैजुएट), चार स्नातक (ग्रैजुएट), एक मैट्रिक पास और एक तकनीकी डिप्लोमाधारी थी। चार स्नातक उद्यमियों में से दो गारमेंट डिजाइनिंग प्रमाण पत्र प्राप्त थीं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सिर्फ उच्च जाति और आर्थिक पृष्ठभूमि की महिलाएं ही उद्यमशीलता में प्रवेश करती हैं। सामाजिक, पारिवारिक और शैक्षिक पृष्ठभूमि, इस उपक्रम में उनके प्रवेश, वित्तीय सहायता के स्रोत और उद्यममूलक प्रशिक्षण में हालांकि एक सीमा तक समरूपता नजर आती है, मगर सामने आने वाली समस्याएं और इन समस्याओं के प्रति उनकी अनुक्रिया तथा विशेषकर उद्यममूलक क्षमताएं जैसा कि चार्ट-1 में दिखाया गया है सभी में समान नहीं होती।

चार्ट-1 महिला अभिप्रेरकों की नमूने अध्ययन में विशेषताएँ

महिला अभिप्रेरक	सामाजिक /पारिवारिक पृष्ठभूमि	शिक्षा	अभिप्रेरक कार्यों में प्रवेश	वित्तीय सहायता	प्रशिक्षण के प्रकार	समस्याओं, जिसका सामना करना होता है	समस्याओं से उबरना	अभिप्रेरकों की योग्यता	सफलता एंव असफलता का दर
पहला	बनिया	तकनीकि डिप्लोमाधारी	पति की पहल	पारिवारिक पूँजी एवं बैंक कर्ज	पारिवारिक मुख्यतया पति से	प्रारंभिक हिचकिचाहट एवं वृद्ध महिलाओं का विरोध	आत्म विश्वास एवं पति का सहयोग	जोखिम भरा, नेतृत्व उदार एवं अनुभव से सीखना	सफलता का उच्च दर
दूसरा	पंजाबी कायस्थ	गारमेन्ट डिजाइन डिप्लोमा के साथ बी.ए	पिता की मृत्यु एवं घरेलू बाध्यता	पारिवारिक पूँजी एवं बैंक कर्ज	पारिवारिक पृष्ठभूमि	अनुभव की कमी एवं वृद्ध महिलाओं का विरोध	आत्म विश्वास	जोखिम भरा, अनुभव से सीखना, आत्म विश्वास	सफलता का उच्च दर
तीसरा	बनिया (व्यवसाय)	मैट्रिक	खुद की पहल	पिता का सहयोग एवं बैंक कर्ज	ई.डी.टी.पी	सांस्थानिक बेढंगापन	उत्साह से भरपुर	अनुभव एवं नेतृत्व से ध्यानपूर्वक सीखना	सफलता का उच्च दर
चौथा	ब्राह्मण (व्यवसाय)	बी.एस.सी (गृह विज्ञान)	खुद की पहल एवं पति का प्रोत्साहन	पारिवारिक पूँजी एवं बैंक कर्ज	पारिवारिक पृष्ठभूमि	सांस्थानिक बेढंगापन	आत्मविश्वास	सृजनशीलता की चाहत एवं आत्म सम्मान	सफलता का औसत दर
पाँचवाँ	कायस्थ	बी.काम.	पति दोस्त एवं रिश्तेदारों की पहल	बैंक कर्ज एवं पारिवारिक पूँजी	पारिवारिक पृष्ठभूमि	प्रारंभिक हिचकिचाहट एवं आत्मविश्वास में कमी	रिश्तेदरों का सहयोग	उपार्जन लिप्सा	सफलता का निम्नदर
छठा	बनिया	एम.एस.सी.	पिता की पहल	बैंक कर्ज	ई.डी.टी.पी.	आत्म विश्वास में कमी	मित्रों एवं सरकारी अधिकारियों का सहयोग	ऊँची जोखिम एवं अनुभव से सीखने की कोशिश	असफलता/सफलता का निम्नदर
सत्तवाँ	राजपूत (सेवा)	गारमेन्ट डिजाइन में डिप्लोमा सहित बी.ए	अपनी पहल एवं पति का प्रोत्साहन	पारिवारिक बचत एवं बैंक कर्ज	शैक्षणिक पृष्ठभूमि ई.डी.टी.पी.	सांस्थानिक बेढंगापन एवं आत्मविश्वास में कमी	आत्मविश्वास एवं पति का सहयोग	जोखिम झेलने की योग्यता	सफलता का औसत दर

इन महिला उद्यमियों में से अधिकांश ने स्वयं की पहल से इस उपक्रम में प्रवेश किया था। मगर कुछ मामलों में पति/पिता/संबंधी या मित्रों ने पहल की इनमें से दो ने अपने पिता या पति की मृत्यु के बाद या घरेलू विवशताओं के चलते इस उपक्रम में कदम रखा था।

13.5.5 वित्तीय सहायता

अध्ययन से पता चलता है कि परिवार की वित्तीय स्थिति महिला उद्यमियों को उद्यम लगाने का जोखिम उठाने में बड़ी निर्णायक होती है। जहां तक वित्तीय सहायता की बात है अधिकांश महिला उद्यमियों को उपलब्ध पारिवारिक संसाधनों का लाभ मिलता है। चूंकि इनमें से अधिकांश महिला उद्यमी व्यापारिक पृष्ठभूमि की होती हैं, इसलिए उन्हें अपने व्यापारिक उद्यम में निवेश करने के लिए काफी पारिवारिक पूंजी सुलभ रहती है। फिर इन्हें वित्तीय संसाधन प्रदान करने के लिए बैंकिंग संस्थान आगे आते हैं। बहरहाल, बैंक से ऋण प्राप्त करने में अधिकांश को प्रक्रिया संबंधी देरी जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

प्रशिक्षण उद्यमशीलता के विकास में एक महत्वपूर्ण पहलू है। यह इकाई/उद्यम के अस्तित्व को बनाए रखने और उसकी प्रगति दोनों के लिए अनिवार्य है। अब चूंकि अधिकांश महिला उद्यमी व्यापारिक पृष्ठभूमि की होती हैं, इसलिए अपने परंपरागत व्यापारिक परिवेश में उनका समाजीकरण हो चुका रहता है। इससे उन्हें अपने परिवार के अन्य सदस्यों से व्यापार की कला सीखने का भरपूर अवसर रहता है। इस पारिवारिक पृष्ठभूमि के अतिरिक्त उद्यमशीलता विकास कार्यक्रम (ईडीटीपी) और औपचारिक शिक्षा से उन्हें आवश्यक ज्ञान और दक्षताएं हासिल हो जाती हैं। उनके कार्य-निष्पादन में निस्संदेह अंतर दिखाई पड़ते हैं जो ज्यादातर उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि से जुड़े होते हैं।

क्या आप जानते हैं 2

किसी इकाई/फर्म को चलाने में महिलाओं को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन्हें इन समस्याओं का सामना महिला होने के कारण और फिर नया उद्यमी होने के कारण करना पड़ता है। इसलिए समस्याएं दो प्रकार की होती हैं आंतरिक और बाहरी। आंतरिक समस्याओं में मुख्य आत्म-विश्वास की कमी, आरंभिक संकोच, अनुभव की कमी इत्यादि हैं। बाहरी समस्याएं पारिवारिक दबाव, बैंक से असहयोग, संबंधित संस्थाओं की जटिल प्रक्रिया इत्यादि हैं। इन समस्याओं में महिला उद्यमियों की प्रतिक्रिया हमेशा समान नहीं होती। कुछ उद्यमी तो इन समस्याओं पर आत्म-विश्वास और उत्साह से काबू पा लेती हैं तो कुछ पति/पिता/संबंधियों या मित्रों या सरकारी अधिकारियों के साथ स्थापित मौजूदा सामाजिक नेटवर्क की सहायता इत्यादि से इन समस्याओं को सुलझा लेती हैं।

महिला उद्यमियों ने उद्यममूलक क्षमताओं का खूब प्रदर्शन किया है जैसे जोखिम उठाना, अनुभव से सबक लेना, आत्म-विश्वास, सृजनशीलता की अंत: प्रेरणा, आत्म-सम्मान, अर्जनशीलता, विवेकशीलता इत्यादि। मगर सामाजिक और शैक्षिक पृष्ठभूमि के अनुसार महिला उद्यमियों में पाई जाने वाली इन क्षमताओं में काफी अंतर देखने को मिलता है। इन क्षमताओं के परिणाम इनकी सफलता और असफलता की भिन्न-6 दरों में प्रतिबिंबित होते है।

13.6 सफलता और असफलता की दर

महिला उद्यमशीलता के विकास के पैट्रर्न का गहराई से विश्लेषण करने के लिए हम उन्हें उनकी

सफलता या विफलता के अनुसार मोटे तौर पर तीन वर्गों में बांट सकते हैं: सफलता की ऊंची दर, मध्यम दर और निम्न दर/असफलता।

पीछे हमने उच्च सफलता पाने वाली जिन तीन महिला उद्यमियों का उल्लेख किया था वे सभी व्यापारिक पृष्ठभूमि की थीं। इनमें से भी दो बनिया जाति की तो तीसरी पंजाबी कायस्थ जाति की थीं। जहां तक इनकी शैक्षिक पृष्ठभूमि की बात है इनमें दो डिप्लोमा धारी और एक कला में स्नातक है। तकनीकी प्रशिक्षण निस्सदेह ऐसे सफल उद्यमियों को अपने कार्यक्षेत्र में दक्षता और ज्ञान के मामले में अन्य उद्यमियों से आगे रखता है। पारिवारिक पृष्ठभूमि से उन्हें पारंपरिक दक्षता और वित्तीय सहायता मिलती है तो अपने उद्यम को कुशलता से चलाने के लिए जरूरी मार्ग दर्शन उन्हें इसी शिक्षा से मिलता है। यहां एक रोचक बात भी सामने आई है। इनमें से एक सफल उद्यमी ने उद्यमशीलता विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम (ईडीटीपी) के तहत प्रशिक्षण प्राप्त किया था। इस प्रशिक्षण ने उसे ज्ञान, दक्षता और उद्यम संचालन की तकनीकें या बारिकियों के मामले में अन्य उद्यमियों से लाभप्रद स्थिति में रखा था। सभी ने अपने आत्म-विश्वास और कभी-कभी अपने पति, मित्रों और संबंधियों के सहयोग से आरंभ में आने वाली समस्याओं का समाधान किया। सभी उद्यमियों में जोखिम उठाने की क्षमता, विचारशीलता, अनुभव, नेतृत्व क्षमता जैसे गुण काफी अधिक पाए गए हैं।

इन सात महिला उद्यमियों में से दो को अपने उद्यममूलक प्रयास में मध्यम दर की सफलता हासिल हुई। इन दो में एक ब्राह्मण जाति की महिला उद्यमी व्यापारिक पृष्ठभूमि की थी और गृह विज्ञान से स्नातक हैं। नौकरी-पेशा पृष्ठभूमि की राजपूत उद्यमी कला-स्नातक हैं, जिसने गारमेंट डिजाइनिंग में डिप्लोमा और उद्यमशीलता विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम (ईडीटीपी) के तहत प्रशिक्षण भी प्राप्त किया। दोनों ने अपना व्यापार स्वयं प्रारंभ किया और दोनों को ही अपने-अपने पतियों से भरपूर प्रोत्साहन मिला। प्रारंभ में तो उन्होंने बचत से व्यापार प्रारंभ किया और उन्हें बैंक से ऋण भी मिला। ब्राह्मण उद्यमी का समाजीकरण तो व्यापारिक परिवेश में हुआ था और कुछ हद तक उसे महिला व्यवसायी बनने का प्रशिक्षण विरासत में मिला था। मगर राजपूत महिला उद्यमी का समाजीकरण एक भिन्न सांस्कृतिक परिवेश में हुआ था। वह नौकरी-पेशा वर्ग में पली-बढ़ी थी और गारमेंट डिजाइनिंग में डिप्लोमा करने के पश्चात ही उसमें उद्यमशीलता में रुचि पैदा हुई थी। यहां रोचक बात यह है कि दोनों को संस्थागत अड़चनों जैसी समस्याओं का समान रूप से सामना करना पड़ा था। दोनों को अपने परिवार के बुजुर्गों से किसी प्रकार के विरोध का सामना नहीं करना पड़ा। इनकी सबसे बड़ी पूंजी इनका आत्म-विश्वास था जिसने इन्हें तमाम संस्थागत अड़चनों से पार पाने में सहायता की। जोखिम उठाने के मामले में ये अपने व्यवहार में विवेकपूर्ण थीं। ये औसत दर्जे की सफल उद्यमी हैं जिन्होंने भूलों और प्रयासों से अपने व्यापार को चलाना सीख लिया है और अगर स्थितियों में विशेष परिवर्तन नहीं आता है तो ये सफल उद्यमी बनना चाहती हैं। अंतिम श्रेणी में हमारे पास दो महिलाएं हैं जिनकी सफलता की दर बहुत कम कही जा सकती है। इनमें से एक परंपरागत रूप से बनिया जाति के व्यापारिक परिवार की है तो दूसरी महिला उद्यमी कायस्थ जाति और नौकरी पेशा पृष्ठभूमि की थी। बनिया महिला उद्यमी स्नातकोत्तर है और कायस्थ महिला कला स्नातक है जिसने अपने पिता की पहल पर व्यापार आरंभ किया था। दोनों में से कोई भी उद्यमशीलता में रुचि नहीं रखती थी लेकिन दोनों ने अपने उद्यम दूसरों की पहल-प्रोत्साहन से किए। बनिया महिला उद्यमी का समाजीकरण यूं तो व्यापारिक परिवेश में हुआ था, मगर वह संकोची स्वभाव की थी और उसमें आत्म-विश्वास लेशमात्र भी नहीं था। अपने संबंधियों की सहायता से उसने समस्याओं का सामना करने का प्रयास तो किया लेकिन सफल नहीं रही। उसमें अर्जनशीलता तो अधिक थी मगर जोखिम उठाने की क्षमता या अपने अनुभव से सबक लेने की इच्छा शक्ति उसमें नहीं थी। परिणामस्वरूप, सफलता की दर कम रही। उधर कायस्थ महिला उद्यमी ने ईडीटीपी के तहत प्रशिक्षण पाया था मगर वह अपना संकोच दूर नहीं कर पाई और फिर उसमें पहल

GL

करने की क्षमता भी नहीं थी। उसमें आत्म-विश्वास की कमी थी। संस्थागत अड़चनों का सामना के लिए उसने अपने मित्रों की सहायता भी ली। वह सटीक अनुमान लगाए बिना ही बड़े जोखिम का प्रयास करती थी, फिर अपने अनुभव से सीखने की इच्छा भी नहीं रखती थी। इसका परिण रहा है कि वह हमेशा असफल रही है जिसके चलते हताशा में अब एक बंधी-बंधाई तनख्वाह नौकरी करना चाहती है।

13.7 सारांश

उपर्युक्त विषयसंबंधी अध्ययनों (केस अध्ययनों) से यही निष्कर्ष निकलता है कि उद्यमशीलता के में प्रत्येक का पृथक-पृथक संबंध नहीं है। बल्कि उद्यमशीलता एक जटिल प्रकार्य है जो विभि सामाजिक और आर्थिक परिवर्तियों से प्रभावित होता है।

यह धारणा कि सिर्फ परंपरागत रूप से व्यापारिक जाति या समुदाय ही सफल उद्यमी बन सकते निर्मूल साबित हो चुकी है। यह इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि जहां विभिन्न गैर-व्यापारिक म व्यापार में सफलता अर्जित कर रही हैं तो वहीं पारंपरिक रूप से व्यापारिक समुदायों/जाति महिलाओं को ऐसे उपक्रम में आंशिक सफलता ही हासिल हो रही है। उद्यममूलक क्षमताएं सभी स या समुदायों में विकसित हो रही हैं जिसमें औपचारिक शिक्षा और पारंपरिक समाजीकरण की मिली-जुली भूमिका निभा रही हैं। लघु उद्योग क्षेत्र में उद्यमशीलता अपने आप में एक चिरकालिक है जिसमें परंपरा और आधुनिकता की शक्तियाँ एक धारा में साथ-साथ बह रही हैं।

13.8 शब्दावली

उद्यमी : इसका अभिप्राय है नए उद्यम में जोखिम उठाने के व्यवहार

सहायता पद्धति : लघु उद्योग के विकास के लिए विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रदत्त सुविधाएँ।

13.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

रॉबर्ट सी. रॉन्स्तात: *एंट्रेप्रिन्योरशिप,* डोबर, एम ए: लॉर्ड पब्लिशिंग, 28
हारवर्ड एच. स्टीवेंसन और डेविड ई.गुम्पर्ट, *"द हार्ट ऑव एंट्रेप्रिन्योरशिप," हारवर्ड बिजनेस* मार्च-अप्रैल 1985; . 58.94

बार्टन कन्निंघम और जो लीशोरॉन; *"डिफाइनिंग एंट्रिप्रिन्योरशिप" जरनल ऑफ स्माल बि* मैनेजमेंट; जनवरी 1991; 45.61

कैल्विन ए. केन्ट, डोनॉल्ड एल. सेक्स्टन और कार्ल एच. वेस्पर 1982 *एनसाइक्लिोपीडिया एंट्रिप्रिन्योरशिप,* एंगलवुड क्लिप्स, एल ज़े प्रिंटिस हाल

इकाई 14 औद्योगिक श्रमिक

रूपरेखा

14.0 लक्ष्य और उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 संगठित क्षेत्र में महिलाओं को रोज़गार
14.3 रोज़गार में कमी होने के कारण
  14.3.1 संरक्षणकारी कानून
  14.3.2 महिलाओं का अलगाव
  14.3.3 मशीनीकरण का प्रभाव
  14.3.4 उद्योगों का सिमटता स्वरूप
  14.3.5 उद्योग का स्थान परिवर्तन
14.4 संरक्षणकारी कानून और उनका कार्यान्वयन
  14.4.1 रात्रि में कार्य तथा भूमिगत कार्य
  14.4.2 प्रसूति अवकाश तथा बाल देखभाल
14.5 महिला रोज़गार का भविष्य
14.6 सारांश
14.7 शब्दावली
14.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.0 उद्देश्य

इस इकाई में संगठित क्षेत्र में वर्तमान स्थिति की चर्चा और स्थिति का विश्लेषण किया गया है। जीवन के अन्य क्षेत्रों की तरह इस क्षेत्र में भी अधिकांश महिलाएँ पुरुषों से काफी भिन्न हैं। वास्तव में औद्योगिक महिला श्रमिकों पर किए गए अध्ययनों से ऐसी महिलाओं की दयनीय स्थिति का पता चलता है।

इस इकाई में हम संगठित क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति की जांच करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- संगठित क्षेत्र में महिलाओं द्वारा किए जाने वाले विभिन्न कार्यों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- महिलाओं के रोज़गार में तेजी से कमी आने के कारणों के बारे में जान सकेंगे;
- उद्योगों में महिलाओं द्वारा कार्य करने के बारे में मिथकों से परिचित हो सकेंगे;
- औद्योगिक जगत में पुरुष/स्त्री जाति के प्रति पूर्वाग्रह के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- महिलाओं की समस्या के प्रति ट्रेड यूनियनों के दृष्टिकोण को समझ सकेंगे; और
- इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए किए जानेवाले उपायों से परिचित हो सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

1991 के आँकड़ों के अनुसार देश में कुल 317 मिलियन श्रमिक थे। ये श्रमिक दो मुख्य क्षेत्रों संगठित क्षेत्र तथा असंगठित क्षेत्रों में विभाजित थे। इनमें से अत्यधिक श्रमिकों की आबादी असंगठित क्षेत्र में

कार्यरत है। संगठित क्षेत्र में मोटे तौर पर 27 मिलियन श्रमिक हैं जो कुल श्रमिकों का लगभग 8.5% बैठता है। शेष श्रमिक असंगठित क्षेत्र में कार्यरत है। असंगठित क्षेत्र को असुरक्षित क्षेत्र भी कहा जाता है। इस क्षेत्र के बारे में हम अगली इकाई में विस्तृत चर्चा करेंगे।

संगठित क्षेत्र में मुख्यत: वे श्रमिक आते हैं जिन्हें नियमित मज़दूरी वेतन मिलता है। कानूनी रूप से उन्हें रोज़गार में अधिक सुरक्षा भी प्राप्त है। रोज़गार को नियंत्रित करने के लिए अनेक कानून हैं जिनमें कार्य दशाओं, वेतन व सुरक्षा को शामिल किया गया है। अत: इस क्षेत्र में नियुक्त श्रमिकों के जीवन व कार्य दशाएं असंगठित क्षेत्र में कार्य करने वालों की अपेक्षा अधिक बेहत्तर है। इस क्षेत्र में अधिकांश रोज़गार सार्वजनिक क्षेत्र तथा सरकारी क्षेत्र में है।

आइए अब हम देश में लिंग भेद के अनुसार श्रमिकों की संख्या को देखते हैं। 1991 के आंकड़े दर्शाते है कि संगठित क्षेत्र में कार्यरत 26.8 मिलियन श्रमिकों में से 23 मिलियन श्रमिक पुरुष तथा केवल 3.8 मिलियन श्रमिक महिलाएं थीं। इसका अर्थ है कि संगठित क्षेत्र में प्रत्येक 6 पुरुषों की तुलना में 1 महिला श्रमिक थी। अत: हम देख सकते है कि महिला श्रमिकों की संख्या निराशाजनक रूप से कम है। दूसरी व्याख्या के अनुसार महिलाओं को इस क्षेत्र में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता। हम देखेंगे कि इस क्षेत्र में महिलाओं की संख्या हमेशा कम नहीं रही है। भूतकाल में संगठित क्षेत्र में पर्याप्त संख्या में महिलाएं कार्यरत थी लेकिन वर्तमान में उनकी संख्या में पर्याप्त रूप से कमी हुई है। वास्तव में वर्तमान प्रवृत्ति दर्शाती है कि इस क्षेत्र में महिलाओं की संख्या में बहुत गिरावट आ गई है। इस इकाई में हम इसके कारणों की जांच करेंगे।

आरंभ में हम संगठित क्षेत्र में महिलाओं के रोज़गार में होने वाली कमी की चर्चा करेंगे। इसके बाद इस कमी के कारणों की जांच करेंगे। इसके अनेक कारण हैं और हम उन सब की चर्चा करेंगे। सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है हमारे समाज में लिंग भेद होना। अंत में हम देखेंगे कि क्यों अधिकांश उद्योगों में महिलाएं जाना चाहती हैं और क्यों कुछ उद्योगों में उन्हें प्राथमिकता दी जाती हैं इस प्रकार हम स्पष्ट करेंगे कि पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं के पीड़ित होने के कारण क्या हैं?

14.2 संगठित क्षेत्र में महिलाओं को रोज़गार

भारत में औद्योगिक उत्पादन 1850 में मुंबई (बंबई) में सूती वस्त्र मिलें तथा कलकत्ता में पटसन की मिलें आरंभ होने के साथ हुआ। 1830 के दशक में असम में चाय उद्योग आरंभ हुआ। औद्योगिकरण के आरंभिक वर्षों में पुरुष, महिलाओं और बच्चों को श्रमिक के रूप में रखा गया। जैसा कि पहले दर्शाया जा चुका है, वास्तव में औद्योगिक उत्पादन में कार्यरत् महिलाओं की अनुपातिकता, वर्तमान स्थिति की तुलना में काफी अधिक थीं। 1920 के दशक में महिला श्रमिकों की संख्या वस्त्र उद्योग में कुल श्रमिक संख्या का 20% तथा पटसन उद्योग में कुल श्रमिकों का 15% थी। खनन उद्योग में महिला श्रमिकों का अनुपात 38% तथा चाय उद्योग में 50% था।

पिछले कुछ दशकों में ही इस स्थिति में तेजी से परिवर्तन हुआ है। 1948 तक मुंबई के वस्त्र उद्योग में कुल श्रम का महिला श्रम घटकर 12% तक रह गया। खाद्यानों में महिलाओं का अनुपात घटकर 15% तक हो गया तथा पटसन उद्योग में कुल श्रम का महिला श्रम केवल 8% रह गया। 1975 तक महिलाओं की संख्या वस्त्र उद्योग में केवल 2.5%, पटसन उद्योग में 2% तथा खनन में केवल 5% रह गयी। इस अवधि में श्रमिकों के रोज़गार में तो वृद्धि हुई लेकिन महिला रोज़गार में गिरावट आई। केवल कृषि उद्योग में महिलाओं का अनुपात 50% पर अपरिवर्तित रहा। इसके कुछ विशिष्ट कारण है जिनका वर्णन हम बाद में करेंगे।

उत्तर पूर्वी की बागान उद्योग में महिलाएँ
सौजन्य : प्रो० कपिल कुमार, इग्नु, नई दिल्ली

म देख सकते हैं कि पुराने उद्योगों जैसे वस्त्र, पटसन तथा खनन उद्योगों में महिला श्रमिकों की संख्या ं काफी कमी आई है। इसके लिए एक तर्क यह दिया जा सकता है कि इन उद्योगों में श्रमिकों की कुल संख्या में भी कमी आई है अत: महिला श्रमिकों की संख्या भी कम होना कोई असाधारण बात नहीं ि। आखिरकार पुरुष श्रमिकों की संख्या भी कम हुई है। उदाहरण के लिए एक समय में मुंबई के वस्त्र उद्योग में कुल औद्योगिक श्रमिकों की संख्या सबसे अधिक थी और 1970 के दशक में यह संख्या :,50,000 तक सिमट गई और वर्ष 1984 के बाद इस संख्या में और गिरावट आई और यह, श्रमिकों क रह गई और वर्तमान समय में इन मिलों में कुल 85,000 श्रमिकों को ही रोजगार प्राप्त है इसका ुख्य कारण यह है कि इस शहर की सभी बड़ी मिलें बंद हो गई किन्तु यह तर्क पूरी तरह सही नही ।। वास्तव में पटसन और कपड़ा उद्योगों में सलंग्न श्रमिकों की संख्या में भारी कमी आई है किंतु इस ारावट में पुरुष श्रम की तुलना में महिला श्रम में गिरावट अधिक तेजी से आई और 1940 के दशक इसका प्रारंभ हुआ और वास्तव में यही वह उपयुक्त समय था जब कुल श्रम तेजी से बढ़ रहा था और ामान्य तौर पर इन उद्योगों में कुल श्रम तेजी से फैल रहा था और महिला श्रम इसी गति से धीमा ाता जा रहा था।

पर्युक्त उल्लिखित उद्योगों के अतिरिक्त आधुनिक उद्योग जैसे कि दवाई बनाने वाले उद्योग, उपभोक्ता स्तु उत्पादन उद्योग जहाँ नहाने के साबुन, सौंदर्य प्रसाधन और बिजली आदि का सामान तैयार किया ाता है – ऐसे उद्योगों में महिला श्रम अधिक व्यापक होता है और इस प्रकार के उद्योगों में सामान्य ार पर महिलओं को पैकर के रूप में नियुक्त किया जाता है। ये तैयार वस्तुओं को बड़े डिब्बों एवं छोटे ब्बों में पैक करती हैं। इलैक्ट्रानिक उद्योग में उन्हें विभिन्न पूर्जो को इक्ट्ठा करने के लिए नियुक्त कया जाता है।

14.3 रोज़गार में आई कमी के कारण

अच्छा वेतन देने वाले संगठित क्षेत्र में महिला श्रमिकों के रोज़गार में आई कमी उनके कार्य की प्रकृति के अनुसार विभिन्न रूप से परिभाषित की जाती है। इन पर बाद में चर्चा की जाएगी। लेकिन इसका सबसे महत्व पूर्ण कारण कुछ विशिष्ट कार्यनिष्पादन में कार्य की प्रकृति या महिलाओं की निजी योग्यता क्षमता नहीं है। यह तो वास्तव में लिंग आधारित हैं जोकि हमारे समाज में पहले से ही विद्यमान है और शायद इस प्रकार के पूर्वाग्रह इस खोखले विश्वास पर आधारित है कि महिलाओं का परम धर्म व सबसे मुख्य कार्य अपने घर की देखभाल करना है और जिसका यह भी अर्थ है कि घर का मुखिया पुरुष है और महिला को प्राप्त रोजगार सहायक के रूप में माना जाता है। इस प्रकार के पक्षपाती दृष्टिकोण ने नियोक्ता, सरकार और ट्रेड यूनियन आदि को भी प्रभावित किया है। इस प्रकार के कारणों की जाँच हम निम्नलिखित खंडों में करेंगे :

14.3.1 संरक्षणकारी कानून

भारत में औद्योगिक उत्पादन के आरंभिक वर्षों में कार्य और कार्य अवधि पर कोई नियंत्रण नहीं था। पुरुष, महिलाएं और बच्चे मुंबई में वस्त्र उद्योग में तथा कलकत्ता में पटसन उद्योग में कार्य करते थे। मज़दूरी काफी कम थी तथा जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए श्रमिकों को अस्वस्थ परिस्थितियों में बहुत अधिक समय तक कार्य करना पड़ता था। श्रमिकों द्वारा 14 से 16 घंटे प्रतिदिन कार्य करना आम बात थी। उद्योगों की स्थापना के लगभग 20 वर्ष बाद 1881 में प्रथम औद्योगिक अधिनियम पारित किया गया जिसमें बच्चों को एक दिन में 8 घंटे से अधिक कार्य करने की अनुमति नहीं थी। 1891 में दूसरा औद्योगिक अधिनियम पारित किया गया जिसमें महिलाओं की कार्य अवधि दिन में 11 घंटे तक सीमित की गई। इसके अतिरिक्त महिलाओं के रात में कार्य करने पर भी प्रतिबंध लगाया गया। किसी भी महिला को सांय 7 बजे से सुबह 5.30 तक कार्य पर नहीं लगाया जा सकता था।

विचार करें 1

दूसरे औद्योगिक अधिनियम 1891 के अनुसार किसी भी महिला कर्मचारी को सायं 7 बजे से प्रातः 5.30 के बीच काम पर नहीं लगाया जा सकता था। अधिनियम के औचित्य को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न लोगों से बात करें तथा इकाई का आगे अध्ययन करें। क्या आप सोचते हैं कि वे कारण आज भी वैध हैं? यदि हां तो ऐसा क्यों है? अपने उत्तर नोटबुक में लिखें।

औद्योगिक अधिनियम 1948 की एक विशेषता जो महिलाओं के रोज़गार में निर्णायक सिद्ध हुई वह थी उनके बच्चों के लिए बालगृह की सुविधा प्रदान करना। अधिनियम में लिखा गया है कि 30 या अधिक महिला कर्मचारी वाले उद्योगों को बालगृह बनाने होंगे। अधिकांश मामलों में नियोक्ता इसे फालतू का खर्च मानते थे। इस प्रकार वे यथा संभव महिलाओं की संख्या को 30 से कम रखने का प्रयत्न करते थे।

इन अधिनियमों द्वारा महिला और बाल श्रमिकों को सुरक्षा प्रदान की गई क्योंकि विभिन्न उद्योगों में कार्यरत् ये दोनो वर्ग बुरी तरह से शोषण का शिकार थे। इनके अलावा पुरुष भी कार्य समय के संदर्भ में सुरक्षा चाहते थे। किंतु इन अधिनियमों के परिणामस्वरूप महिला और बाल श्रमिकों को प्राप्त वेतन में भी कटौती कर दी गई क्योंकि अब वे पहले की तुलना में कम समय तक ही कार्य कर सकते थे और

इसी वजह से परिवार में महिला और बाल श्रमिकों का जीवन स्तर भी पूरी तरह से प्रभावित हुआ और पुरुषों को परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ता था। 1921 के फैक्टरी अधिनियम में पुरुष श्रमिकों के कार्यसमय नियमन की भी पेशकश की गई। इस अधिनियम द्वारा अब पुरुष भी केवल 12 घंटे तक ही कार्य कर सकते थे।

1929 में बाम्बे प्रैसीडैंसी द्वारा प्रसूति अधिनियम पारित किया गया जिसके अनुसार गर्भवती महिलाओ को प्रसव के दौरान और बाद में आठ सप्ताह की वेतन सहित छुट्टी दी जाएगी। किंतु नियोक्ताओं की नज़र में यह एक अतिरिक्त भार था जिसके कारण कपड़ा उद्योगों में करीब 18000 महिला श्रमिकों को नौकरी से निकाल बाहर किया गया।

1930 तक सभी कपड़ा उद्योग चाहते थे कि श्रमिक दिन-भर मिल में कार्य करें। चूंकि अब यह अनुमति नहीं थी कि महिलाएँ रात्रि में भी कार्य करें इसलिए नियोक्ताओं ने महिलाओं की भर्ती पर रोक लगा दी। वे महिलाओं को नौकरी देने के इच्छुक नहीं थे।

क्या आप जानते है?

1948 के फैक्टरी अधिनियम के अनुसार पर सप्ताह सर्वाधिक 48 घंटे तक ही कार्य करने की अनुमति थी (अर्थात एक दिन में आठ घंटे) और यह पुरुष और महिला दोनों वर्गों पर समान रूप से लागू किया गया। इस काल के दौरान कपड़ा और पटसन श्रमिकों को प्रायः वेतन में भी बढ़ोत्तरी हुई क्योंकि अब श्रमिकों ने अपनी यूनियन भी बना ली थी और इसी प्रकार से महिलाओं को लाभ पहुंचा लेकिन अब उनकी संख्या अपेक्षाकृत काफी कम थी।

1929 मे महिलाओं को कोयले की खानों में कार्य करने की अनुमति नही थी और इसके परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में महिला कार्यबल में 38% से 11% तक की गिरावट आई। कोयला और अन्य संसाधनों की खुदाई के कार्य में पारिश्रमिक की दर काफी अच्छी थी लेकिन महिलाओं को निम्न कार्यों की ओर ही धकेला गया।

14.3.2 महिलाओं का अलगाव

उद्योग को कमोबेश पुरुष के लिए माना जाता है। एक यह भी मान्यता है कि महिला और पुरुष समान प्रकृति के कार्य नहीं कर सकते। स्वतंत्रता के बाद संगठित क्षेत्र में श्रमिकों की मज़दूरी में वृद्धि होने से यह और भी प्रामाणिक हो गया। कार्य अवस्थाओं के नियमन और श्रमिकों की जीवन अवस्थाओं को सुधारने के लिए विभिन्न कानून है। इसमें कार्य के घंटे सीमित करने, न्यूनतम मज़दूरी, स्वास्थ्य सुविधाएं तथा सेवा निवृत्ति लाभ संबंधी कानून शामिल है। इसके साथ-साथ ट्रेड यूनियन आंदोलन की उत्पत्ति इस कानून के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करती है। ये सुधार वाली परिस्थितियां एक तरफ तो कार्य के लिए और अधिक अच्छा वातावरण प्रदान करती हैं दूसरी तरफ ये पुरुष और महिला के कार्य के बीच गहरा अंतर पैदा करते हैं। दूसरे शब्दों में जब कार्य स्थिति खराब थी जैसा कि औद्योगिकरण के आरंभिक समय में था तब पुरुष और महिलाओं को कम मज़दूरी वाले कार्य के रूप में बराबर माना जाता था। जब परिस्थितियों में सुधार होना आरंभ हुआ तो औद्योगिक कार्यों में पुरुषों का प्रभाव बढ़ने लगा और महिलाएं पिछड़ने लगी। औद्योगिक क्षेत्र में महिलाओं का वियोजन आरंभ हो गया और अपेक्षाकृत कुशल और अच्छी मज़दूरी वाले कार्य पुरुषों को दिए जाने लगे जबकि महिलाओं को कम मज़दूरी वाले कार्य दिए जाने लगे।

हम देखते हैं कि कार्य को लिंग भेद के आधार पर बांटा जाने लगा। उद्योगों में कम महत्वपूर्ण विभाग में महिलाओं को तैनात किया जाता। इसके अतिरिक्त अधिकांश बड़े उद्योगों में जहां पर पुरुष और महिलाओं को तैनात किया जाता वे एक दुकान, या विभाग में एक साथ कार्य नहीं करते। औषधि उद्योग में महिलाओं को वस्तुओं की पैकिंग और लेबल लगाने वाले विभाग में रखा जाता है। बिजली और इलैक्ट्रानिक उद्योग में महिलाओं को एसेम्बली के कार्य में लगाया जाता है जबकि इंजीनियरी कार्यों में पुरुषों का एकाधिकार है। महिलाओं को दिया जाने वाला कार्य न केवल थकाने वाले और अरुचिकर होता अपितु उसमें उनके लिए पदोन्नति के अवसर कम या बिल्कुल नहीं होते।

14.3.3 मशीनीकरण का प्रभाव

भारत में 1974 में महिलाओं की स्थिति पर गठित समिति ने देखा कि महिला श्रमिकों से कार्य छूटने का मुख्य कारण मशीनीकरण है। पिछले भाग में हमने देखा कि कम महत्वपूर्ण और थकाने वाले कार्य महिलाओं द्वारा किए जाते हैं।

शारीरिक श्रम से जीवन याचना। क्या किसी तरह की कार्यविधि कोई सहायता कर सकती है।
सौजन्य : वी. किरणमई, इग्नु, नई दिल्ली

ये कार्य महिलाओं के स्थान पर मशीनों द्वारा किए जा सकते हैं। अधिकांश मामलों में ये मानव द्वारा ही किए जाते हैं क्योंकि इस तरीके से कार्य कराना सस्ता पड़ता है। फिर भी जैसे ही मज़दूरी बढ़ी नियोक्ता को श्रमिक के स्थान पर मशीने लगाना सस्ता लगा। इससे कम मज़दूरी वाले क्षेत्रों में महिलाओं के रोज़गार समाप्त हो गए। उदाहरण के लिए औषधि उद्योग में और विशेषत: बड़ी कंपनियों में पैकिंग और लेबल लगाने वाले कार्य मशीनों से किये जाने लगे है। इलैक्ट्रानिक उद्योग में एसेम्बली के कार्य का भी मशीनीकरण हो गया। इस प्रकार मशीनीकरण के कारण जो महिलाएं फालतू हो गई उन्हें उद्योग के दूसरे भागों में नहीं लगाया गया। महिलाओं के वियोजन के लिए यह कारण मुख्य रूप

से जिम्मेदार है। न तो महिलाओं को प्रशिक्षित किया गया और न ही उन्हें किसी दूसरे विभाग में कार्य दिया गया।

मशीनीकरण के कारण महिलाओं का उद्योग तथा जीवन-चर्या से भी वियोजन होने में एक पूर्वागृह है। हमारा विश्वास बन गया है कि महिलाएं केवल हाथ से अच्छा कार्य करती है। वे बार-बार किया जाने वाला कार्य पुरुषों की अपेक्षा बहुत अच्छा करती है क्योंकि उनमें धैर्य होता है। हम इस तथ्य को कभी नहीं समझते कि हाथ की अपेक्षा मशीन से काम करना सरल है। इसलिए यदि महिलाएं हाथ से अच्छा कार्य कर सकती है तो वे मशीनों को संभालने में सक्षम क्यों नहीं हो सकतीं?

14.3.4 उद्योगों का सिमटता स्वरूप

पिछले दो दशकों से बड़ी औद्योगिक इकाइयां अपनी उत्पादन इकाइयों का परिमाण कम कर रही हैं। यह प्रवृत्ति 1980 के दशक के आरंभ में चली और 1985 के बाद इसमें तेजी आ गई जब पहली बार उदारीकरण की नीति बनाई गई। औद्योगिक इकाई को सीमित करने का वास्तविक अर्थ है औद्योगिक उत्पादन कम कर श्रमिक बल को कम करना। अनेक औद्योगिक इकाइयां इसी प्रक्रिया में हैं। ये इकाइयां मुख्यत: निजी क्षेत्र में है। उसी समय इन इकाइयों वाली कंपनियों का उत्पादन काफी बढ़ गया। इस प्रकार एक तरफ तो निजी क्षेत्र की बड़ी कंपनियों की उत्पादन इकाइयों का आकार कम हो रहा था दूसरी तरफ उत्पादन बढ़ रहा था। यह कैसे संभव हुआ? आइए इसकी जांच करें तथा निष्कर्ष पर पहुंचे।

अपने अनुभव से सीखें – 1

विभिन्न उद्योगपतियों से बात करें तथा पता लगाएं कि किन परिस्थितियों में उन्हें अपनी इकाई का आकार कम करना पड़ा। मानवीय समस्याओं जैसे बेरोजगारी में भी गहराई से जाएं कि इससे कितनी बेरोजगारी बढ़ेगी। अपने निष्कर्ष नोटबुक में लिखें।

अपनी लागत को कम करने तथा लाभ में वृद्धि करने के लिए बड़ी कंपनियों ने अपना उत्पादन कार्य लघु औद्योगिक क्षेत्र में छोटी इकाइयों को भेज दिया। ये लघु उद्योग बड़ी इकाइयों के लिए प्राय एक समझौते के अंतर्गत वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। ये लघु उद्योग वस्तुओं को बनाते हैं परंतु पहले से तय किए मूल्य पर इन्हें बड़ी इकाइयों को बेचना पड़ता है। इन वस्तुओं का मूल्य बड़ी इकाइयों में उत्पत्ति वस्तुओं के मूल्य से अपेक्षाकृत काफी कम होता है। इस तरीके से बड़ी कंपनियां लागत कम करने से काफी लाभ प्राप्त करती है। अधिकांश मामलों में इन वस्तुओं का खुदरा मूल्य कम नहीं होता क्योंकि व्यक्ति उन्हें उनके ब्रांड नाम से खरीदते है।

यह प्रणाली उपभोक्ता वस्तु उद्योग में व्यापक रूप से प्रचलित है। अधिकांश प्रसिद्ध कपड़े की कंपनियों द्वारा बेचा जाने वाला कपड़ा भिलाही, इच्चालकरण तथा महाराष्ट्र में शोलापुर में पावरलूमों में तैयार होता है न कि कंपनियों के कपड़ा उद्योगों में प्रसिद्ध कंपनियों द्वारा बेचे जानें वाले अधिकांश जूते वास्तव में लघु औद्योगिक क्षेत्र में तैयार किए जाते हैं। इसी प्रकार प्रसिद्ध कंपनियों के साबुन, कपड़े धोने के पाउडर, सौन्दर्य प्रसाधन मुख्यत: लघु औद्योगिक इकाइयों में तैयार किए जाते हैं।

मशीनीकरण सहित इन परंपराओं के कारण बड़े औद्योगिक क्षेत्र में श्रमिकों का रोज़गार कम होता जा रहा है। चूंकि इस क्षेत्र में नौकरियां कम हो रही है अत: सर्वप्रथम महिलाओं को अलग किया गया क्योंकि

विश्वास किया जाता है महिलाओं की आय अपने पुरुषों की आय का पूरक है। परिवार में पति को हमेशा मालक माना जाता है चाहे पत्नी की आय उससे अधिक हो। अत: यह अनुभव किया जाता है कि यदि नौकरियों का संरक्षण किया जाता तो प्राथमिकता पुरुषों की नौकरियों को दी जाए। सभी संबंधित सरकार, नियोक्ता तथा यहां तक कि ट्रेड यूनियन भी इसी विचारधारा को मानते हैं। वास्तव में ट्रेड यूनियनें स्थानीय स्तर पर इस विचार को प्रस्तुत करती है कि यदि नौकरियां कम है तो प्राथमिकता पुरुषों को दी जानी चाहिए क्योंकि वह परिवार की पूर्ति करने वाला है। इस पर हम बाद वाले भाग में और विस्तार से चर्चा करेंगे। इस प्रकार जब कभी श्रमिक बल में कमी की जाती है तो सर्वप्रथम महिलाओं को अलग किया जाता है।

14.3.5 उद्योगों का स्थान परिवर्तन

बड़े उद्योग अपने उद्योग का आकार कम करने और उत्पादन को कम करने के अतिरिक्त जैसा कि ऊपर बताया गया है कर राहत प्राप्त करने के लिए एक और तरीका भी अपनाते है। यह उद्योग का स्थान बदलने के द्वारा किया जाता है।

देश में औद्योगिकरण के प्रक्रिया में 1850 के दशक में इसके आरंभ से ही पता लगता है कि उद्योग शहरी औद्योगिक केंद्रों पर ही एकत्रित हो गए। आरंभ में उद्योग बंदरगाह नगर मुंबई (बंबई) कलकत्ता और चेन्नई (मद्रास) में ही फैले। 1947 में देश की आजादी के समय अधिकांश उद्योग इन तीन नगरों में स्थापित हुए तथा उस समय वहां काफी वृद्धि हुई और ये महानगर बन गए। 1950 के दशक के मध्य के दौरान सरकार ने उद्योगों के विकेन्द्रित करने का प्रयास किया ताकि इसी प्रकार देश के अन्य भागों में भी उद्योग फैले।

सरकार ने अपने बड़े सार्वजनिक उद्योग कम विकसित क्षेत्रों में स्थापित किए। जल्दी ही इन क्षेत्रों में लघु उद्योग भी पनपने लगे। इन उद्योगों ने सहायक के रूप में कार्य किया। इसका अर्थ है कि वे बड़े उद्योगों को छोटे-छोटे हिस्से, पुर्जों की आपूर्ति करने लगे इस प्रकार ऐसे अनेक नगर इन पर्याप्त रूप से बड़े औद्योगिक केंद्रों पर विकसित हो गए। बिहार में रांची और बोकारो, मध्य प्रदेश में भिलाई तथा उड़ीसा में राउरकेला इस प्रकार के शहरी औद्योगिक विकास के कुछ उदाहरण है।

फिर भी निजी क्षेत्र में बड़े औद्योगिक क्षेत्र ने इस पद्धति का पालन नहीं किया। उन्होंने पारंपरिक शहरी केंद्रों को प्राथमिकता ही दी। केवल 1980 के दशक के बाद से ही महानगरी केन्द्रों से इनका स्थानान्तरण होने लगा। मुंबई और कलकत्ता जैसे शहरों से उद्योगों ने दूसरे क्षेत्रों में जाना आरंभ किया।

इसके लिए पिछले चरण की वृद्धि या उद्योगों के विस्तार का एक कारण यह था कि उद्योगों की उत्पत्ति या विस्तार को लाइसेंस प्रणाली के माध्यम से नियंत्रित किया गया। नए उद्योगों के लिए सरकार से लाइसेंस लेने अनिवार्य किए गए। इस प्रणाली के अंतर्गत औद्योगिक घराने के लिए पारंपरिक औद्योगिक केंद्रों से दूर नया उद्योग लगाना आसान हो गया। फिर भी किसी औद्योगिक घराने के लिए एक विद्यमान उद्योग को बंद कर दूसरे स्थान पर ले जाना संभव नहीं था। दूसरे शब्दों में औद्योगिक कंपनियां नए उद्योगों को तो अन्य स्थानों पर स्थापित कर सकती थी लेकिन विद्यमान उद्योग को दूसरे स्थान पर नहीं ले जा सकती थी।

1985 के बाद सरकार ने लाइसेंस देने की प्रणाली को उदार बनाना आरंभ किया। इसने उद्योगों के

स्थानांतरण को आसान बना दिया। कुछ राज्यों ने उद्योगों को अतिरिक्त प्रोत्साहन देना आरंभ कर दिया जैसे बिक्री कर और राज्य उत्पादन शुल्क में पांच वर्ष के लिए छूट, भूमि और अन्य सुविधाएं जैसे बिजली, पानी आदि को कम दर पर उपलब्ध कराना। यह पाया गया कि कई बड़े उद्योग जो बड़े शहरी केंद्रों जैसे मुंबई, चेन्नई और कलकत्ता में थे, अपनी औद्योगिक इकाइयां बंद कर नए क्षेत्रों में जाने लगे। मुंबई में बहुराष्ट्रीय निगमों ने अपने कई औषधि उद्योगों को बंद कर दिया और नई इकाइयों को छोटे स्थानों में स्थापित किया। उदाहरण के लिए, फाइजर, रोकी तथा हुमस तीन बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अपने उत्पादन का बड़ा हिस्सा गुजरात के छोटे नगरों में स्थानांतरित कर दिया। इसी प्रकार बहुत सी इंजीनियरी की कंपनियों ने अपने उद्योगों को छोटे औद्योगिक केंद्रों पर स्थानांतरित कर दिया। 1985 और विशेषत: 1991 के बाद इस प्रक्रिया में बड़ी तेजी आई। 1991 की सरकार की औद्योगिक नीति घोषणा में अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के लिए नई नीति के मानदंड निर्धारित किए गए। इसमें अधिकांश उद्योगों से लाइसेंस प्रणाली को समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार इससे उद्योगों का मुक्त स्थानांतरण संभव हो गया।

अधिकांश उद्योग ग्रामीण क्षेत्रों या छोटे नगरों में चले गए। बड़े शहरी केंद्रों में उद्योग बंद हो गए। अत: इन उद्योगों में कार्यरत महिलाओं की नौकरी छूट गई। यह औषधि उद्योग में अत्यधिक महसूस किया गया क्योंकि इन उद्योगों में महिला श्रमिकों को नियुक्तियां दी जाती थीं।

क्या आप जानते हैं? [illegible]

नए औद्योगिक क्षेत्रों में महिला श्रमिकों को रोजगार नहीं दिया जाता। इन उद्योगों में जहां ये स्थित हैं उसके आस पड़ोस अर्थात उस गांव या छोटे नगर से श्रमिकों को नहीं रखा जाता। श्रमिकों को विभिन्न स्थानों से लिया जाता है जो कई मील दूर हो सकते हैं। इन क्षेत्रों में महिलाएं कार्य के लिए लंबी यात्रा करना पसंद नहीं करतीं। इसके अतिरिक्त हो सकता है कि कार्य के लिए उपलब्ध महिला के पास उस नौकरी के लिए वांछित शैक्षणिक योग्यता न हो। अधिकांश उद्योग नई तकनीक का इस्तेमाल करते हैं जो पहले स्थानों पर प्रयुक्त तकनीक से अधिक उन्नत है। अत: हमने देखा कि उद्योगों के स्थानान्तरण से पारंपरिक औद्योगिक केंद्रों से महिलाओं की नौकरियां समाप्त हो गई क्योंकि ये उद्योग बंद हो गए और नए औद्योगिक केंद्रों में जहां पर ये स्थापित हुए उन्हें नियुक्त नहीं किया गया।

14.4 संरक्षणकारी कानून और उनका कार्यान्वयन

भाग 14.3 में हमने बताया कि किन कारणों से संगठित क्षेत्र से महिलाओं के रोजगार में कमी हो रही है। इनमें से कुछ कारण देश में औद्योगिकरण की प्रकृति का परिणाम था। इन कारणों का चाहे वे पुरुष हों या महिलाएं सभी पर प्रभाव पड़ा। मशीनीकरण, आकार घटाना तथा उद्योगों के स्थानांतरण के कारण संगठित क्षेत्र में श्रमिक बल के सभी वर्गों की नौकरियां कम हो गई। फिर भी इन मामलों में हम देख सकते हैं कि विभिन्न सामाजिक कारणों से महिलाओं की नौकरियां तेजी से कम हुई। जब कभी नौकरियों में सामान्यत: कमी की जाती है तो महिलाओं की नौकरियां पहले कम की जाती है क्योंकि यह अनुभव किया जाता है कि महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों को नौकरियों की अधिक जरूरत होती है।

महिला श्रमिक बल की सहायता के लिए कई कानून बनाए गए हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण है महिलाओं के लिए सुरक्षा कानून। अगले भाग में हम समीक्षा करेंगे कि कहां तक ये कानून वास्तव में महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करते हैं। हम इस संदर्भ में सरकार तथा ट्रेड यूनियनों की भूमिका की भी जांच करेंगे

क्योंकि दोनों ही हमारे देश में कार्य और कार्य परंपराओं के निर्धारण और नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

14.4.1 रात्रि में कार्य तथा भूमिगत कार्य

भाग 4.3.1 में हमने विभिन्न प्रकार के सुरक्षा कानूनों का वर्णन किया है जैसे कार्यवधि के नियंत्रण की सुरक्षा सभी श्रमिकों को प्रदान की गई है। दूसरे कानून जैसे रात को तथा खनन कार्य से महिलाओं का बचाव केवल महिलाओं पर लागू होता है। हमने देखा कि ये कानून महिलाओं को सुरक्षा तो प्रदान करते है लेकिन उनकी नौकरियों को भी जोखिम में डालते है।

इन कानूनों के बारे में मुख्य तथ्य यह है कि ये कानून महिलाओं से पूछे बिना कि क्या वे वास्तव में रात को या खनन कार्य करना नहीं चाहती, लागू किए गए। यह मान लिया गया कि रात को महिलाओं का कार्य करना ठीक नहीं है। यह विश्वास किया गया कि रात की पाली में महिलाओं द्वारा कार्य करने से घर और बच्चों की देखभाल में कठिनाई होगी। यह भी माना गया कि कि रात को घरों से आना या जाना भी उनके लिए सुरक्षित नहीं है। खानों के मामले में निर्णय लिया गया कि खनन कार्य करना महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

यदि हम ध्यान से इन कारणों पर गौर करें तो पता लगेगा कि ये बहुत युक्ति संगत नहीं है। प्रथम हमें पता लगा कि महिला श्रमिकों के लिए सुरक्षा का प्रश्न औद्योगिकरण विकास के विशेष समय में पैदा हुआ। औद्योगिकरण की आरंभिक अवस्था में जब मज़दूरी बहुत कम थी तब महिला श्रमिकों की समस्याओं के बारे नहीं सोचा गया। इन मामलों को तभी उठाया गया जब मज़दूरी बढ़ना आरंभ हुई। यह बात सामने आई कि महिलाओं को मज़दूरी वाले रोज़गार से हटाया गया तभी इन मामलों का महत्व समझा गया। परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में महिलाओं की नौकरियां समाप्त होने लगी। तर्क दिया जा सकता है कि उस समय खदानों में मज़दूरी बढ़ रही थी तथा उद्योगों में तकनीक का भी विकास हो रहा था। इसका अर्थ है कि मज़दूरों को मज़दूरी अधिक मिल रही थी और श्रमिकों को हटाकर नई तकनीक लाई जा रही थी। इस स्थिति में व्यक्तिगत श्रमिकों, उद्योगों और खदाने में आवश्यकता कम हो रही थी। ऐसी स्थिति में महिला श्रमिकों को कम करने की आवश्यकता को सिद्ध करना था ताकि रोज़गार प्राप्त करने के लिए पुरुष अच्छे अवसर के लिए तैयार हो सकें। यह न्याय महिलाओं के लिए सुरक्षा कानून के रूप में आया।

हमने यह तर्क देने का प्रयास किया कि महिला श्रमिकों के लिए सुरक्षा कानून महिलाओं को रोज़गार से रोकने के लिए बना न कि उन्हें सुरक्षा प्रदान करने के लिए। यह तर्क और भी वैध हो गया जब हमने यह देखा कि कुछ नौकरियों जैसे नर्सिंग, ऐयर होस्टेस आदि में महिलाएं रात को कार्य करती है और इन नौकरियों में कोई प्रतिबंध नहीं है। तब प्रश्न यह है कि यदि महिलाएं रात को एयर होस्टेस तथा नर्स का कार्य कर सकती है तो उसी प्रकार वे उद्योगों में क्यों नहीं कार्य कर सकती?

क्या आप जानते है? 3

खनन कार्यों में भी हमने विपरीत स्थितिया देखी है। पहले भी देखा गया है कि 1929 से महिलाओं पर खनन कार्य पर प्रतिबंध लगाया गया क्योंकि इस तरह का कार्य उनके लिए अच्छा नहीं माना गया। कुछ साल बाद 1936 में दूसरे विश्व युद्ध के दौरान यह प्रतिबंध हटा दिया गया तथा महिलाओं को खनन कार्य के लिए प्रोत्साहित किया जाने लगा। यह इसलिए हुआ कि युद्ध के कारण कोयले की

माग अचानक बढ़ गई तथा उत्पादन को बढ़ाने के लिए अधिक श्रमिकों की आवश्यकता थी। फिर भी जब युद्ध समाप्त हुआ तो कोयले की माग गिरने के कारण प्रतिबंध पुन: लगा दिया गया।

उपरोक्त उदाहरण दर्शाते हैं कि संगठित क्षेत्र में महिला रोज़गार के मामले में दोहरे मानदंड अपनाए गए। यदि महिलाएं रात को कुछ व्यवसाय कर सकती हैं तो वे उद्योगों में रात वाली नौकरी में कार्य क्यों नहीं कर सकती? इसी प्रकार, जब मांग बढ़ने पर वे खनन कार्य कर सकती है तो रात्रि में कार्य क्यों नहीं कर सकती? इसके अतिरिक्त महत्वपूर्ण बात यह है कि स्वयं महिलाओं से कभी नहीं पूछा गया कि क्या वे उद्योगों में रात को तथा खनन कार्य करना चाहेंगी। ये निर्णय एक पुरुष प्रधान समाज द्वारा लिए गए। उपरोक्त मामलों में यदि महिलाओं से फैसला करने के लिए कहा जाता तो संभव है कि उनमें से बहुत सी महिलाएं उद्योगों और खदानों में अच्छी आय वाली नौकरी छोड़ने की अपेक्षा उद्योगों में रात को तथा खदानों में कार्य करना अच्छा समझती।

14.4.2 प्रसूति अवकाश और बाल देखभाल

आइए अब हम दूसरे सुरक्षा कानूनों की जांच करें जिनके कारण महिला श्रमिकों के रोज़गार में गिरावट आई। ये कानून प्रसूति लाभ एवं बच्चों के लिए बाल गृह से संबंधित थे। हमने पहले देखा है कि इन कानूनों ने अतिरिक्त खर्च के कारण नियोक्ताओं को महिला श्रमिकों को कार्य देने में इच्छुक बना दिया। इसी प्रकार श्रमिक कल्याण और सामाजिक सुरक्षा से संबंधित अन्य कानूनों ने भी नियोक्ताओं के लिए श्रम लागत बढ़ा दी। कुछ श्रमिक कल्याणकारी उपायों के अंतर्गत अधिकांश बड़े उद्योग कैंटीन में घटी दर पर भोजन, छुट्टी यात्रा भत्ता, मुफ्त या कम दर पर चिकित्सा सुविधाएं आदि प्रदान करते हैं। यदि नियोक्ता इनमें से किसी सुविधा को कम या समाप्त करना चाहता है तो ट्रेड यूनियनें कठोर संघर्ष करती हैं। लेकिन जब महिलाओं के लिए सुविधा देने की बात आती है तो हम देखते है कि ट्रेड यूनियनों में वैसी भावना नहीं होती। पुन: पुरुष झुकाव ट्रेड यूनियनों में आ जाता है। इस प्रकार वे वास्तव में नियोक्ता के पुरुष झुकाव को ही स्थापित करती है।

गैर संगठित क्षेत्र में महिला श्रमिक क्या उन्हें बाल देखभाल वे सुविधाएँ उपलब्ध कराते हैं?
सौजन्य : देबल सिंघराय, इग्नू, नई दिल्ली

संगठित क्षेत्र में महिलाएँ

कार्य स्थल पर बच्चों की देखभाल की सुविधा के अभाव से महिला कर्मचारियों पर अत्यधिक बोझ रहता है। चूंकि बच्चों की देखभाल करना महिला की जिम्मेदारी माना जाता है अत: जब बच्चे छोटे विशेषत: स्कूल जाने से पूर्व आयु के होते है तो उन्हें बहुत त्याग करना पड़ता है। बहुत से मामलों में इस सुविधा के न होने से महिलाओं को नौकरी छोड़नी पड़ती है। इस समस्या को दूर करने का एक उपाय है कि सभी पुरुष या महिला कर्मचारियों के बच्चों के लिए बालगृह बनाना अनिवार्य कर दिया जाए। यह सुविधा सभी श्रमिकों के लिए हो न कि केवल महिलाओं के लिए।

14.5 महिला रोजगार का भविष्य

उपर्युक्त भागों में की गई चर्चा से स्पष्ट है कि संगठित क्षेत्र से महिला रोजगारों में कमी मुख्यत: आर्थिक तथा सामाजिक कारणों से होती है। महिलाओं को कम मजदूरी और कम तकनीक में पर्याप्त संख्या में रोज़गार मिलता है। जैसे निपुणता और तकनीक में वृद्धि होती है और उत्पादकता में वृद्धि के कारण मज़दूरी में वृद्धि होती है ऐसे व्यवसायों से महिलाओं को हटा दिया जाता है। जब श्रमिक बल में कमी की जाती है तो नियोक्ता का अनिवार्यत: लक्ष्य महिला ही होती है। ट्रेड यूनियनें और सरकार इस बात का गंभीरता से विरोध करती नजर नहीं आती कि नौकरियां पुरुषों के लिए अधिक महत्वपूर्ण है।

अपने अनुभवों से सीखें 2

संगठित क्षेत्र में महिला श्रमिकों से बात करें। विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में नई तकनीक के आने के बारे में वे कैसा महसूस करती हैं। क्या इससे उन्हें कोई डर है? क्या वे यह महसूस करती है कि इन परिवर्तनों से उनका सशक्तिकरण हो जाएगा।

इस विषय का एक और महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि न तो नियोक्ता, न ही ट्रेड यूनियनें और सरकार प्रत्यक्ष रूप से इस बात को नहीं मानते कि रोजगार महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों के लिए महत्वपूर्ण है। यह भरपूर पक्षपात है। अत: विभिन्न प्रकार के प्रबंध तथा महिलाओं को नौकरी देने से इंकार करना उन कारणों में एक है कि औद्योगिक नौकरियों ने महिलाओं और उनके परिवारों पर बहुत तनाव डाल दिया जो उनके लिए तथा भविष्य में समाज के लिए काफी हानिकारक होगा। यह इस विश्वास से उपजता है कि महिला का प्रथम स्थान घर है और बलहीन होने के कारण उसे संपूर्ण सुरक्षा की आवश्यकता होती है। फिर भी हमने पहले देखा है कि जब महिलाएं निम्न तकनीक के अंतर्गत तथा कम मज़दूरी में कार्य करती थीं ऐसे कोई प्रबंध नहीं किए गए थे। इस लिए हम निष्कर्ष निकाल सकते है कि महिलाओं के रोजगार में हुई कमी पूर्वाग्रह का परिणाम है न कि वैज्ञानिक तर्क पर आधारित है।

अगला प्रश्न यह है कि महिला रोजगार का भविष्य क्या है? महिलाएं किस प्रकार का कार्य करेंगी? अभी तक इसका उत्तर एक समान है। यदि हम वर्तमान रोजगार को देखें तो पता लगेगा कि असंगठित क्षेत्र में महिलाओं की संख्या में वृद्धि हो रही है। असंगठित क्षेत्र में श्रमिकों का एक तिहाई श्रमिक महिलाएं है। इस प्रकार यदि महिलाओं को रोजगार प्राप्त करना है तो उन्हें कम मजदूरी, असुरक्षित असंगठित क्षेत्र में जाना होगा। यह पक्ष विस्तृत रूप से अन्य इकाई में वर्णित किया जा चुका है अत: इस पर इस इकाई में अधिक विस्तार में नहीं जाएंगे।

इस पर विचार करें–2

आप क्यों सोचते है कि नियमित औद्योगिक क्षेत्र में महिलाओं के कार्य अवसर कम हो रहे है? इस प्रवृत्ति को रोकने और समीक्षा के लिए क्या साधन और उपाय किए जा सकते हैं। अपनी टिप्पणियां और सुझाव नोटबुक में लिखें।

यद्यपि नियमित औद्योगिक क्षेत्र में महिला कर्मियों के रोज़गार के अवसर कम हो रहे है तो भी हमें इसकी जांच और रोकने के प्रयास करने चाहिए। नियोक्ताओं और सरकार को यह अनुभव करना चाहिए कि पुरुषों और महिलाओं में कोई अंतर नहीं होता। यह एक असीम कार्य नहीं है। समाज का नज़रिया बदलने में बहुत समय प्रयास की आवश्यकता होती है। इस पूर्वाग्रह को रोकने के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण तरीका हो सकती है। इन पूर्वाग्रहों को रोकने के लिए स्कूलों और विशेषत: प्राइमरी स्कूलों के पाठ्यक्रमों में परिवर्तन की आवश्यकता है। बच्चों को सिखलाया जाना चाहिए कि कार्य में पुरुष और महिलाओं में कोई अंतर नहीं है तथा बच्चों एवं घर की देखभाल करना दोनों के लिए आवश्यक है। जन प्रचार विशेषत: फिल्में भी इस विषय पर महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। राजनीतिज्ञों एवं अधिकारियों को महिला के मामले में संवेदी होना चाहिए। महिला कर्मचारियों के प्रति नज़रिया बदलने के लिए ट्रेड यूनियनें सही मंच है। ट्रेड यूनियनों के लिए जरूरी है कि वे महिला श्रमिकों की समस्याओं को उठाएं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण समस्या है महिलाओं के रोज़गार की समस्या। इसका आरंभ ट्रेड यूनियनों में महिलाओं को काफी संख्या में शामिल करके किया जाए। ट्रेड यूनियनों को महिला श्रमिकों के लिए एक प्रकोष्ठ स्थापित करना चाहिए जहां पर विशेष समस्याओं को उठाया जा सके। यह सुझाव इसलिए दिया जाता है क्योंकि सामान्य ट्रेड यूनियन मंच पर जब महिलाओं की समस्या पर चर्चा होती है तो उन्हें अधिक महत्व नहीं दिया जाता। यह एक सरल समाधान दिखाई देता है जहां पर महिला श्रमिकों की समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करने में सहायता मिलेगी। फिर भी यह सरल उपाय भी अधिकांश विद्यमान यूनियनों द्वारा नहीं अपनाया जाता है। ज्यादातर यूनियनें अपने ऊपर बिना किसी राजनैतिक झुकाव के महिला श्रमिकों की समस्याओं को कार्य और रोज़गार की सामान्य समस्या के रूप देखती हैं। वे इसे कोई विशेष समस्या नही मानती। इसके विशिष्ट आयाम हैं।

इस प्रकार हालात को देखते हुए हम निष्कर्ष निकाल सकते है कि संगठित औद्योगिक क्षेत्र में महिलाओं का भविष्य उज्जवल नहीं है। यह महिलाओं की कुछ परंपरागत समस्याओं के कारण नहीं है अपितु व्यापक पुरुष प्रधान समाज के पूर्वाग्रहों के कारण हैं। इन समस्याओं पर समाज के सभी वर्गों और विशेषत: ट्रेड यूनियनों द्वारा समस्या को वास्तविक रूप में देखा जाए तो इन पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

14.6 सारांश

इस इकाई में हमने संगठित औद्योगिक क्षेत्र में महिलाओं के रोज़गार कम होने के कारणों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। भूतकाल में इस क्षेत्र में महिलाओं का अच्छा प्रतिशत रोज़गार में था लेकिन पिछले 50 वर्ष के आसपास महिला रोज़गार में अत्यधिक गिरावट आई है। हमने यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि रोज़गार में गिरावट के जो कारण बताए जा रहे हैं वे उचित नहीं है। असलियत यह है कि पुरुष प्रधान समाज में यह माना जाता है कि सभी अच्छी नौकरियां पुरुषों को मिलनी चाहिए। अत: महिलाओं के साथ विभिन्न प्रकार से पक्षपात किया गया है। हमने यह दर्शाया है कि यद्यपि इनमें से अधिकांश कारण उचित बताए गए हैं तो भी इन्हें आसानी से चुनौती दी जा सकती है। संक्षेप में हमने यह प्रस्तुत करने की कोशिश की है कि पुरुषों और महिलाओं दोनों को औद्योगिक नौकरियां प्राप्त करने

के समान अवसर मिलने चाहिए। यह समझना गलत है कि औद्योगिक नौकरियों के लिए पुरुष अधिक सक्षम हैं।

14.7 शब्दावली

डाउन साइजिंग	:	किसी औद्योगिक संचालन के परिमाप को कम करना।
लेजिसलेशन	:	क़ानून के अंतर्गत आने वाले सभी नियम और विनियमन जो सभी पर लागू होते हैं।
मैकेनाइजेशन	:	श्रमिकों के स्थान पर मशीनों की संख्या बढ़ाना।
संगठित क्षेत्र	:	करार के आधार पर श्रमिकों को वेतन के आधार तैनात करने वाले निर्माण उद्योग
सेगरेशन	:	अलग रखना – उद्योग के संदर्भ में पुरुषों और महिलाओं को अलग रखना।

14.8 उपयोगी पुस्तकें

हिरवे इंदिरा, 1987 *रिव्यू पेपर आन एंटी पावर्टी प्रोग्राम्स आन विमेन*, नेशनल कमीशन ऑन सेल्फ एंप्लायड विमेन, गवर्नमेंट आफ इंडिया

जैन, गौतम, 1988 *विमेन ई.डी.पी; न्यू एप्रोच*, इ.पी.आई. इंडिया अहमदाबाद।

इकाई 15 रोपण कार्य में रत महिला श्रमिक

रूपरेखा

15.0 लक्ष्य और उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 रोपण (बागान) उद्योग
  15.2.1 रोपण की परिभाषा
  15.2.2 रोपण श्रमिक का आकार व विशेषताएँ
  15.2.3 श्रमिकों की भर्ती
15.3 लिंग-भेद का स्वरूप
  15.3.1 परिवार आधारित रोज़गार और मज़दूरी
  15.3.2 कार्यस्थल पर लिंग-भेद
  15.3.3 महिलाएँ और मज़दूर संघ
15.4 लिंग संवेदनशीलता की ओर
  15.4.1 लिंग अलगाव को समाप्त करना
  15.4.2 मज़दूर संघों में प्रतिनिधित्व
  15.4.3 शिक्षा की भूमिका
15.5 सारांश
15.6 शब्दावली
15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में हम रोपण/बागान कार्यों में रत महिला श्रमिकों की समस्याओं पर चर्चा करेंगे। इकाई का प्रारंभ हम इस उद्योग से आपको परिचित करवाते हुए करेंगे। इसके पश्चात हम इस उद्योग की श्रम शक्ति के स्वरूप और महिला श्रमिकों की स्थिति पर चर्चा करेंगे और इस उद्योग में उनकी महत्ता को समझने का प्रयास करेंगे। मुख्य रूप से हम चाय बागन उद्योग पर ही चर्चा करेंगे चूंकि रोपण सेक्टर (क्षेत्र) में यह सबसे बड़ा उद्योग है। हम बताएंगे कि कम मज़दूरी ही मुख्य रूप से महिलाओं के रोज़गार के लिए उत्तरदायी है। इस प्रणाली में लिंग पर आधारित असमानता के स्वरूप का वर्णन हम अन्य भाग में करेंगे। महिला और पुरुष श्रमिकों के कार्य जीवन में असमानता लिंग-आधारित सामाजिक अमानताओं में प्रतिबिंत होती है। हम कार्य के संगठन में महिलाओं की भूमिका की समीक्षा करेंगे। इसके बाद, यह जानने के लिए कि मज़दूर संघों और श्रमिक आंदोलनों में शामिल होने के लिए कौन सी चीज उन्हें प्रोत्साहित करती है या रोकती है, हम मज़दूर संघों और श्रमिक आंदोलनों में महिलाओं की अंत:भाविता (शामिल होने) का अध्ययन करेंगे। अंत में, हम उन साधनों का पता लगाने का प्रयास करेंगे जिनके माध्यम से इन कार्यकर्ताओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुधारा जा सके। इस इकाई में हमने रोपण (बागान) के कार्य में रत महिला श्रमिकों की समस्याओं पर चर्चा की है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- जान सकेंगे कि रोपण क्या है और भारत में रोपण मज़दूर की क्या-क्या समस्याएं हैं;
- इस उद्योग में इतनी बड़ी संख्या में महिला श्रमिक क्यों नियोजित हैं, समझ सकेंगे;
- मज़दूरों के सामाजिक-जीवन में लिंग असमानताओं के बारे में और ये असमानताएं समाज के अन्य

वर्गों की असमानताओं से किस प्रकार भिन्न है, जान सकेंगे;

- मज़दूर संघ आंदोलन में महिलाओं के शामिल होने और सहभागिता दर को बढ़ाने या कम करने के लिए उत्तरदायी कारक कौन से हैं, यह जान सकेंगे; और
- इस उद्योग में लगी महिलाओं की स्थिति को कैसे सुधारा जा सकता है, यह भी जान सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

बागानों में कुल श्रम शक्ति का लगभग आधा भाग महिला श्रमिक हैं। संगठित सेक्टर में बागान उद्योग ही केवल एक ऐसा उद्योग है जहां श्रम दल में एक बड़ा भाग महिलाओं का है। यह उद्योग संगठित क्षेत्र के अंतर्गत इसलिए आता है क्योंकि असंगठित क्षेत्र की तुलना में इस क्षेत्र के मज़दूरों को रोज़गार संबंधी पर्याप्त सुरक्षा की भावना रहती है। इन पर संगठित सेक्टर से संबंधित सभी संगत कानून लागू होते है। इनमें औद्योगिक विवाद अधिनियम, न्यूनतम मज़दूरी अदायगी अधिनियम, उपदान (ग्रेच्युटी) और भविष्य निधि की अदायगी से संबंधी अधिनियम इत्यादि शामिल हैं। इसके अतिरिक्त इसमें रोपण श्रमिक अधिनियम भी आता है जो रोपण श्रमिकों की काम करने और जीवन-यापन की परिस्थितियों को नियंत्रित/व्यवस्थित करता है। यह अधिनियम काम के घंटे, आवास परिस्थितियों, चिकित्सा और शैक्षिक सुविधाओं तथा महिला मज़दूरों से संबंधित कुछ प्रावधानों को निर्धारित करता है। इसके अतिरिक्त, प्रसूति हितलाभ अधिनियम भी लागू होता है।

पिछले पाठ में हमने देखा कि संगठित क्षेत्र में महिला मज़दूरों की संख्या में उत्तरोत्तर कमी आई है। महिला श्रमिकों को प्रदत्त संरक्षी विधि-निर्माण महिला रोज़गार में कमी का एक प्रमुख कारण था। इस प्रकार, संरक्षी विधि-निर्माण के बावजूद, इस उद्योग में बड़ी संख्या में महिलाओं का काम करना यह दर्शाता है कि संगठित क्षेत्र में यह उद्योग अन्य उद्योगों से भिन्न है। वस्तुतः रोपण में कार्य करने वाली महिला मज़दूरों की संख्या सामूहिक रूप से इस क्षेत्र में नियुक्त कुल महिला मज़दूरों की एक तिहाई है।

15.2 रोपण (बागान) उद्योग

महिला मज़दूरों पर चर्चा प्रारंभ करने से पहले कुछ मूलभूत संकल्पनाओं को समझना बहुत जरूरी है। इस भाग में हम सबसे पहले रोपण को परिभाषित करेंगे और बाद में इस उद्योग की पृष्ठभूमि से परिचित कराएंगे। प्रस्तावना में वर्णित कारणों के कारण हमारी चर्चा का अधिकांश केंद्र बिंदु चाय बागान उद्योग होगा।

15.2.1 रोपण की परिभाषा

भूमि (संपदा) का एक बड़ा टुकड़ा जिस पर बिक्री के उद्देश्य से मात्र एक ही फसल उगाई जाती है, रोपण है। रोपण, एशिया, लैटिन अमरीका और अफ्रीका के ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाता हैं। इसके अंतर्गत चाय, कॉफी, चीनी, तम्बाकू, केला, कपास इत्यादि कुछ फसलें आती है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि किसी भी भूमि पर इन फसलों को उगाना रोपण है। इसमें महत्वपूर्ण है भूमि का आकार जिसमें यह फसलें उगाई जाती है। इस प्रकार, चीनी, तम्बाकू और केला छोटे किसानों द्वारा लगाए जाते है और इस तरह यह रोपण फसलों के अंतर्गत नहीं आती। दूसरे देशों में यही फसलें बड़ी संपदाओं पर उगाई जाती है, इसीलिए ये रोपण फसलें कहलाती हैं। रोपण की अन्य विशेषता है कि ये फसलें व्यावसायिक फसलें होती है अर्थात ये बेचने के लिए उगाई जाती हैं।

भारत में रोपण की कानूनी परिभाषा रोपण श्रमिक अधिनियम में दी गई है। इस परिभाषा के अनुसार पांच हेक्टेयर (पंद्रह एकड़) या उससे अधिक बड़ा भूमि का टुकड़ा जिसका प्रयोग चाय, काफी, सिंकोना, रबड़ या छोटी इलायची उगाने के लिए किया जाता है, रोपण है। इस प्रकार भारत में केवल इन पांच फसलों को ही रोपण फसलें माना गया है। इसके अतिरिक्त कम से कम पंद्रह व्यक्तियों का पिछले बारह महीनों तक दिन में कम से कम एक बार उस भूमि पर काम करना अनिवार्य है।

रोपन कार्य में रत महिला श्रमिक

15.2.2 रोपण श्रमिक का आकार व विशेषताएं

उपर्युक्त वर्णित पांच रोपण फसलों में लगभग 16 लाख मज़दूर काम करते हैं। इन फसलों में से चार फसलों - कॉफी, रबड़, सिकोना और छोटी इलायची, की खेती में एक साथ लगभग 6 लाख मज़दूर लगे हुए हैं।

चाय बगान श्रमिक

सौजन्य : प्रो० कपिल कुमार, इग्नू, नई दिल्ली

कॉफी कर्नाटक के कुर्ग क्षेत्र और तमिलनाडू के कुछ हिस्से में उगाई जाती है जबकि रोपण फसल के रूप में रबड़ और छोटी इलायची मुख्य रूप से केरल में उगाई जाती है। सिकोना केवल पश्चिम बंगाल की दार्जलिंग की पहाड़ियों में उगाया जाता है, इन रोपणों के काम में लगभग 15,000 मज़दूर लगे हुए हैं। दूसरी ओर, केवल चाय के ही उद्योग में लगभग 10 लाख श्रमिक कार्यरत है जिनमें से आधी महिला श्रमिक हैं। इस प्रकार रोपण उद्योग देश में सबसे बड़ा उद्योग है।

भारत में प्रतिवर्ष लगभग 75 करोड़ कि. ग्रा. चाय का उत्पादन होता है और यह विश्व में सबसे बड़ा चाय उत्पादक देश है। हमारे देश में चाय सर्वाधिक लोकप्रिय पेय है और भारत चाय का उपभोग करने वाला सबसे बड़ा देश है। इसके अतिरिक्त संगठित उत्पादन सेक्टर के अंतर्गत सबसे बड़ा नियोक्ता चाय उद्योग है। 1991 की जनगणना के अनुसार 70 लाख मज़दूर खानों, बड़ी बड़ी फैक्टरियों इत्यादि में

काम करते हैं। इस प्रकार इस सेक्टर में सात मज़दूरों में से एक मज़दूर चाय बागान मज़दूर है।

हमारे देश में चार ऐसे राज्य है जो चाय की खेती करते हैं। ये हैं असम, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडू और केरल। भारत में उत्पादित कुल चाय का लगभग आधा उत्पादन असम में होता है और यह देश का सबसे बड़ा चाय उत्पादक राज्य है। यहां लगभग 2,30,000 हेक्टेयर भूमि पर चाय की खेती होती है और प्रतिवर्ष 40 करोड़ कि. ग्रा. की पैदावार होती है। चाय बागान में काम करने वाले मज़दूरों की संख्या लगभग 5,60,000 है जिनमें से 2,55,000 महिलाएं है। चाय, राज्य के सभी ज़िलों में उगाई जाती है। असम के बाद अगला, स्थान पश्चिम बंगाल का है। जहां चाय का वार्षिक उत्पादन 16 करोड़ कि. ग्रा. है और एक लाख हैक्टेयर भूमि पर चाय की खेती होती है। इसके दो उत्तरी ज़िलों – जलपाइगुड़ी और दार्जलिंग में चाय की खेती होती है। राज्य में 2,58,000 स्थायी मज़दूर हैं जिनमें से 1,28,000 महिला मज़दूर हैं। तमिलनाडू देश का तीसरा बड़ा उत्पादक राज्य है जहां प्रतिवर्ष 11.6 करोड़ कि. ग्रा. चाय का उत्पादन होता है। इस राज्य में 49,000 हेक्टेयर भूमि पर चाय की खेती होती है जोकि कोयम्बटूर और नीलगिरि के दो पड़ोसी ज़िलों तक फैली हुई है। चाय बागान में कार्यरत कुल श्रम दलों की संख्या 1,14,000 है जिनमें से 63,000 महिलाएं हैं। देश में केरल चौथा बड़ा चाय उत्पादक राज्य है। चाय बागानों के अंतर्गत 37,000 हेक्टेयर भूमि है जो मुख्यत: इदुक्की ज़िले में है, जहां 6,6 करोड़ कि. ग्रा. चाय की पैदावार होती है और इस काम में 76,000 मज़दूर लगे हैं जिनमें से 42,000 महिला मज़दूर हैं। यदि हम चाय बागान में कार्यरत कुल श्रमदल को देखें तो हम पाएंगे कि महिला मज़दूरों की संख्या पुरुष मज़दूरों से लगभग 15,000 ज्यादा है। असम को छोड़कर सभी चाय उत्पादक राज्यों में पुरुष मज़दूरों की तुलना में महिला मज़दूरों की संख्या अधिक है।

विचार करें–1

आपके विचार में अधिकांश चाय उत्पादक राज्यों में महिला मज़दूरों की संख्या पुरुष मज़दूरों की तुलना में अधिक क्यों है। पुस्तिका में उत्तर लिखने से पूर्व इस भाग को दुबारा पढ़ें।

रोपण उद्योग की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है बाल श्रम का नियोजन। रोपण श्रमिक अधिनियम के अंतर्गत इसको सरकारी रूप से अनुमति प्रदान है। इस अधिनियम की धारा 2 (c) में चौदह वर्ष से कम आयु के पुरुष या महिला (चाहे वह कोई भी हो) बाल मज़दूर हैं। अधिनियम में रोज़गार की न्यूनतम आयु का उल्लेख नहीं है। हमें ध्यान में रखना होगा कि बच्चों के रोज़गार को नियंत्रित करने वाले 1985 के बाल श्रम उन्मूलन (संशोधित) अधिनियम में रोज़गार की न्यूनतम आयु 14 वर्ष अनुबद्ध है, लेकिन यह अधिनियम रोपण उद्योग पर लागू नहीं होता। इस प्रकार संगठित सेक्टर में रोपण ही केवल ऐसा उद्योग है जहां आधिकारिक तौर पर बाल श्रम की अनुमति है और रोज़गार की न्यूनतम आयु अन्य उद्योगों की तुलना में कम है।

15.2.3 श्रमिकों की भर्ती

आर्थिक प्रणाली के रूप में रोपण, उत्पादन संगठन का एक पृथक रूप है जो विशिष्ट सामाजिक संबंधों को जन्म देता है। ऐतिहासिक तौर पर, विश्व भर में रोपण, उपनिवेशवाद के उत्पाद थे और उनके उत्पाद मुख्य रूप से अधिक विकसित क्षेत्रों में निर्यात के लिए थे। रबड़ और सिंकोना रोपण जैसे कुछ मामलों में, वे उपनिवेशी देशों के लिए कच्चा माल प्रदान करने के लिए स्थापित थे। चाय, कॉफी और चीनी जैसे अन्य मामलों में, उनके बाजार विकासशील देशों में थे। इस प्रकार भारत पर ब्रिट्रिश शासन के दौरान चाय उद्योग की वृद्धि का मुख्य कारण ब्रिटेन में चीन की चाय की अपेक्षा भारतीय चाय की लोकप्रियता थी।

रोपणों के विकास के लिए दो मूलभूत आवश्यकताएं थीं। प्रथम बड़े भू-क्षेत्र और दूसरा बड़ा श्रमिक दल। तथापि, रोपण फसलों के लिए सर्वाधिक अनुकूल क्षेत्र दूर-दूर बसे हुए थे। इसीलिए रोपण स्वामियों को प्रारंभिक अवस्था में श्रमिकों की कमी का सामना करना पड़ता था। उन्हें रोपण स्थलों पर सही या गलत तरीकों से लाए गए श्रमिकों पर निर्भर करना पड़ता था। इस प्रकार अफ्रीका से आयातित दास-श्रमिकों से यू.एस.ए के दक्षिणी हिस्से में कपास रोपण का और केरीबियान में चीनी रोपण का काम लिया जाता था। बाद में जब 1848 में ब्रिटिश द्वारा दासता का उन्मूलन किया गया तब कुछ वर्षों तक इन रोपणों के लिए अनुबंधित श्रमिकों से काम लिया जाता रहा। मलेशिया में रबड़ रोपण, इंडोनेशिया में तम्बाकू और भारत व श्रीलंका में चाय रोपण के लिए इसी प्रणाली का अनुसरण किया जाता था। इन रोपणों की सामान्य विशेषता थी कि ये सभी आप्रवासी (बाहरी) श्रमिकों पर निर्भर थे। स्वामियों द्वारा इसका यही कारण बताया जाता था स्थानीय मज़दूर उपलब्ध नहीं होते।

रोपन कार्य में रत महिला श्रमिक

अपने अनुभव से सीखें-1

चाय के खुदरा विक्रेता/थोक विक्रेता/या आप्रवासी मज़दूर से संपर्क कर रोपणों में मज़दूरी से संबंधित समस्याओं को जानने का प्रयास कीजिए।

यदि हम श्रमिकों की कमी की समस्या पर नज़र डालें तो हम पाएंगे कि मज़दूरों की अनुपलब्धता आप्रवासी श्रमिकों को काम पर लगाने का कारण नहीं था। कम मज़दूरी के मद्देनज़र ही श्रमिक दूर दराज़ स्थानों से लाए जाते थे। मुंबई की सूती कपड़ा मिलों और कलकत्ता की पटसन मिलों को भी श्रमिकों की कमी का सामना करना पड़ा और इसलिए ज्यादा से ज्यादा लोगों को आकृष्ट करने और पहले से काम कर रहे मज़दूरों को रोक कर रखने के लिए उन्हें मज़दूरी बढ़ानी पड़ी। उदाहरण के लिए, 1860 के दौरान मुंबई की कपड़ा मिलों को मज़दूरों की कमी का सामना करना पड़ा। मज़दूरों को आकृष्ट करने के लिए, 1861 में मिल मालिकों ने मज़दूरी 7 रु. प्रति माह से बढ़ाकर 13.12 आने (75 पै.) कर दी। लेकिन असम के चाय बागानों में ऐसा नहीं हुआ। मज़दूरी की कमी के बावजूद मज़दूरी अत्यधिक कम - 3 रु. प्रति माह, बनी रही। वस्तुत: नज़दीकी क्षेत्रों के कृषि मज़दूरों को इससे ज्यादा मज़दूरी मिल रही थी। आइए जानें कि रोपणों में यह प्रणाली क्यों प्रचलित थी।

रोपण श्रम-प्रधान उद्योग है, जबकि कपड़ा या पटसन उद्योग पूंजी प्रधान हैं। अत: मज़दूरी लागतों को कम करने से बागान मालिकों को काफी लाभ होता है। प्रवासी श्रमिकों को रोज़गार प्रदान करने से बागान मालिकों को एक कम लागत वाली बंदी श्रम शक्ति की प्राप्ति सुनिश्चित हो जाती है। इसीलिए रोपणों में समग्र श्रमिक शक्ति आप्रवासी या उनके वंशजों की होती है । ये लोग दूर दराज़ के स्थानों से एकाकी क्षेत्रों में लाए जाते हैं जहां ये बाग लगाए गए थे। इससे यह सुनिश्चित हो जाता था कि एक बार बागानों में लाए गए श्रमिक आसानी से काम छोड़ कर वापिस नहीं जा सकते थे। उन्हें आसपास कही और अन्य काम नहीं मिल सकता था अत: वे मालिकों द्वारा नियत मज़दूरी पर बागानों में काम करने के लिए विवश थे।

हम पाते हैं कि असम के जलपाईगुड़ी जिले और दार्जीलिंग जिले के मैदानों के चाय बागानों में काम करने वाले मज़दूर मुख्य रूप से मध्य भारत के जनजातीय इलाकों – बिहार के छोटा नागपुर और संथाल परगना क्षेत्र और मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा में उसके समीपस्थ जनजातीय क्षेत्रों, से थे। दार्जीलिंग की पहाड़ियों में काम करने वाले मज़दूर नेपाल के आप्रवासियों के वंशज हैं। तमिलनाडू में भी मज़दूर दो चाय उत्पादक ज़िलों के मूल निवासी न हो कर आप्रवासियों (मजदूरों) के वंशज हैं। वे मुख्य तौर पर अनुसूचित जातियों के हैं। ये सभी मज़दूर बागान क्षेत्रों में स्थाई रूप से बसे हुए है। और इनका अपने

मूल स्थानों से या तो थोड़ा बहुत संपर्क है या कोई संपर्क नहीं है। प्रारंभिक अवस्थाओं में मज़दूरों की भर्ती परिवार - आधारित थी अत: बागानों के आसपास मज़दूरों के स्थायी रूप से बस जाने का यही मुख्य कारण है। मज़दूरों को उनके परिवारों के साथ बागानों में स्थानांतरित होने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। बागान मालिक सस्ते श्रमिक चाहते थे जो बागानों में स्थायी रूप से बस जाएं। व्यक्तियों को स्थानांतरित करने के बजाए प्रवासी-श्रमिक और उनके परिवारों को प्रोत्साहित करके इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता था। सारा परिवार - महिला, पुरुष और बच्चे, बागान मालिकों द्वारा निर्धारित मज़दूरी पर बागानों में काम करते थे।

दूसरे, परिवार आप्रवास से यह सुनिश्चित हो जाता था कि श्रम का पुन:उत्पादन हो सकेगा। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अगली पीढ़ी भी मज़दूर के रूप में काम करेगी और इस प्रकार भविष्य में नई भर्ती की समस्या कम हो जाएगी।

15.3 लिंग-भेद का स्वरूप

ऊपर हमने रोपण प्रणाली के उद्गमों पर चर्चा की। हम देख सकते है कि रोपण उद्योग की प्रारंभिक अवस्थाओं में महिलाओं को रोज़गार देने के विशिष्ट कारण थे। यह रोपणों की ओर परिवारों के आप्रवास से संबंधित था। बागानों के काम में - विशेष रूप से चाय बागानों में, महिला और पुरुष श्रम की सहभागिता शामिल थी। यह व्यापक रूप से माना जाता है कि काम लिंग-विशिष्ट होता है। नियोक्ताओं का कहना है कि महिलाएं चाय की पत्तियां ज्यादा बेहतर ढंग से तोड़ सकती हैं और इससे उनका रोज़गार सुनिश्चित होता है। पुरुष भी पत्तियां तोड़ते हैं लेकिन इसके साथ ही साथ वे चाय की झाड़ियों और भूमि के रखरखाव से संबद्ध कार्य भी करते हैं। वास्तव में, लिंगों के बीच श्रम-विभाजन वैज्ञानिक तथ्य की बजाए एक रूढ़िवादी धारणा या आस्था है। ज्यादा संख्या में महिला-मज़दूरों को रोज़गार देने का मुख्य कारण मज़दूरी दरों को कम करना है, इसका वर्णन हम आगामी अनुच्छेदों में करेंगे।

15.3.1 परिवार-आधारित रोज़गार और मज़दूरी

इकाई में हमने पीछे पढ़ा कि प्रारंभिक अवस्थाओं में परिवार-आधारित भर्ती के कारण महिला मज़दूरों को इस उद्योग में रोज़गार मिला। पिछले अनुच्छेद में हमने देखा कि महिलाओं के व्यापक रोज़गार का अन्य कारण यह है कि यह वे पत्तियां तोड़ने जैसे कुछ कार्यों का बेहतर रूप से निष्पादन कर सकती हैं। यह कारण ज्यादा स्वीकार्य नहीं है। अत: इस उद्योग में महिलाओं के रोज़गार का वास्तविक कारण क्या हो सकता है?

वास्तव में इसका ज्यादा महत्वपूर्ण कारण बागानों की प्रारंभिक अवस्थाओं में परिवार-आधारित रोज़गार की परंपरा है। इसका इस्तेमाल नियोक्ताओं ने मज़दूरी दरों को कम करने के लिए किया है।

> **क्या आप जानते हैं? - 1**
>
> न्यूनतम मज़दूरी की संकल्पना पर सबसे पहले चर्चा 1957 में पन्द्रहवें भारतीय श्रमिक सम्मेलन (आई एल सी) में हुई। आई एल सी एक त्रिपक्षीय बैठक है जिसमें मज़दूर संघ, नियोक्ता संगठन और सरकारी प्रतिनिधि आते हैं। काफी चर्चा करने के बाद सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया कि आवश्यकतानुसार न्यूनतम मज़दूरी से मज़दूर, उसकी पत्नी और दो बच्चों की भोजन, कपड़ा और मकान की मूलभूत जरूरतें पूरी होनी चाहिए।

सरकार ने चाय बागान उद्योग सहित कई उद्योगों में न्यूनतम मज़दूरी समितियाँ नियुक्त की। इन समितियों में मज़दूरों, नियोक्ताओं और सरकार के भी प्रतिनिधि थे। चाय बागान उद्योग की समिति ने न्यूनतम मज़दूरी को बढ़ाने संबंधी निर्णय लेने में सबसे ज्यादा समय (छह वर्ष) लिया। इसका मुख्य कारण इस उद्योग के नियोक्ताओं द्वारा एक परिवार में उपभोग इकाइयों के लिए किया गया कड़ा विरोध था। उनका तर्क था कि चूंकि चाय बागानों में रोज़गार परिवार आधारित है तो इसका अभिप्राय है कि प्रत्येक परिवार में दो सदस्य (एक महिला और एक पुरुष) नौकरी करते है और उपभोग की तीन इकाइयां लेने का मानक फार्मूला बहुत ज्यादा था। इसके बजाए न्यूनतम मज़दूरी निर्धारित करने के लिए उपयोग की केवल डेढ़ इकाइयों को लेना चाहिए। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि नियोक्ता व्यापक महिला मज़दूरों के रोज़गार को मज़दूरी दर के अवसादकारी साधनों के रूप में प्रयुक्त कर रहे थे। नियोक्ताओं के विचारों के विरुद्ध समिति में मज़दूर संघों और सरकारी प्रतिनिधियों ने असहमति दी व विरोध किया। समिति की अंतिम रिपोर्ट को यह विचार निराधार लगे। इसमें कहा गया : रोज़गार की परिवार पद्धति को चाय बागान उद्योग से अनोखा (अलग) नहीं माना जा सकता और यदि ऐसा है तो यह विचार का विषय है कि क्या यह उचित है कि नियोक्ता पुरुष मज़दूर अर्जकों को कम मज़दूरी देकर लाभ का दावा करें?

रोपन कार्य में रत महिला श्रमिक

तथापि नियोक्ताओं ने अपनी स्थिति बदलने से इनकार कर दिया। उनका आग्रह था कि न्यूनतम मज़दूरी निर्धारित करते समय उपभोग की केवल डेढ़ इकाइयों को ही ध्यान में रखा जाए। इसके परिणामस्वरूप चाय बागान मज़दूर संगठित क्षेत्र में ऐसे मज़दूर है जिन्हें मज़दूरी सबसे कम मिलती है। बागान मज़दूरों की कुल मासिक मज़दूरी असम और बंगाल में मुश्किल से 600 रु. प्रतिमाह और तमिलनाडू में 800 रु. प्रतिमाह है। सत्य यही है कि महिलाओं के रोजगार की उच्च दर का, बागान मालिकों ने, सामान्य वेतन दरों को निम्न रखने के लिए इस्तेमाल किया है।

15.3.2 कार्यस्थल पर लिंग-भेद

रोपण प्रणाली में एक निश्चित सोपानक्रम होता है जो मज़दूरों और प्रबंधन की वर्ग संरचना को बनाए रखता है। इसमें प्रबंधक होते है और एक सिरे पर इन प्रबंधकों के सहायक और दूसरे सिरे पर मज़दूर होते हैं। इनके बीच में मध्यस्थों की कई श्रेणियां होती हैं जिनमें पर्यवेक्षक स्टाफ शामिल है। यह वर्ग उप-स्टाफ कहलाता है। इनमें सबसे निम्नतम गैंगमेन (टोली पुरुष) या सरदार/दफादार - जैसा कि असम और पश्चिम बंगाल की चाय स्टेट में इन्हें कहते है, होते हैं। ये लोग मज़दूरों के समूह के प्रभारी होते है जिनके दैनिक कार्य का उन्हें पर्यवेक्षण करना होता है। मज़दूर खेतों और चाय की फैक्टरियों में काम करते है और इस प्रकार ये, चाय बागानों में जनसंख्या के बड़े भाग का गठन करते हैं।

बागानों का कार्य मुख्यत: शारीरिक प्रकृति का होता है। फैक्टरी में हरी पत्तियों को तैयार उत्पाद में संसाधित किया जाता है। इसमें कुल श्रम दल का 10% से कम नियुक्त है। खेतों में काम करने वाले मज़दूर झाड़ियों से हरी चाय की पत्तियां तोड़ने और बागानों तथा उनकी झाड़ियों के रखरखाव से संबंधित कार्य करते हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है महिलाएं मुख्य रूप से पत्तियां तोड़ने और हल्के-फुलके रखरखाव के काम करती हैं। बागानों में कार्य का स्वरूप दर्शाता है कि कार्य की प्रकृति समान होने पर भी वहां काम की लिंग-विशिष्ट श्रेणियां हैं।

वृक्षारोपण में श्रमिक – क्या वहां व्यावसायिक गतिशीलता के अवसर हैं?
सौजन्य : प्रो० कपिल कुमार, इग्नू, नई दिल्ली

विचार करें-2

बागानों में काम करने वाली महिलाओं का स्तर निम्न माना जाता है। इस भाग को ध्यानपूर्वक पढ़ें और उनकी स्थिति को कैसे सुधारा जा सकता है, इससे संबंधित कुछ सुझाव दें।

अपने उत्तर को एक पुस्तिका में लिखें और अध्ययन केंद्र के अन्य विद्यार्थियों के साथ अपने विचारों की तुलना करें।

अधिकांश बागान मज़दूरों के लिए उप-स्टाफ श्रेणी में पदोन्नति प्राप्त करना कार्य स्थिति में उन्नति का एकमात्र स्रोत है। इस श्रेणी के अंतर्गत टोली नेता और उसके ऊपर के पद जैसे कि चौकीदार और अन्य पर्यवेक्षक पद शामिल हैं। मज़दूरों की कुल संख्या का केवल 15% ही उप-स्टाफ श्रेणी के अंतर्गत आ पाता है और इन श्रेणियों में से किसी भी पद पर पदोन्नति होना काफी प्रतिष्ठापूर्ण माना जाता है। महिलाओं को उप-स्टाफ की श्रेणियों में पदोन्नति नहीं दी जाती। इसका अभिप्राय यह हुआ कि महिला मज़दूर जिस पद पर नौकरी में आती हैं उसी पद पर सेवानिवृत हो जाती हैं। इससे यह स्पष्टतया सामने आता है कि इस उद्योग में लैंगिक भेदभाव है और महिलाओं को हमेशा निम्न कार्य स्थितियों में रखा जाता है। बागानों के पर्यवेक्षीय कामों के लिए किसी भी प्रकार के विशेष कौशल की आवश्यकता नहीं होती और महिलाएं उन कार्यों को आसानी से निष्पादित कर सकती है। साथ ही साथ पर्यवेक्षक बनने का मतलब है कार्य संगठन में ज्यादा ऊंचा सामाजिक स्तर प्राप्त करना और यह महिलाओं को नहीं दिया जाता।

15.3.3 महिलाएं और मज़दूर संघ

रोपन कार्य में रत महिला श्रमिक

इस भाग में हम बागान मज़दूरों में मज़दूर संघों और आंदोलन में महिला मज़दूरों की स्थिति की समीक्षा करेंगे। बागान मज़दूरों में मज़दूर संघों का अध्ययन दर्शाता है कि कार्य क्षेत्र में महिला और पुरुष मज़दूरों के बीच अंतर मज़दूर संघ संगठनों में भी प्रतिबिंबित होता है। आइए इसके कारणों को पता लगाने का प्रयास करें।

स्वतंत्रता के बाद 1947 से ही बागान मज़दूर अलग-थलग व असंगठित थे। मज़दूरों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई भी संगठन नहीं था। 1850 के दशक में असम में, 1860 के दशक में दार्जीलिंग और तमिलनाडू और 1870 के दशक में जलपाईगुड़ी में चाय उद्योग की शुरूआत हुई लेकिन मज़दूर संघ स्वतंत्रता के बाद 1950 के दशक में ही अस्तित्व में आए। दूसरे शब्दों में, अस्तित्व में आने के पहले सत्तर या अस्सी वर्षों में इस उद्योग ने - जिसमें 15 लाख मज़दूर काम में लगे थे, सामूहिक सौदाकारी की विधियों का प्रयोग नहीं किया। 1944 में, उपनिवेशी सरकार ने भारत और श्रीलंका (जो उस समय सिलोन के नाम से जाना जाता था) में बागान मज़दूरों की परिस्थितियों के बारे में जांच-पड़ताल करने के लिए एक आयोग गठित किया। यह आयोग रेगे आयोग के नाम से जाना जाता था - जो इस आयोग के अध्यक्ष थे। आयोग ने रिपोर्ट दी कि मज़दूर असंगठित व निस्सहाय हैं जबकि नियोक्ता काफी संगठित और शक्तिशाली थे। इसने सिफारिश की कि मज़दूरों को मज़दूर संघ बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए लेकिन नियोक्ता पूरी तरह इसके विरुद्ध थे। उपनिवेशी सरकार ने भी नियोक्ताओं का समर्थन किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात, विशेष रूप से 1950 के दशक के पश्चात मज़दूर संघों ने बागानों में प्रवेश कर श्रमिकों को संगठित करना प्रारंभ किया। उन्हें मज़दूरों से बड़ा अच्छा प्रत्युत्तर मिला और वे तत्परता से इन संघों के सदस्य बन गए। वर्तमान स्थिति दर्शाती है कि बागानों में संघीकरण काफी व्याप्त है। पश्चिमी बंगाल में लगभग सभी चाय बागान मज़दूर, संघों के सदस्य हैं। असम में भी मज़दूर संघ व्याप्त है। दोनों राज्यों में मुख्य अंतर यह है कि पश्चिमी बंगाल में कई मज़दूर संघ काम कर रहे हैं जबकि असम में एक प्रधान मज़दूर संघ है। तमिलनाडू में भी पश्चिमी बंगाल की तरह संघीकरण की दर ज्यादा है, वहां भी मज़दूरों के काफी संघ हैं। मज़दूर संघीकरण के लाभों से परिचित है इसीलिए बागान में काम करने वाला शायद ही कोई ऐसा कोई मज़दूर होगा जो किसी भी संघ का सदस्य न हो।

महिला मज़दूर भी मज़दूर संघों की सदस्य हैं। हालांकि ऐसा देखा गया है कि संगठनों में ये महिलाएं साधारण सदस्य मात्र हैं। स्थानीय स्तर पर भी ये किसी नेतृत्व में न के बराबर हैं। रोपण के मज़दूर संघों पर किया गया अध्ययन दर्शाता है कि संघ की कुल सदस्यता की आधी सदस्यता इन महिलाओं की है लेकिन संघों की स्थानीय कार्यकारिणी समिति में भी उनका प्रतिनिधित्व बहुत कम है। इस स्तर पर एक या दो महिलाएं शामिल हैं लेकिन वह भी नाममात्र की सहभागिता के रूप में है।

प्रतिनिधित्व के इस अभाव के कई कारण है। चाय बागान मज़दूरों पर किए गए कुछ अध्ययन इस मुद्दे पर रोशनी डालते हैं। यह पाया गया है कि महिला मज़दूरों को रोपण के काम के बाद खाना पकाना, पानी भर कर लाना और बच्चों की देखभाल जैसे घर के काम भी करने पड़ते हैं। इसीलिए उनको संघ की गतिविधियों के लिए समय नहीं मिल पाता।

क्या आप जानते हैं?-2

मज़दूर संघों में महिलाओं की कम सहभागिता का मुख्य कारण है महिला मज़दूरों के प्रति पूर्वाग्रह। अन्य कारण महिला मज़दूरों में साक्षरता का निम्न स्तर है। बागान मज़दूरों का साक्षरता स्तर सामान्य जनता के जितना उच्च नहीं होता। महिलाओं के मामले में, उनका साक्षरता स्तर पुरुषों के साक्षरता स्तर से आधा होता है। घरेलू काम के साथ पूर्वव्यस्तता और निम्न साक्षरता स्तर के कारण महिला मज़दूर ज्यादा अलग-थलग रहती हैं। पहले कारण के फलस्वरूप वे घर के कामों में ही बंध कर रह जाती हैं और दूसरा कारण उन्हें अपने स्वयं के प्रयासों द्वारा बाहर की दुनिया की जानकारी पाने से रोकता है।

साथ ही साथ, यह भी देखा गया है कि कभी कभी महिलाएं पुरुषों से ज्यादा हिंसक हो जाती है। यदि उन्हें उकसाया जाए तो वह पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा हिंसक हो सकती हैं। ऐसे कई उदाहरण सामने आए हैं जब प्रबंधक मज़दूरों से बिना वजह कठोर व्यवहार करता है, ऐसे में कई बार मज़दूर स्थिति के प्रति स्वाभाविक प्रतिक्रया के रूप में एकदम अचानक हिंसा पर उतारू हो जाते हैं जब उनकी सहनशीलता की सीमा समाप्त हो जाती है। वे प्रबंधक या संबंधित अधिकारी का घिराव कर सकते हैं या उसकी पिटाई भी कर सकते हैं। इन मामलों में, महिलाएं ही पहले आगे बढ़ती है। इस प्रकार, यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि मज़दूर संघ की कई गतिविधियों में महिलाएं पहल करती हैं लेकिन उन्हें प्रतिनिधित्व में पहल करने का मौका नाममात्र को ही दिया जाता है। यदि मज़दूर संघों ने महिलाओं को नेतृत्व में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित किया होता तो उनके लिए कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव को चुनौती दे पाना संभव हो जाता।

15.4 लिंग संवेदनशीलता की ओर

पिछले भागों को पढ़ने के पश्चात हम देख सकते हैं कि महिला बागान मज़दूर कुल मिलाकर गरीब वर्गों से होते हैं। वे इस सेक्टर में इन मज़दूरों का एक बड़ा वर्ग बनाते हैं। रोपणों में इनके अलगाव के कारण इन्हें बाहरी दुनिया के साथ अन्तःक्रिया (बातचीत) करने में कठिनाई होती है। इस प्रकार ये बाहरी श्रम आंदोलनों की प्रवृत्तियों से ज्यादा बेखबर रहते है। महिला मज़दूरों की स्थिति ज्यादा खराब इसलिए है क्योंकि उन्हें कार्यस्थल और समाज दोनों में भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

बागान मालिक कम मज़दूरी देने के लिए परिवार-आधारित रोज़गार प्रणाली का प्रयोग करते हैं। इससे इन मज़दूरों के रहन-सहन का स्तर निम्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा, ये कार्य में अनियमितता को बढ़ाता है। इसके अलावा, असम और पश्चिम बंगाल के अधिकांश बागान रोपण श्रमिक अधिनियम के सभी प्रावधानों को पूरा नहीं करते। इस अधिनियम में कार्य का विनियमन, मज़दूरों को निशुल्क आवास और मनोरंजन से संबंधित विभिन्न कल्याण कार्य, चिकित्सा सुविधाओं और बच्चों के लिए शिक्षा इत्यादि का प्रावधान है। अधिकांश चाय बागानों में कल्याण प्रावधानों को पूरा नहीं किया जाता। इसका उत्तरदायित्व मुख्य रूप से नियोक्ता पर होता है। वे मज़दूरों के कल्याण कार्यों के प्रति लापरवाही बरतते हैं। जिसके परिणामस्वरूप एकाकी (isolated) मज़दूर अपने रहन-सहन के स्तरों को बेहतर नहीं बना पाते। यदि रोपण श्रमिक अधिनियम के प्रावधानों का समुचित रूप से कार्यान्वयन हो तो मज़दूरों की जीवन-शैली में सुधार हो सकता है। हालांकि हम देखते हैं कि अधिकांश मज़दूर-विशेष रूप से महिलाएं, निरक्षर होते हैं। उनका अलगाव और उनकी निरक्षता उन्हें रोपण के क्षेत्र में बाहरी दुनिया में हो रहे विकासों के प्रति अनभिज्ञ रखता है और उन्हें अपने कार्यस्थल पर पुरुष पक्षपात के विरुद्ध लड़ना अत्यधिक कठिन लगता है

15.4.1 लिंग अलगाव को समाप्त करना

मज़दूर संघ के सदस्यों को संवेदनशील बनाकर और साक्षरता व शिक्षा का प्रसार करके मज़दूरों के अलगाव को दूर किया जा सकता है। चूंकि महिलाओं की संख्या कुल श्रमिक शक्ति का आधा है अत: मज़दूर संघों की उनकी समस्याओं के प्रति संवेदनशील होना अनिवार्य है। यह केवल तभी हो सकता है यदि महिलाएं नेतृत्व के पदों में शामिल हों। इससे संघ महिलाओं के कल्याण से संबद्ध मुद्दों पर और अधिक गंभीरता से कदम उठाएंगे। उदाहरण के लिए, माताओं के रूप में महिलाओं की सहायता करने संबंधी दो प्रमुख प्रावधान हैं - प्रसूति हितलाभ अधिनियम और रोपण श्रमिक अधिनियम में शिशुगृहों के लिए प्रावधान। अपने अध्ययनों में हमने देखा कि अक्सर प्रबंधन महिला मज़दूरों को प्रसूति हितलाभ अधिनियम के प्रावधानों के बारे में गलत सूचना देता है। इस अधिनियम के अंतर्गत एक गर्भवती महिला को लंबे समय तक खड़े रहने या किसी भी प्रकार के घोर परिश्रम वाले कार्य करने की अनुमति नहीं है। उसे पूर्ण वेतन सहित छह सप्ताह का प्रसूति अवकाश मिलता है। महिला को दिए जाने वाले वेतन की गणना उसके द्वारा पिछले तीन महीनों में लिए गए औसत वेतन के आधार पर की जाती है। औसत वेतन की गणना करते समय न्यूनतम मज़दूरी और प्रेरणामूलक मज़दूरी (जो चाय की अतिरिक्त पत्तियां तोड़ने के लिए दी जाती है) को भी ध्यान में रखा जाता है। कई मामलों में, देखा जा सकता है कि नियोक्ता दृढ़ आग्रह करता है कि औसत वेतन केवल पिछले तीन महीनों के दौरान मज़दूर को दिए गए न्यूनतम वेतन का औसत ही है। परिणामस्वरूप मज़दूर को वेतन की कम राशि मिलती है। अत: इन मामलों में, महिलाएं अपने स्वास्थ्य को जोखिम में डालकर प्रसव के समय तक काम पर आना जारी रखती हैं। वे प्रसूति अवकाश लेना नहीं चाहती क्योंकि इससे उनका वेतन कम हो जाता है। इस प्रकार के अनाचारों की संभावनाएं बनी रहती हैं क्योंकि महिलाओं को कानूनों की जानकारी नहीं दी जाती।

अपने अनुभव से सीखें 2

चाय उद्यानों में काम करने वाले कुछ मज़दूरों से संपर्क कीजिए और महिलाओं के प्रति भेदभाव के बारे में पछताछ कीजिए - विशेष रूप से वेतन, प्रसूति और स्वास्थ्य सुविधाएं और शिशुगृहों की उपलब्धता इत्यादि के बारे में पछताछ कीजिए। अपनी जांच के आधार पर उन्हें कुछ सुझाव दीजिए जिससे कि महिलाओं के प्रति इन प्रतिकूल परिस्थितियों में किस प्रकार सुधार लाया जा सकता है। अपने अवलोकनों को एक पुस्तिका में नोट कीजिए।

शिशुगृहों के मामले में भी आप इसी प्रकार के दोष देख सकते हैं। अधिनियम में कहा गया है कि नियोक्ताओं को पांच वर्ष के कम आयु के बच्चों के लिए शिशुगृह चलाना होगा। इन शिशुग्रहों में प्रशिक्षित परिचर हो जो साफ सुथरे कपड़े पहने। शिशुगृहों के बच्चों के गंदे कपड़े धोने के लिए स्थान होना चाहिए तथा उनके लिए अल्पाहार बनाने व दूध गर्म करने के लिए रसोईघर होना चाहिए। तथापि, पश्चिम बंगाल और असम के चाय बागानों में प्राय: देखा जा सकता है कि या तो वहां शिशुगृह हैं ही नहीं और यदि हैं तो या तो वे समुचित रूप से चलाए नहीं जाते या वे इन कानूनी प्रावधानों का अनुसरण नहीं करते। कई मामलों में पाया गया है कि बच्चों को दूध या कोई खाद्य पदार्थ (आहार) नहीं दिए जाते है और आहार प्रदान के लिए मां को छुटपुट भत्ता दिया जाता है। इसका अभिप्राय है कि माताओं को अपने बच्चों को आहार देने के लिए अपने कार्यस्थल को छोड़कर आना पड़ता है। इससे उनके कार्य की दक्षता कम होती है। कई स्थानों पर तो शिशुगृह होते ही नहीं और महिलाएं बच्चों को अपने साथ कार्यस्थल पर लेकर आती है।

15.4.2 मज़दूर संघों में प्रतिनिधित्व

हालांकि उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट होता है महिला मज़दूरों के सुविधा व लाभ प्रदान करने को लिए विधान विद्यमान हैं परंतु इनका कार्यान्वयन नहीं होता क्योंकि महिला मज़दूरों को या तो अपने कानूनी अधिकारों की जानकारी नहीं होती अथवा यदि वे अपने कानूनी अधिकारों से अवगत होती भी हैं तो भी वे उन्हें कार्यान्वित करने के लिए नियोक्ताओं पर दबाव नहीं डाल सकतीं। पुरुष-शासित और पुरुष-उन्मुख मज़दूर संघ महिलाओं की इन मांगों को ज्यादा महत्व नहीं देते। इसलिए महिलाओं का अपने हितों की सुरक्षा के लिए मज़दूर संघों के नेतृत्व में प्रवेश करना आवश्यक है।

साथ ही साथ, ऐसे कई उदाहरण सामने आए है जब अपने कार्य स्थल पर अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए महिलाएं पुरुषों से ज्यादा हिंसक हुई। हालांकि ये प्रतिक्रियाएं अक्सर स्वाभाविक होती हैं। मज़दूरों पर होने वाले अन्याय के प्रति ये उनकी तत्काल प्रतिक्रिया है। स्वत:प्रेरण पर भरोसा स्थिति के प्रति तत्काल प्रतिक्रिया का संकेत है। यह सुविचारित कार्य-योजना नहीं हो सकती क्योंकि परिस्थिति का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने के पश्चात वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचते। इसी कारण अधिकांश मामलों में ऐसी क्रियाओं को एक निश्चित अवधि तक जारी नहीं रखा जा सकता। इस प्रकार स्वत:प्रेरित क्रियाएं या विरोध समस्याओं के दीर्घकालिक हल नहीं हो सकते।

15.4.3 शिक्षा की भूमिका

शिक्षा महिला मज़दूरों के लिए बहुत महत्वपूर्ण साधन है क्योंकि यही मात्र ऐसा तरीका है जिसके माध्यम से महिला मज़दूरों को उनकी समर्थताओं के प्रति सजग किया जा सकता है। इससे उनका ज्ञान और सजगता बढ़ेगी और यह महिलाओं को अपनी समस्याओं के कारणों का विश्लेषण करने और सही समाधानों के लिए कार्य करने में सहायक होगी। हालांकि वर्तमान स्थिति दर्शाती है कि बागान महिलाओं में साक्षरता बहुत कम है। अत: सरकार द्वारा नियोक्ताओं पर महिलाओं की साक्षरता दरों को बढ़ाने के लिए दबाव डालना जरूरी है। इस संबंध में सरकार कम से कम यह सुनिश्चित कर सकती है कि रोपण श्रमिक अधिनियम के प्रावधानों का पूरी तरह कार्यान्वयन हो। यद्यपि यह कानूनी अनिवार्यता है और इनसे बचने के लिए नियोक्ता कई तरीके व साधन ढूंढ लेते हैं। अधिनियम का प्रभावी कार्यान्वयन ही आमतौर पर मज़दूरों और विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों के सांस्कृतिक विकास के लिए परिस्थितियां सृजित कर देगा।

उपर्युक्त वर्णित सभी बातों को कार्यान्वित करना कठिन नहीं है क्योंकि उनके लिए नए विधानों की आवश्यकता नहीं है। इसके लिए केवल यह सुनिश्चित करना अनिवार्य है कि वर्तमान कानूनी प्रावधानों का (जो इन मज़दूरों के मूलभूत अधिकार हैं) पालन किया जा रहा है। कानून पारित होने के चालीस वर्षों के बाद भी इनका कार्यान्वयन नहीं हुआ। यह दर्शाता है कि यह आसान नहीं है क्योंकि नियोक्ता इसके अत्यधिक विरोधी है। तथापि, वास्तव में ऐसी राजनीतिक संकल्प की आवश्यकता है जो महिला बागान मज़दूरों के पक्ष में पारित विधानों को लागू करा सके।

15.5 सारांश

इस इकाई में हमने महिला बागान मज़दूरों की स्थिति पर चर्चा की। इस उद्योग में काम करने वाली महिलाओं की स्थिति को समझने के लिए हमने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि यह अन्य उद्योगों से किस प्रकार भिन्न है। महिला मज़दूरों की अधिकांश समस्याएं श्रम-भर्ती की समस्या से जुड़ी हुई हैं।

परिवार-आधारित भर्ती प्रणाली से महिला मज़दूरों को निम्न स्थिति प्राप्त हुई है। परिवार के भीतर की लिंग असमानताएं कार्य स्थल पर भी देखने को मिलती हैं। हमने यह भी चर्चा की कि कार्य का संगठन और मज़दूर संघ आंदोलन भी रोपणों में लिंग-पक्षपात को नहीं हटा सकता। अंत में हमने बताया कि स्थितियों को कैसे सुधारा जा सकता है। इसके लिए सबसे पहले समाज के रवैये को महिला मज़दूरों के पक्ष में बदलने की जरूरत है। इसे महिला मज़दूरों को शिक्षित करके और अधिक बढ़ावा दिया जा सकता है। उन्हें मज़दूर संघ आंदोलनों और इनमें नेतृत्व प्रदान करके सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित भी किया जाना चाहिए।

15.6 शब्दावली

लिंग-भेद	:	महिला का आमतौर पर यौन, आर्थिक या सामाजिक शोषण
असमानता	:	सामाजिक-आर्थिक और लिंग कारकों पर आधारित अंतर और असंतुलन
श्रम-प्रधान	:	वे उत्पादन प्रक्रम जो मशीनों की तुलना में बहुत अधिक मात्रा में मानव श्रम का प्रयोग करते हैं।
विधान	:	न्यायालय द्वारा लागू कानूनी विधियां

15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

भौमिक शरित, 1981, *क्लास फोरमेशन इन दि प्लांटेशन सिस्टम*, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

जैन शोभिता, 1988, *सैक्सुअल इक्वेलिटी*, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

इकाई 16 सेवा क्षेत्र और रोजगार के नए अवसर

रूपरेखा

16.0 लक्ष्य और उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 रोज़गार के क्षेत्रों की जानकारी
16.3 भावी रोज़गार की प्रवृत्तियाँ
16.4 महिलाओं के लिए रोज़गार के नए अवसर
16.5 सारांश
16.6 शब्दावली
16.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में हम उन व्यवसायों के बारे में चर्चा करेंगे जिन्हें महिलाएं पहले से करती आ रही हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि वे काम उनकी मर्ज़ी के थे। वे इसलिए भी ये कार्य करती थी कि इस तरह के कार्य उनके लिए उचित समझे जाते थे। इन कार्यों को समुचित केवल इसलिए नहीं माना जाता था कि वे कार्य कम शारीरिक श्रम वाले या बिल्कुल शारीरिक श्रम रहित थे बल्कि इसलिए भी उचित माना जाता था कि उनका उद्देश्य परिवार की आय में वृद्धि करना अथवा सहयोग देना था और इसके साथ ही महिलाओं को अपने परिवार की देखभाल करने के लिए समय भी मिल जाता था। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- रोज़गार के विभिन्न क्षेत्रों का वर्णन कर सकेंगे;
- महिलाओं के रोज़गार की प्रवृत्ति में आए परिवर्तनों के कारणों को स्पष्ट कर सकेंगे; और
- सभी क्षेत्रों में महिलाओं के लिए रोज़गार के नये अवसरों के उदाहरण प्रस्तुत कर सकेंगे एवं उनकी व्याख्या कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आपको बीसवीं सदी की महिलाओं के रोज़गार के नये अवसरों के बारे में जानकारी दी जाएगी। यहां हम सबसे पहले रोज़गार के विभिन्न क्षेत्रों की संक्षेप में चर्चा करेंगे इसके बाद रोज़गार की बदलती प्रवृत्तियों का विवरण देंगे। इसके पश्चात् सेवाओं एवं रोज़गार के नये अवसरों के संबंध में विस्तार से व्याख्या करेंगे।

इस इकाई के आरंभ में रोज़गार के विभिन्न क्षेत्रों का संक्षेप में वर्णन किया गया है। ये अवधारणाएं विभिन्न क्षेत्रों तथा महिला रोज़गार को स्पष्ट करने के लिए की गई हैं। इसके भाग 1.3 में रोज़गार की बदलती प्रवृत्ति और इसके कारणों की विस्तृत और गहन जानकारी दी गई है। आजकल महिलाएं नए-नए व्यवसायों को चुन रही हैं। इसलिए अब इस दिशा में शिक्षण एवं प्रशिक्षण प्राप्त करना उनके लिए अत्यंत आवश्यक हो गया है। अब महिलाएं यह स्वीकार करती हैं कि उनकी मुख्य जिम्मेदारी घर की देखभाल और बच्चों का लालन-पालन करना है परंतु वे चाहती हैं कि घर में कुछ अतिरिक्त कमा

कर अधिक सहयोग प्रदान करें जिससे उनका परिवार और अधिक खुशहाल हो जाए। इस प्रकार आजकल महिलाएँ अर्जक और गृहिणी दोनों ही भूमिकाओं को बखूबी निभा रही हैं।

भाग 1.4 में कृषि, शिक्षा, मीडिया या विपणन के क्षेत्र के ऐसे विभिन्न व्यवसायों का विस्तार से वर्णन किया गया है जिनमें महिलायें कार्य कर सकतीं हैं। इस भाग में कुछ ऐसे व्यवसायों का सुझाव भी दिया गया है जिन्हें शारीरिक रूप से कमज़ोर या फिर शारीरिक रूप से विकलांग महिलाएं भी कर सकती हैं।

16.2 रोज़गार के क्षेत्रों की जानकारी

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को प्राथमिक क्षेत्र, द्वितीय क्षेत्र तथा तृतीय क्षेत्र में विभाजित अथवा वर्गीकृत किया जाता है।

i) प्राथमिक क्षेत्र : प्राथमिक क्षेत्र जैसे कृषि वानिकी, खनन तथा खदान आदि में आर्थिक कार्यकलापों को शामिल किया जाता है। इस क्षेत्र में उत्पादक की गतिविधियां प्रकृति से निकटता से जुड़ी होती हैं। इस क्षेत्र में उत्पादक का मुख्य व्यवसाय कृषि है। पिछड़े और विकासशील देशों के लोग अधिकतर प्राथमिक व्यवसाय में लगे होते हैं। यह क्षेत्र द्वितीय क्षेत्र को कच्चा माल उपलब्ध कराता है।

ii) द्वितीय क्षेत्र : द्वितीय क्षेत्र में वे लोग आते हैं जो मानव निर्मित उत्पादों में कार्यरत होते हैं। यह शहरी क्षेत्रों में स्थापित बड़े उद्योगों में औद्योगिक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। विकासशील देशों के लोग इस क्षेत्र में बड़ी संख्या में काम करते हैं। इनमें इस्पात संयंत्र, कपड़ा मिल तथा सीमेंट फैक्ट्रियां आदि शामिल हैं। यहां पर वेतन अधिक मिलता है जिससे लोगों का जीवन स्तर भी ऊंचा होता है। यह क्षेत्र कच्चा माल तथा खाद्यान्न उत्पादन प्राथमिक क्षेत्र से प्राप्त करता है।

iii) तृतीय क्षेत्र : तृतीय क्षेत्र में परिवहन, बैंक संबंधी कार्य, बीमा कंपनी, व्यापारिक सेवाएं, लोक प्रशासन तथा अन्य सेवाओं जैसे कार्य शामिल हैं। आधुनिक अर्थव्यवस्था में ये सब सेवाएं अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

16.3 भावी रोज़गार की प्रवृत्तियां

कोई भी समाज क्यों न हो महिलाओं का प्रमुख उत्तरदायित्व घर का कामकाज करना और बच्चों की देखभाल करना होता है। कुछ विशेष प्रकार के काम भी महिलाओं के जिम्मे लगाए हुए हैं। आर्थिक दबावों में वृद्धि होने से महिलाओं को रोज़गार में शामिल होना अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया है। सेवा क्षेत्र में महिलाओं का प्रवेश बहुत बड़ी संख्या में हो चुका है जिनमें अध्यापन, सचिवालयी कार्य अथवा लघु या घरेलू उद्योग प्रमुख है। महिलाएं दोहरे दबाब के तहत कार्य करती हैं। पहले उसे घरेलू कार्यों को पूरा करना पड़ता है उसके बाद उसे मजदूरी या कामगार के रूप में श्रम करना होता है। आधुनिक युग में रोज़गार की प्रकृति में बहुत बदलाव आया है इसलिए आवश्यक हो गया है कि महिलाओं को शिक्षित किया जाना चाहिए।

भूमंडलीकरण, प्रौद्योगिकी तथा उदारीकरण : प्रौद्योगिकी के विकास के कारण विश्व बहुत ही छोटा हो गया है। दुनिया के किसी भी कोने में बैठा हुआ व्यक्ति अब किसी से भी कुछ ही सैकिन्डों में संप्रेषण कर सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि संचार के माध्यम से विश्व की सीमाएं समाप्त हो गई हैं।

जब से मानव ने उपग्रहों, कंप्यूटर का अविष्कार किया है तब से ही प्रौद्योगिकी के सहयोग से परस्पर विचारों का आदान-प्रदान बहुत ही सरल और आसान हो गया है। संचार प्रौद्योगिकी आज के मानव का महत्वपूर्ण और आवश्यक साधन बन गया है। प्रौद्योगिकी में तीव्रतम बदलाव आया है। इसलिए विश्व तेज गति से घूम रहा है। इस संपूर्ण परिदृश्य में महिलाओं के लिए स्वाभाविक हो गया है कि वे भी इस बदले युग के परिवर्तन में हिस्सा लें, उनकी भी इसमें भागीदारी हो। अब वे अपने आपको शिक्षित कर रही हैं ताकि वे भी अपने प्रतिपक्षी या यूं कहें कि अपने पुरुष साथी के समान प्रगति के पथ पर चलें। उसके कंधे से कंधे मिलाकर उसके साथ सहयोग करें। महिलाओं के लिए कंप्यूटर का अविष्कार एक वरदान सिद्ध हुआ है। इसने बहुत से व्यावसायों का मार्ग खोला है, साथ ही अब वे घर की सीमाओं में रह कर ही काम कर सकती हैं। यद्यपि आज विश्व बहुत ही उन्नति कर चुका है किंतु सत्य यही है की घर की देखभाल और बच्चों के लालन-पालन की जिम्मेदारी केवल महिलाओं के ऊपर ही आती है। इसलिए आज की शिक्षित महिलाएं ऐसे कार्यों को अपनाना चाहती हैं जिन्हें वे घर और परिवार की देखभाल करते हुए कर सकें ताकि परिवार की उन्नति में उनका भी सहयोग हो।

महिलाओं को व्यवसायों में शामिल होने से उन्हें दो लाभ तत्काल मिलते हैं। पहला उनमें आत्म-विश्वास पैदा होता है, दूसरा उन्हें मुक्ति का अहसास होता है। वे भी समानता का अनुभव करने लगती हैं। जब महिलाएं काम करती हैं अथवा उन्हें कामगार के रूप में पारिश्रमिक भुगतान होता है उस समय उनके मन-मस्तिष्क में आर्थिक सुरक्षा का भाव पनपने लगता हैं। वे अपने पैरों पर खड़ी होकर परिवार को आर्थिक सहयोग देती हैं। इन सभी कार्यों से पैतृक व्यवस्था की जो चुनौतियां होती हैं उनका सामना करने में वे समर्थ हो पाती हैं।

16.4 महिलाओं के लिए रोज़गार के नए अवसर

यद्यपि महिलाओं को सभी प्रकार के व्यवसायों में शामिल होना चाहिए किंतु बहुत सारे दबाबों के कारण उन्हें कुछ गिने-चुने ही कार्य करने को मजबूर होना पड़ता हैं। समाज के अनेक अनुबोधन या अवधारणाओं के कारण व्यवसायों में प्रवेश लेने से पूर्व उसके रोज़गार, शिक्षा तथा कार्य करने के स्थान के संबंध में उसकी इच्छा से नहीं बल्कि समाज के अनेक दबाबों के तहत चुनाव करना पड़ता है। इसलिए यदि भारतीय महिला अपने जीवन में सफल होना चाहती है तो उसके समक्ष तीन विकल्प हैं जिन्हें अपनाकर वह सफल जीवनयापन कर सकती है। ये हैं, शिक्षा, संगठन एवं विशेषज्ञता। कला या ज्ञान के क्षेत्र में इन सब मुद्दों को ध्यान में रखते हुए एवं कार्य/रोज़गार की जटिलताओं को ध्यान में रखते हुए महिलाओं को सफल बनाने के लिए इन्हें संगठित किया जाना चाहिए और समुचित रूप से शिक्षित करने की व्यवस्था का प्रावधान करना आवश्यक है।

i) कृषि

भारत में लगभग 70% लोग कृषि पर निर्भर करते हैं। कृषि उत्पादन के क्षेत्र में महिलाओं की अहम भूमिका होती है। ये फसल को काटने, बुआई करने एवं अनाज को संग्रह करती हैं और कृषि उत्पादन में सबसे अधिक योगदान करती हैं। यद्यपि पूर्वाग्रहों के कारण महिलाओं को हल चलाने से वंचित रखा जाता है। इन सब पाबंदियों के बावजूद फसल के उत्पादन, खाद्यान्न संसाधित करने और कृषि उत्पादों को भण्डारण करने में महिलाएँ विशेष रूप से योगदान करती हैं।

कृषि में रोजगार के वैकल्पिक क्षेत्र – यह मुस्कराहट कब तक बनी रहेगी।
सौजन्य : सी.एस.आर., नई दिल्ली

खाद्यान्नों की सुरक्षा, संरक्षण और उसकी देखभाल करने में महिलाओं की जो भूमिका होती है उसे आज मान्यता देने की अत्यंत आवश्यकता हो गई है। गांवों में ऐसे परिवारों में जहां की मुखिया कोई महिला है वहाँ महिलाएं अपनी परिवारिक-भूमि देखभाल के साथ-साथ सवेतन श्रम भी करतीं हैं। इसलिए इस वर्ग में शिक्षा का प्रचार-प्रसार और कार्य कौशल का प्रशिक्षण दिया जाना आवश्यक है ताकि इससे इनकी उत्पादक क्षमता में वृद्धि हो। इसके द्वारा उन्हें अपनी आर्थिक गतिविधियों को विविधीकृत करने में भी मदद मिलेगी। महिलाएं पशुओं की देखभाल करने में विशेष भूमिका निभाती हैं। इसलिए इस व्यवसाय के विभिन्न पक्षों की विधिवत जानकारी उन्हें दे दी जाए तो निश्चित रूप से इनकी कार्य क्षमता और कौशल में महत्वपूर्ण सुधार लाया जा सकता है।

डेरी उत्पादनों की पैकिंग और निपटान की विधि को एक अच्छे प्रबंध की निर्णायक परीक्षा कहा जा सकता है। डेरी और मुर्गी पालन कार्य को लाभ पर चलाने की एक सर्वोत्तम विधि यह है कि डाक द्वारा नियमित ग्राहक बनाने के लिए प्रयास किया जाए।

महिलाएं मुर्गी पालन की व्यवस्था करने या उनकी देखभाल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। मुर्गी पालन की व्यवस्था करना भी कृषि का ही भाग है यदि इस कार्य में व्यापारिक तरीके से कार्य किया जाए तो निश्चित रूप से अच्छा लाभ कमाया जा सकता है। किसी बड़े काम या व्यापार को आरंभ करने से पहले उसके विज्ञापन की आवश्यकता पड़ती है परंतु जब व्यापार या कारोबार में सफलता मिल जाती है उस समय विज्ञापन गौण हो जाता है और उसके स्थान पर अंशत: सुझाव आने लग जाते हैं।

बागवानी कृषि से संबंधित एक शाखा है इस कार्य में महिलाएं बड़े पैमाने में हिस्सा ले सकती हैं। इसमें लाभ कमाने के लिए कुछ महिलाएं सामूहिक रूप से संगठित हो सकती हैं और वे मुर्गी पालन तथा

मधुमक्खी पालन, दुग्धशाला, चटनी बनाना, फलों के रस की बोतलें पैक करना, आचार बनाना इत्यादि के साथ-साथ पाकशाला और नर्सरी उद्यान का व्यापार आसानी से कर सकती हैं। इस तरह के उद्यमों को यदि सही इलाके में स्थापित किया जाए तो निश्चित रूप से उत्पादनों की खपत के कारण डेरी उत्पादन तथा उद्यान उत्पादनों को भण्डारण करने के लिए बड़े भण्डारों की आवश्यकता पड़ सकती हैं। कहने का अर्थ यह है कि उपर्युक्त कृषि उद्योगों को समुचित रूप से स्थापित किया जाए तो ये एक अच्छे व्यवसाय का रूप धारण कर सकते हैं।

बागवानी के साथ जुड़े हुए कुछ अन्य व्यवसाय भी हैं जिनमें महिलाएं लाभप्रद रोज़गार प्राप्त कर सकती हैं। ये हैं :

क) रेशम उत्पादन - रेशम के कीड़े पालना
ख) पुष्प कृषि - फूलों की कृषि करना
ग) मधुमक्खी कृषि - मधुमक्खी पालन करना

ii) घरेलू व्यवसाय

महिलाओं के लिए बहुत सारे घरेलू व्यवसाय हैं जिन्हें वे किन्हीं कस्बों या बड़े नगरों में आसानी से चला सकती हैं। ये व्यवसाय अधिकतर सेवा क्षेत्र से संबंधित हैं। इन दिनों भवन निर्माण व अन्य निर्माण के कार्यों में खासी वृद्धि हुई है। इसलिए वास्तुकारों, भवनों को सजाने वालों, पर्यटन एजेंटों तथा सम्पति एजेंटों की भारी मांग है। इसके साथ ही हाथ-करघा और अन्य कलात्मक वस्तुओं की दिनों दिन मांग बढ़ती जा रही है। इस तरह के कार्यों में महिलाएं महत्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं। उन क्षेत्रों में संभावित रोज़गार संबंधी सूची अगले पृष्ठों में दी गई है। महिलाएं वास्तुकार का पेशा अपना सकती है। हम देखते हैं कि गरीब महिलाएं निर्माण स्थलों पर एक साधारण मज़दूर की तरह काफी काम करती है। शिक्षित महिलाएं अच्छी वास्तुकार बन सकती हैं तथा विस्तारित नए आधारिक संरचना क्षेत्र में कुशलता से भागीदारी कर सकती हैं। घरेलू सजावट और साज-सामान क्षेत्र में इस रूपांकन के कौशल का पूर उपयोग किया जा सकता है। यहां पर विशेषज्ञता सफलता का राज है। कुर्सी-मेज या लकड़ी का सामान और नक्काशी का कार्य ऐसे व्यापार हैं जहां पर कुशलता की आवश्यकता होती है। इन व्यवसायों में महिलाएं अच्छी तरह कार्य कर सकती है। यह एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें हाथ और दिमाग दोनों एक साथ कार्य करते हैं और जो लोग कला से प्रेम करते हैं उन के लिए यह रोज़गार अत्यधिक अनुकूल हैं। कमरे की साज-सज्जा (कालीन, परदे और गद्देदार कुर्सिया) का व्यवसाय बहुत ही लाभदायक है तथा इसमें रोज़गार की बहुत सारी संभावनाएं मौजूद हैं। इस व्यवसाय में महिलाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं यह शहरी क्षेत्रों में रोज़गार का महत्वपूर्ण स्रोत बन गया है। महिलाएं इस क्षेत्र में एजेंट का कार्य आसानी से कर सकती हैं। ये उपभोक्ता और सेवा उपलब्ध कराने वाले के बीच एक कड़ी का काम कर सकती हैं अर्थात एक अच्छी एजेंट सिद्ध हो सकती हैं।

iii) कला और दस्तकारी

आजकल अच्छे दर्ज़े की हाथ से बनी वस्तुओं की विशेष मांग है जैसे कि बारीक जालियां, झालर, सुन्दर नक्काशी और जेवरों पर काम अथवा लकड़ी पर विशेष प्रकार की जालियां या नक्काशी की बहुत ही मांग है। आजकल अनेक हाथ की दस्तकारी के काम मौजूद हैं जिनमें महिलाएं कलात्मक ढंग से अपनी कला का प्रयोग कर सकती हैं वहीं पर अपनी शक्ति और श्रम को लगा कर विशेष प्रकार की प्रसन्नता और गौरव हासिल कर सकती हैं और अपनी सर्जनात्मक कला का अपने हाथों से निर्माण करके अपने मन मस्तिष्क का कमाल अपनी आखों से देख सकती हैं। हस्त शिल्प कला में सबसे महत्वपूर्ण धातु

शिल्पकला है। उसका कमाल सुनहरी रजत, तांबा और पीतल की वस्तुओं में देखा जा सकता है। इस काम में कलात्मक दृष्टि, नए-नए डिज़ाइन बनाने की योग्यता, ढालने, की कला और कुछ जोड़ तोड़ करने की निपुणता की विशेष आवश्यकता होती है। इसमें बहुत नाजुक कीमती पत्थरों यानि कि हीरे-ज़वाहरात इत्यादि को जेवरों अथवा धातुओं में स्थापित करना अथवा लगाना, जेवरों पर नक्काशी का कार्य महिलाओं की नर्म और नाजुक उंगलियां आसानी से कर सकती है उनके लिए यह क्षेत्र बहुत ही लाभदायक है और उन्हें अपनी कला दिखाने के लिए व्यापक क्षेत्र मौजूद है। नक्काशी की कला हमारे देश में प्राचीन काल से ही चली आ रही है। भारत में यह कला दुबारा से आरंभ हुई है। इस कला का चमत्कार और प्रसिद्ध उस समय अधिक होती है जब इसका प्रयोग जेवरों अथवा चम्मचों, बर्तनों, संदूकचिओं, गहनों आदि पर किया जाता है। जब शिल्पकार अपनी कला का प्रदर्शन इन वस्तुओं पर करता है और उनको जब वह स्वयं देखता है या देखती है तो शिल्पकार स्वयं भी खुशी से चमक उठता है। इनमें नए-नए डिजाइन बनाने की काफी छूट होती है जिसे कीमती पत्थरों पर कारीगरी करके देखा जा सकता है। तथा इनमें परम्परागत कला से हटकर भी अपनी शिल्पकारिता, दक्षता व निपुणता का प्रदर्शन किया जा सकता है। जिल्दसाजी एक अन्य शिल्प है जिसमें कार्य की निपुणता और कलात्मक योग्यता की आवश्यकता होती है। इसमें ड्राइंग और डिजाइन बनाने की विशेष दक्षता होनी आवश्यक है। इस कार्य को आरंभ करने के लिए पूंजी की आवश्यकता होती है इसलिए किसी महिला को जिल्दसाज के रूप में कार्य आरंभ करना है तो उसके पास पूंजी होना आवश्यक है। इस व्यवसाय में अधिक धन कमाने की संभावनाएं कम दिखाई देती हैं। इसलिए इसे आरंभ करने पर धीरज और सतत् प्रयास अत्यधिक आवश्यक है।

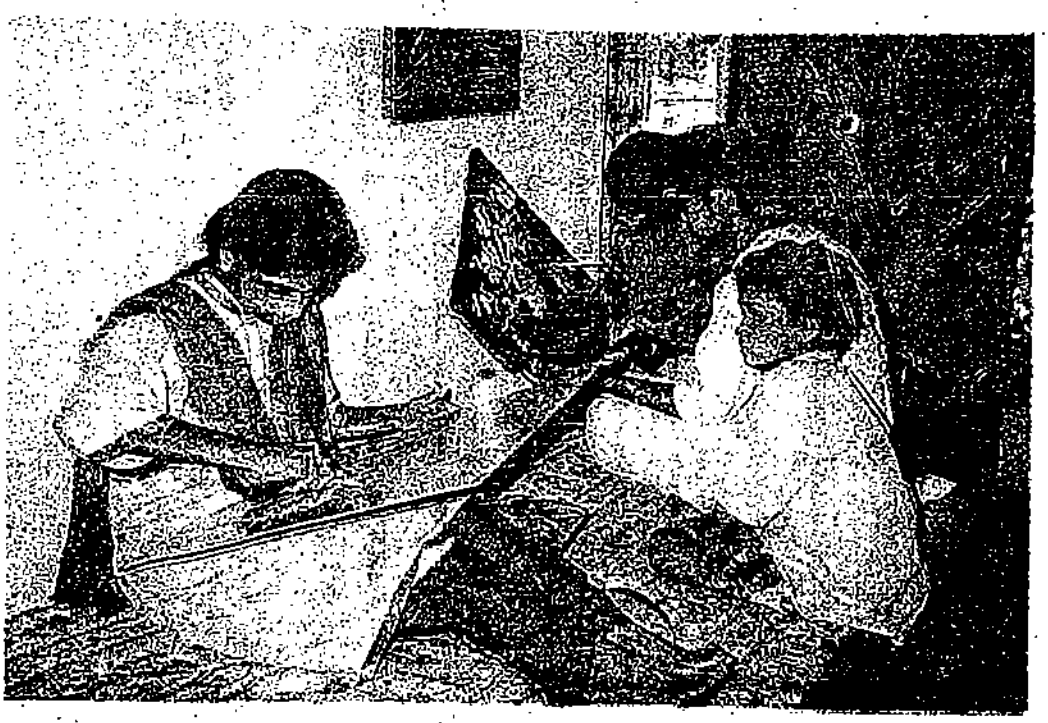

क्या चित्रकला का नाम समाज है? नए चित्र?
सौजन्य : सी.एस.आर., नई दिल्ली

विशेष चयन या मांग के आधार पर अच्छी जिल्दसाजी करके अच्छा लाभ कमाया जा सकता है तथा कुछ आवरण पृष्ठों पर चर्म चढ़ा कर उस पर विशेष कार्य किया जा सकता है। इसलिए महिलाओं को सलाह

दी जाती है कि यदि वे जिल्दसाजी का काम करना चाहती हैं तो साधारण जिल्दसाजी का काम न करके कुछ कलात्मक जिल्दसाजी का काम आरंभ करें उसमें उन्हें अच्छी सफलता मिल सकती है और लाभ भी कमाया जा सकता है।

लेस बनाना एक व्यवसाय है जिसमें विस्तार के बहुत अवसर हैं। शिक्षित महिला जो इस कला में माहिर हो और कुछ पास में पूंजी हो, इसे आसानी से कर सकती है। उसे चाहिए कि वह गांव या जिले स्तर के अनुकीर्ण कारीगरों से अपना संपर्क बनाए तथा स्थानीय एजेंटों की नियुक्ति करे जो एक केंद्र भण्डार या स्थान से माल ले जाकर यात्रियों व पर्यटकों में अपना माल बेच सके। इसमें पूंजी की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि इस कार्य को समय पर पूरा करना और एजेंटों की मांग की पूर्ति के साथ-साथ कारीगरों को मज़दूरी भुगतान समय पर होना चाहिए। कृषि जिलों में यह कार्य गरीबों की बहुत सहायता कर सकता हैं तथा उनके लिए आय का साधन भी बन सकता है। इस तरह की स्थिति में व्यक्तिगत लेस बनाने वालों की सहकारी समितियां बनाई जा सकती है जिन्हें आपस में सहयोग करने से पर्याप्त लाभ प्राप्त हो सकता है।

iv) मिट्टी के बर्तन बनाने का कार्य

ऐसे जिलों में जहां पर चिकनी मिट्टी बहुत मात्रा में उपलब्ध होती है वहां पर महिलाओं द्वारा मिट्टी के बर्तन बनाने का काम बड़े पैमाने पर आरंभ किया जा सकता है। इसमें मिट्टी के बर्तन, रसोई या पाकशाला के बर्तन, फूलों के गुलदस्ते सजावटी टेराकोटा काम और चिकनी मिट्टी की विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का निर्माण किया जा सकता है। वस्त्र बुनने का काम भी एक अच्छा शिल्प है जिसे सहकारी समितियों तथा व्यक्तिगत रूप से भी आरंभ किया जा सकता है। गलीचा, फर्श बनाना महिलाओं के लिए उपयुक्त कार्य है तथा रेशम के वस्त्र बनाने का काम बहुत दक्षता का कार्य है। महिलाएं इसमें बहुत दक्ष होती हैं। इसलिए बुनने का कार्य महिलाओं के लिए सरल और आसान है। जहां कही रस्सी बटने/टोकरी बनाने के लिए कच्चा माल आसानी से मिलता हो वहां पर महिलाएं इस कार्य को कर सकती हैं। यह काम उनके परिवार के लिए अतिरिक्त आय का साधन हो सकता है।

शहरी क्षेत्रों में इश्तहार या पोस्टर डिजाइन करना लाभकारी होता है, महिलाएं इस काम को सहजता से कर सकती हैं। विज्ञापन से संबंधित कंपनियों में अपने जोखिम पर इस कार्य को अपनाया जा सकता है।

v) बौद्धिक क्षेत्र

कालेजों से ऊपर के स्तर तक शिक्षा प्राप्त महिलाऐं ऐसी जीविका का चयन कर सकती हैं जो उनकी शिक्षा की पूरक हो।

अध्यापन का क्षेत्र ऐसी शिक्षित महिलाओं के लिए बहुत ही आकर्षक और दिलचस्प होता है जिनके पास बोलने की कला और सूचनाओं को बांटने की क्षमता हो। यहां पर भी सफलता के लिए विशेषज्ञता की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है। अध्ययन-अध्यापन का कार्य महिलाएं अपने लाभ के लिए तो कर ही सकती हैं साथ में आगे आने वाली महिला पीढ़ियों को शिक्षित करके उन्हें समाज में गौरव के साथ खड़ा करने में समर्थ बना सकती हैं। इसके साथ ही उन महिलाओं को जिनको दबाबों का सामना करना पड़ता है और पूर्वग्रहों को झेलना पड़ता है, उन सबका आसानी से सामना करने में समर्थ हो सकती है। विज्ञापन लेखन बहुत ही महत्वपूर्ण व्यवसाय है। अच्छा विज्ञापन लेखक मिलना बहुत मुश्किल होता

है। उसकी अत्यधिक मांग होती है, इसमें वही व्यक्ति सफल होता है जिसे विषय का गहरा ज्ञान हो। विज्ञापन लेखक को आवश्यकता और मांग को परखने की क्षमता होनी चाहिए क्योंकि उत्पादनकर्ता उसको इस बात के लिए भुगतान करता है कि वह विज्ञापन के माध्यम से उपभोक्ताओं की संख्या में वृद्धि कर सके। मूलरूप से उसमें व्यापार का ज्ञान हो और खरीदार या उपभोक्ता की नब्ज को पकड़ सकता हो। महिलाएं उस कार्य को आसानी से करने में दक्ष हो सकती हैं। उनमें साहित्यिक शैली से दिलचस्प कहानी गढ़ने की कला हो और उसे अपने ढंग से उपभोक्ताओं को आकर्षित करने एवं वस्तु की प्रशंसा करने की निपुणता हो, ऐसी महिलाएं विज्ञापन लेखक के रूप में सफल हो सकती हैं।

आज विश्व कंप्यूटर युग में प्रवेश कर चुका है। यदि कोई व्यक्ति कंप्यूटर शिक्षा से अनभिज्ञ रहेगा तो वह स्त्री/पुरुष कार्यालय वातावरण में ठीक से व्यवस्थित नहीं हो सकेगा और उसे कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। यदि महिलाएं इस व्यवसाय में प्रशिक्षित हो जाती हैं तो वे कंप्यूटर प्रोग्रामर के रूप में व्यवसाय चुन सकती हैं अथवा अपना स्वयं का डेस्क टॉप पब्लिशिंग का व्यवसाय सफलता से कर सकती हैं। यदि महिलाएं समुचित रूप से शिक्षित हैं तो घर पर ही ट्यूशन का कार्य आरंभ कर सकती हैं। अनेक महिलाएं इस व्यवसाय को सहर्ष अपना रही हैं क्योंकि इससे घरेलू आय में वृद्धि होती है और महिलाओं के लिए समय का कोई बंधन भी नहीं होता है। यह व्यवसाय विशेषकर घरेलू महिलाओं के लिए लाभदायक है क्योंकि इस कार्य को घर का कार्य करते हुए भी संपूर्ण किया जा सकता है।

ऊन कातते हुए। क्या आर्थिक सहायता दे सकती है।
सौजन्य : प्रो० कपिल कुमार, इग्नू, नई दिल्ली।

वित्तीय रूप से सुरक्षित महिलाएँ लोकोपकारक कार्य स्वयं ही कर सकती हैं। यह एक सम्माननीय व्यवसाय है। महिलाओं को न्याय की सशक्त जानकारी हो और उन्हें ईमानदारी से काम करना चाहिए। शिक्षा स्वास्थ्य, बाल देखभाल तथा इससे संबंधित क्षेत्रों में कार्यों का विस्तार किया जा सकता है। यदि महिलाएं खान-पान का व्यवसाय आरंभ करना चाहें तो इस काम में अधिक पूंजी की आवश्यकता नहीं

होती है। महिला बिना शिक्षा के भी इस कार्य को आसानी से कर सकती हैं। किसी भी शहर में चाय की दुकान आसानी से चलाई जा सकती है। इस कार्य से परिवार के लिए अतिरिक्त आमदनी हो सकती है जिससे परिवार को काफी सहायता मिल सकती है। बड़े होटलों को आरंभ करने के लिए पूंजी एकत्रित करके अपने उद्देश्यों को सफल बनाया जा सकता हैं। जो महिलाएं घर से बाहर कार्य करना नहीं चाहती हैं उन्हें चाहिए कि वे अपने ज्ञान में वृद्धि करके गृह-विज्ञान की शिक्षा देने का काम आरंभ कर सकती हैं। वे स्वास्थ्य संस्थान स्थापित करके बच्चों की देखभाल, जैसे कार्यों का आरंभ कर सकती हैं। इससे संबंधित कार्य करने वाले लोगों की सहायता भी ली जा सकती है।

सफाई निरीक्षक अथवा चिकित्सा निरीक्षक जैसी सेवाओं को महिलाएं अपना सकती है। इस तरह के पद नगर निगम एवं उद्योगों में मौजूद होते हैं। इसका मुख्य कार्य इलाके की स्थिति की देखभाल करना सफ़ाई व्यवस्था की जांच करना तथा जिससे लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता हो उसे रोकने के लिए समुचित उपायों का सुझाना या बताना होता है। क्षेत्र में रहने वाले कामगारों या रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य को अच्छा बनाने, उसे बिगड़ने न देने के लिए बराबर स्वास्थ्य स्थिति पर नज़र रखनी होती है। मेट्रन तथा सुपरिंटेंडेंट जैसे पदों पर महिलाएं काफी सफल कार्य कर सकती हैं। इसमें नियंत्रण और व्यवस्था करने का मुख्य कार्य होता है जिसकी योग्यता होना आवश्यक होता है। स्कूलों, चेरीटेबल संस्थानों, अस्पातालों, शरणस्थल या सुधार घरों, उद्योगों के विद्यालयों में मेट्रन के पद उपलब्ध होते हैं जहां पर महिलाएं रोज़गार प्राप्त कर सकती हैं। अस्पातालों में मेट्रन के पद के लिए नर्सिंग ट्रेनिंग आवश्यक होती है। महिलाएं सहकारिता संस्थाओं अथवा सहकारी समिति भण्डारण के कार्यों का संचालन कर सकती हैं। इसमें बाजार व्यवस्था तथा भण्डारण दोनों की एक साथ देखभाल व संचालन कर सकती है। एक मजबूत सहकारी व्यवस्था अकेली महिला भी आसानी से संचालित कर सकती हैं। इसके अलावा महिलाएं बचत जमा करने जैसी समितियों का निर्माण करके उस धन को ब्याज पर उधार देने का कार्य कर सकती हैं। इसके लिए उन्हें मामूली प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है जिसके आधार पर समूहों का निर्माण करके पूंजी का ऋण देकर ब्याज का लाभ कमाया जा सकता है और आर्थिक कार्यकलापों का विस्तार किया जा सकता है।

आजकल मनोरंजन उद्योग के क्षेत्र में महिलाएं सफलता पूर्वक कार्य कर रही हैं। यह विशिष्ट क्षेत्र है तथा इसमें बहुत ही प्रतिस्पर्द्धा है। महिलाओं को इस उद्योग में कार्य करने के लिए इसके सभी पक्षों में निपुणता के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। इस उद्योग में कैमरामैन या निर्देशक, या न्यूजरीडर जैसे व्यवसायों को महिलाएं अपना सकती हैं किंतु सभी व्यवसायों के लिए समुचित प्रशिक्षण की अत्यंत आवश्यकता होती है। यदि इस क्षेत्र में थोड़ा परिश्रम कर लिया जाए तो धन के साथ-साथ नाम भी कमाया जा सकता है। यह क्षेत्र बहुत ही आकर्षक है। महिलाएं बहुस्तरीय विपणन के व्यवसाय में हिस्सा ले सकती है। इस व्यवसाय में पूर्व शर्त यह है कि जो व्यक्ति इस व्यवसाय में है उसे अपने उत्पादन की विशेषताओं या सेवाओं के लाभों को इस प्रकार से प्रदर्शित करने की क्षमता व कला होनी चाहिए कि उपभोक्ता शीघ्र ही उस वस्तु या सेवा के प्रति आकर्षित हो जाएं और उस उत्पाद या वस्तु अथवा सेवा को लेने के लिए तुरन्त तैयार हो जाए। विपणन के क्षेत्र में एक अन्य प्रकार के विपणन टेली मार्किटिंग अर्थात दूर विपणन के माध्यम से व्यवसाय कर सकते हैं। इसमें घर से बाहर जाने की आवश्यकता नहीं होती है। आजकल अनेक कंपनियाँ घरेलू महिलाओं को अपना उत्पादन बेचने के लिए डीलर नियुक्त कर लेती हैं। इस तरह के डीलर फिर उप डीलर नियुक्त कर लेती है जो वस्तुओं को घर-घर जाकर बेचती हैं अथवा सीधे ही विक्रय करती हैं। इस तरह से डीलरों का एक परामिड का रूप बन जाता है जो नीचे से ऊपर तक वस्तुओं के व्यापार व क्रय-विक्रय करके अपने-अपने लाभांश प्राप्त करते हैं। इस तरह से कंपनी द्वारा नियुक्त डीलर अथवा घरेलू महिला वस्तुओं या माल को बेचने के लिए अपने घर से बाहर अपनी सुविधा से आ जा सकती है। ये डीलर उप डीलर भी नियुक्त कर लेती

हैं और घर बैठे विक्रय का लाभ कमा लेती हैं, इसलिए यह आवश्यक नहीं होता कि डीलर किसी निश्चित समय में ही अपना माल बेचे। यह कार्य वह अपनी सुविधा अनुसार करती हैं। इस तरह से हम देखते हैं कि समय के लचीलेपन के कारण महिलाएं बहुत सारी जिम्मेदारियों को आसानी से निभा लेती हैं। इस तरह से घरेलू काम-धंधों के साथ-साथ अच्छा लाभ भी कमा लेती हैं।

16.5 सारांश

इस इकाई में हमने रोज़गार के अनेक क्षेत्रों के संबंध में चर्चा की है जैसे कि प्राथमिक, द्वितीय और तृतीय क्षेत्र। हमने महिलाओं के रोज़गार की बदलती प्रवृत्तियों उनके कारणों एवं महिलाओं की स्थिति अथवा स्तर पर पड़ने वाले उनके प्रभावों की भी चर्चा की है। इसके बाद हमने महिलाओं के लिए रोज़गार के अनेक नए क्षेत्रों के बारे में विस्तार से बताया है। हमने केवल शिक्षित महिलाओं के लिए ही नहीं अपितु गांवों में रहने वाली अशिक्षित महिलाओं के लिए भी व्यवसायों तथा रोज़गारों की सूची प्रस्तुत की है। इसके साथ ही जो महिलाएं शारीरिक रूप से कमजोर हैं अथवा विकलांग हैं उनके लिए भी रोज़गार व्यवस्था के बारे में बताया हैं जिनसे वे अपना जीवनयापन आसानी से कर सकती हैं साथ ही परिवार की आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने में सहयोग कर सकती हैं।

16.6 शब्दावली

रोज़गार/व्यवसाय : यहां रोज़गार तथा व्यवसाय शब्दों का अर्थ उन विभिन्न कार्यों से लिया गया है जिनको अपनाने से कुछ आर्थिक लाभ कमाया जा सकता है।

नये अवसर : नये अवसरों का अर्थ है ऐसे कार्य जिनसे महिलाएं आर्थिक लाभ कमा सकती हैं।

16.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

भारत सरकार (1975), *महिलाओं के स्तर पर समिति रिपोर्ट*, नई दिल्ली।

कृष्णामूर्ति, जे, (1984) *चेन्जिज़ इन दि इंडियन लेबर फोर्स*, इकोनामिक एंड पालिटिकल वीकली, वाल्यूम 14, संख्या 5।

संदर्भ

भौमिक, सरीत के, विरजीनियस एक्साक्स एंड एम.ए. कालम (1996) *टी प्लांटेशन लेबर इन इंडिया*। नई दिल्ली : फ्रेडारिच एल्वर्ट फाउंडेशन।

बिगले, थॉमस एम. एंड बॉहड, डविड पी, साइकोलाजिकल करेक्ट्राइस्टिक्स एसोसिएटिड विंद परफोरमेंस इन इंटरिपरिन्यूरिल फर्मस एंड स्मालर बिजनेस। *जनरल ऑफ बिजनेस वेनचुरिंग*। विंटर 1987 : 79.91,

क्लेमेंस, रिचर्ड वी (सपा.) (1951) *एस्से ऑफ जे.ए. स्कूमपीटर, रीडिंग*, एम.ए. एडीशन, वेस्ले, 1951-225,

डेवल, सात्थ (संपा.) (1991) *इंपलॉपमेंट एंड यूनियनाइजेशन इन इंड़ियन इंडस्ट्री* (सेक्शन ऑन टी इंडस्ट्री) नई दिल्ली : फ्रेंडरिच इल्वर्ट फांउडेशन।

मैकमिलन, आईआन सी. एंड जेराम ए काट्ज़। *ऑडिओसिंक्रेटिक मिलियस ऑफ इंटरेपरिन्यूरसिप रिसर्च : दि नीड फार कॉम्प्रेहेंसिव थियारीज;* जरन्ल ऑफ बिजनेस वेनचूरिंग, जनवरी, 1992

मोंटगनो, राय वी. एंड डोनाल्ड एफ कुराटको। परसेप्शन ऑफ इंटरेपरिन्यूरीयल सक्सेस केरेक्ट्राड स्टिकस। *अमरीकन जरनल ऑफ स्माल बिजनेस विंटर* 1986 : 25.32